[पालने मे श्याम]

श्री भागवत-दर्शन

भागवती कथा

(दशम् खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनासि विचिन्विता।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा'॥

लेखक
श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

●

प्रकाशक
संकीर्तन भवन, झूसी,
प्रयाग

●

तृतीय संस्करण १००० } आषाढ़ सं० २ संशोधित मूल्य २-०३, ६५ रुपये

मुद्रक—वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग।

अ० स०	विषय-अनुक्रमणिका	पृष्ठ

बाल गोपाल

[भूमिका]

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।
भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥
तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।
न पुनः कल्पते राजन् ! संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ६ अ० ३९, ४० श्लो०)

छप्पय

समुझि श्यामकूँ तनय अकमें लै, लै घूमें ।
करि अति प्यार दुलार प्रेमतें मुखकूँ चूमें ॥
दूध पिआय नहाय केश काढ़ें पुचकारें ।
छातीतें चिपटाइ कमल मुख ललकि निहारें ॥
बड़भागी ते नारि नर, धन्य धन्य ते धन्य हैं ।
पीवें रस वात्सल्य नित, ते ही भक्त अनन्य हैं ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् देवकीनन्दजी कैवल्य आदि अखिल मुक्तियों के दाता हैं, उन्होंने जिन गौओं और गोपियों का पुत्र-स्नेह से अपने ही आप झरते हुए दुग्ध का पान किया है, क्या उनको फिर कभी अज्ञानजन्य संसार की प्राप्ति हो सकती है ? अर्थात् कभी नहीं हो सकती ।"

भाव ही भवका कारण है। भाव से ही भावना बनती है। भगवान् भावबस्य है। जहाँ जिसमे जैसी भावना करोगे, प्रभु तहाँ तैसे ही बनकर प्रकट होगे। ससार की भावना करोगे भगवान् ससारी बन जायँगे, ससार मे बांध देंगे। उनमे भगवद् भावना करोगे, तो अपने प्रेम मे बांध लेंगे। कभी-कभी भगवान् स्वय ससार मे आकर संसारी बन जाते हैं उस समय उनमे चाहे ससारी भावना करो या ब्रह्म भावना, सब प्रकार से ही अपन मे ही लगा लेंगे। जगत् मे न फंसने देंगे, क्योकि अमृत को जान मे पीओ, अनजान मे पीओ वह तो अमर कर ही देगा। वह अपना गुण स्वय दिखावेगा उसे तुम्हारे ज्ञान अज्ञान भाव कुभाव की अपेक्षा नही। कही भाव की ही प्रधानता होती है। विशुद्ध भावना के सम्मुख गुण लुप्त हो जाते हैं। विप का गुण है मार देना, किन्तु मीरावाई ने विप को चरणामृत बुद्धि से पान किया, उनकी भावना के सम्मुख विप का गुण नष्ट हो गया वह यथार्थ मे अमृत हो गया।

जब भगवान् ब्रज मे रह कर प्रकट लीला करते थे तब बहुत मे लोग उनमें ब्रह्म-भाव रखते थे बहुत से उन्हे साधारण बालक समझ कर ही प्यार करते थे। उनसे ज्ञान से अज्ञान से कैसे भी जिसने प्रेम किया, उसी का भव-बन्धन सदा के लिये छूट गया। क्योकि पारस से कैसे भी लोहे का स्पर्श हो जाय, वह अवश्य ही सुवर्ण बन जायगा। प्रकट लीला मे चाहे उनके सम्मुख प्रेम से आओ द्वेप से आओ, क्रोध से आओ, काम भाव से आओ या सुदरता पर लट्टू होकर उनकी ओर आओ। वे सबको समान रूप से तार देंगे। कुचो मे विप लगा कर दुष्ट बुद्धि से आने वाली पूतना को भी उन्होंने माता की गति दी और द्वेप भाव से आने वाले असुरो को भी मुक्ति दी। काम भाव से भजने वाली कुब्जा

को अज्ञान से पुत्र मानने वाली गोपिकाओं की गौओं को भी उन्होने सद्गति दी। यह उनकी अपनी महत्ता थी। बाल्यकाल में भगवान् ने अपने श्री अङ्ग मे कैसा अपूर्व सौन्दर्य प्रकट किया उसे देखकर वे स्वय भी चकित हो जाते थे। उनके नेत्र इसीलिये अति चचल हो गये। कभी जल मे अपनी परछाई देख लेते तो चकित-चकित भाव से उसे देखते-के-देखते ही रह जाते थे, इसमे इतना सौंदर्य ? सौन्दर्य का स्रोत उमडता रहता था। जो भी इस भोरे-भारे छोटे से मुनमुना-से चचल-म बालक को एक बार देख लेता, वही अपने मन को खो बैठता। कजरारे बडे-बडे प्रफुल्ल कमल के सदृश अपने नेत्रो से जिसे देख देते वह बेमन का बन जाता। कैसा उस अद्भुत बालक मे अलौकिक आकर्षण था। उसकी तुलना नही, उपमा नही, समता नही प्रतिमा नही।

एक दिन माता अत्यत विभोर होकर निर्निमेष दृष्टि से श्याम सुदर को निहार रही थी। श्याम जाकर माता के कठ से लिपट गये उनका श्रीअङ्ग माता के वक्ष स्थल स सट गया। माता के स्तनो से अपने आप दूध बहने लगा। श्यामसुदर चुसुर चुसुर करके उसे पीने लगे। मुख से दूध पीते थे और बडी-बडी आखो को माता की आंखो मे मिलाकर उनमे स वात्सल्यामृत उडेल रहे थे। सहसा उन्होने दूध पीना बद कर दिया। माता क स्तन को पकडे ही पकडे आप बोले— मैया, तू क्या देख रही है ? '

माता ने सम्पूर्ण ममता बटोर कर कहा—'बेटा! मैं तरी रूप-माधुरी का पान कर रही हूँ।'

मचल कर श्यामसुदर बोले—'मैया! वह माधुरी तेरे स्तनो के दूध से भी मीठी है क्या ?'

माता ने कहा— बेटा! उससे असख्या गुनी मीठी है यह माधुरी।'

बडो उत्सुकता के साथ बालकृष्ण बोले—"तो मैया, मुझे भी उसे पिला दे।"

माता ने अत्यत मर्मस्पर्शिनी वाणी मे कहा—"बेटा! तेरा इतना भाग्य कहाँ? उसके पान करने की अधिकारिणी तो मैं ही हूँ।"

लोग ब्रह्मसुख-ब्रह्मसुख चिल्लाते रहते हैं, किन्तु यह रसोपासना इतनी मीठी है कि इसके लिये स्वय ब्रह्म भी समुत्सुक बना रहता है। भगवान् मे किसी प्रकार का सम्बन्ध हो जाय और उस सम्बन्ध से ही हम उनसे सम्पूर्ण व्यवहार करें, तो उस सुख के सम्मुख सभी सुख तुच्छातितुच्छ हैं। प्रकट लीला मे जिनका भगवान् स प्रेम का सम्बन्ध है उनसे बडा भाग्यशाली त्रिभुवन मे कोई भो नही है।"

अप्रकट लीला मे भगवान् भाव के वश मे हैं। कही भी किसी मे भी भाव करोगे वही वे प्रकट हो जायँगे। अनेक भक्तो की कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उनसे भगवान् की प्रतिमाएँ बात करती थी। उनकी ऐसी दृढ धारणा हो गयी थी, उन्हे भगवान् की प्रतिमाएँ पाषाण या धातु की दृष्टिगोचर ही नही होती थी। श्रीवल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठल नाथ जी के सात पुत्र हुए। पुत्र होते ही वे उनमे भगवद् भाव मानते थे। उनके उपास्य देव बाल कृष्ण थे। पाँच वर्ष की अवस्था तक वे पुत्र मे भगवद् बुद्धि रखते। फिर उनके दूसरा पुत्र हो जाता। इस प्रकार उनके सात पुत्र हुए। उन पुत्रो के ही रूप मे भगवान् ने उन्हे सब लीलाएँ दिखायी। समस्त लीलाओं का दिग्दर्शन भगवान् ने उन्हे उसी रूप मे गोकुल मे कराया। माताएँ अपने बच्चो मे बाल गोपाल की भावना करलें, तो वे अनायास ही इस ससार से तर जायँ। सच पूछा जाय, तो ससार में भगवान् के अतिरिक्त और है ही क्या? मित्र अपने

को सुदामा समझें अपने मित्र में श्रीकृष्ण की भावना कर लें, सेवक अपने को दास अनुभव करें और अपने स्वामी को श्रीकृष्ण मान लें। माता अपने को यशोदा अनुभव करें और अपने बालको को बाल गोपाल समझें। पत्नी अपने को राधा मान ले पति में श्री कृष्ण की भावना कर लें, तो फिर अरण्य मे जानेकी आँख कान मूँदने को जप तप करने की आवश्यकता ही क्या रह जाय जो कम करें उसे श्रीकृष्ण की सेवा समझ लें। श्रीकृष्ण हा तो नाम रूपो मे क्रीडा कर रहे हैं। कामी, क्रोधी लोभी तथा दुश्चरित्र पुरुषो मे भावना होना अत्यन्त कठिन है। सिंहको सर्प को हम भगवान् मानने को बहुत मन को समझावें किन्तु उसमे भाव जमता नही, हृदय भयभीत हो जाता है किन्तु छोटे छोटे बच्चो को देखते ही उन्हे प्यार करने की इच्छा होती है। ऐसा कौन वज्र हृदय पुरुष होगा जो फूल के सदृश खिले हुए दोनो हाथो को उठा कर गोदी मे आने वाले बालक को उठा कर हृदय से चिपटाने की इच्छा न रखता हो। बच्चो को देखते ही हृदय खिल जाता है। उनकी भोरी चितवन हँसता हुआ मुख और नन्हे-नन्हे सुकोमल अग हृदय मे एक प्रकार की गुदगुदी पैदा कर देते हैं। चित्त चाहता है इसे उठा कर हृदय से सटा लें मुख चूम लें। यदि इन सभी बच्चो मे बालकृष्ण की भावना हो जाय तो बेडा पार ही समझो। यह उपासना स्वाभाविक और मनके अनुकूल है। परमहस यति बाल भाव की ही उपासना करते हैं। हे मेरे बाल गोपाल ! तुम मुझे सब बालको की आँखो मे दिखायी दो, ऐसा ही वरदान आज दे दो। मेरी इस रूखी रूखी दाढी, भयावने मुख और कडे-कडे बालो को देख कर डर मत जाना। ये मैने स्वय तो बनाये नही तुमने ही ये सब बनाये हैं। अच्छे

बडी उत्सुकता के साथ बालकृष्ण बोले—"तो मैया, मुझे भी उसे पिला दे।"

माता ने अत्यंत मर्मस्पर्शिनी वाणी मे कहा—"बेटा! तेरा इतना भाग्य कहाँ ? उसके पान करने की अधिकारिणी तो मैं ही हूँ।"

लोग ब्रह्मसुख-ब्रह्मसुख चिल्लाते रहते हैं, किन्तु यह रसोपासना इतनी मीठी है कि इसके लिये स्वयं ब्रह्म भी समुत्सुक बना रहता है। भगवान् में किसी प्रकार का सम्बन्ध हो जाय और उस सम्बन्ध से ही हम उनसे सम्पूर्ण व्यवहार करें, तो उस सुख के सम्मुख सभी सुख तुच्छातितुच्छ हैं। प्रकट लीला मे जिनका भगवान् से प्रेम का सम्बन्ध है उनसे बडा भाग्यशाली त्रिभुवन मे कोई भी नहीं है।"

अप्रकट लीला में भगवान् भाव के वश मे हैं। कहीं भी किसी मे भी भाव करोगे वही वे प्रकट हो जायँगे। अनेक भक्तो की कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उनसे भगवान् की प्रतिमाएँ बाते करती थी। उनकी ऐसी दृढ धारणा हो गयी थी, उन्हे भगवान् की प्रतिमाएँ पाषाण या धातु की दृष्टिगोचर ही नहीं होती थी। श्रीवल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठल नाथ जी के सात पुत्र हुए। पुत्र होते ही वे उनमें भगवद् भाव मानते थे। उनके उपास्य देव बाल कृष्ण थे। पाँच वर्ष की अवस्था तक वे पुत्र में भगवद् बुद्धि रखते। फिर उनके दूसरा पुत्र हो जाता। इस प्रकार उनके सात पुत्र हुए। उन पुत्रो के ही रूप मे भगवान् ने उन्हे सब लीलाएँ दिखायी। समस्त लीलाओं का दिग्दर्शन भगवान् ने उन्हे उसी रूप मे गोकुल मे कराया। माताएँ अपने बच्चो मे बाल गोपाल की भावना करलें, तो वे अनायास ही इस संसार से तर जायँ। सब पुत्र आ जाय, तो ससार मे भगवान् के अतिरिक्त और है ही क्या ? मित्र अपने

को सुदामा समझें अपने मित्र में श्रीकृष्ण की भावना कर लें, सेवक अपने को दास अनुभव करें और अपने स्वामी को श्रीकृष्ण मान लें। माता अपने को यशोदा अनुभव करें और अपने बालकों को बाल गोपाल समझें। पत्नी अपने को राधा मान ले पति में श्री कृष्ण की भावना कर लें, तो फिर अरण्य में जानेकी आँख कान मूँदने की जप-तप करने की आवश्यकता ही क्या रह जाय जो कम करें उसे श्रीकृष्ण की सेवा समझ लें। श्रीकृष्ण ही तो नाम रूपो में क्रीडा कर रहे हैं। कामी, क्रोधी लोभी तथा दुश्चरित्र पुरुषों में भावना होना, अत्यन्त कठिन हैं। सिंहको सर्प को हम भगवान् मानने को बहुत मन को समझावें, किन्तु उसमें भाव जमता नहीं, हृदय भयभीत हो जाता है, किन्तु छोटे-छोटे बच्चों को देखते ही उन्हें प्यार करने की इच्छा होती है। ऐसा कौन वज्र हृदय पुरुष होगा जो फूल के सदृश खिले हुए दोनों हाथों को उठा कर गोदी मे आने वाले बालक को उठा कर हृदय से चिपटाने की इच्छा न रखता हो, बच्चों को देखते ही हृदय खिल जाता है। उनकी भोरी चितवन हँसता हुआ मुख और नन्हें-नन्हे सुकोमल अंग हृदय में एक प्रकार की गुदगुदी पैदा कर देते हैं। चित्त चाहता है इमे उठा कर हृदय से सटा लें मुख चूम लें। यदि इन सभी बच्चों मे बालकृष्ण की भावना हो जाय तो बेड़ा पार ही समझो। यह उपासना स्वाभाविक और मनके अनुकूल है। परमहंस यति बाल भाव की ही उपासना करते हैं। हे मेरे बाल गोपाल! तुम मुझे सब बालकों को आँखो में दिखायी दो, ऐमा ही वरदान आज दे दो। मेरी इस रूखी-रूखी दाढी, भयावने मुख और कड़े-कड़े बालों को देख कर डर मत जाना। ये मैंने स्वयं तो बनाये नही तुमने ही ये सब बनाये हैं। अच्छे

बुरे के तुम ही कर्ता हो, तुम्ही भोक्ता बनो। क्यो मेरे कनुआ ठाकुर! मेरी प्रार्थना स्वीकारोगे?

छप्पय

बाल लाल हँसि तनिक दौरि मेरे ढिँग आओ।
जानि अजनबी अजी कुमरजी मत सकुचाओ॥
कहूँ साँच हौं पकरि नहीं झोरी में डारूँ।
बाबा जी न बनाइ नहीं चिमटाते मारूँ॥
डरो न दादी देखिकें, छिपो न माँ की गोद में।
आओ खेलो संग मम, मरि मरि आनँद मोद में॥

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
(प्रयाग)
आश्विन कृ० २। २००७ वि०

तुम्हारा ही दत्त
प्रभु

कुटिल मंत्रियों के कुमंत्र से कंसानुयायियों द्वारा क्रूरकर्म

[८३७]

एव दुर्मान्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्य दुर्मतिः ।
ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४ अ० ४३ श्लो०)

छप्पय

इत हैकें अति दुखित कंस घर अपने आयो ।
मन्त्री लये बुलाय वृत्त सब सत्य सुनायो ॥
सुरद्रोही खल दैत्य कहें—का चिन्ता स्वामी ।
अज हरि हर सुर करें कहा हम स्वेच्छागामी ॥
सुर निरबल परि विप्रगन, मख करि पोसें रिपुनिकूँ ।
मारें जहँ द्विज मुनि मिलहिँ, आयसु देवें सबनिकूँ ॥

जो अवसरवादी पुरुष होते हैं, वे जैसा अवसर देखते हैं, वैसा ही काम करने लगते हैं। किसी राजा का ऐसा ही एक मन्त्री था, राजा का जैसा रुख देखता वैसा ही बातें करता। राजा ने एक दिन पूछा—"साग कौन-सा अच्छा होता है ?"

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! अपने कुटिल मन्त्रियों के साथ इस प्रकार परामर्श करके कंस ने ब्रह्म-हत्या में ही अपना हित माना, क्योंकि वह असुर था और कालपाश में आबद्ध था।"

उसने कहा—"महाराज ! साग अनेक प्रकार के हैं, मनुष्यों की भी प्रकृति भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। जिसे जो प्रिय लगे, उसके लिये वही साग अच्छा है।"

राजा ने कहा—"हमे तो बेंगन का साग बड़ा अच्छा लगता है।"

मन्त्रीजी बोले—"अहा हा ! बेंगन का क्या पूछना है, आलू के साथ बेंगन को मिलाकर पतले-पतले परामठों से उसे खायें, तो स्वर्ग एक हाथ ही रह जाता है। बेंगन पाचक है, उद्दीपक है क्षुधा बढ़ाता है, वायु को शमन करता है। बेंगन को जलाकर उसमे सोंठ, मिरच, पीपल, काला और सेंधा नमक मिलाकर गोली बना लो तो य "वार्ताकुवटिका" समस्त पेट के वायु रोगों की रामबाण औषधि है। शरीर मे वायु बिगड़ने से ही तो रोग होते हैं। तभी तो समस्त शाकों ने मिलकर इसे 'शाकराज" की उपाधि दी है, इसके सिर पर छत्र रख दिया है। आप देखते हैं, शाकराज बेंगन छत्रधारी ही उत्पन्न होते हैं, ये जन्म-जात राजा हैं।"

राजा बोला—"हाँ, मन्त्रीजी ! साग स्वादिष्ट तो लगता है, किन्तु है कुछ ऐसे ही सट्ट-पट्ट।"

शीघ्रता के साथ मन्त्रीजी बोले—"अजी, महाराज ! आप कहते हैं, सट्ट-पट्ट है, मै कहता हूँ, साक्षात् नरक का द्वार है। खाने मे भी गरिष्ट होता है, कीड़े इसमे अतिशीघ्र पड जाते हैं। अकेला बनाओ तो, हीक-सी आती है, लिबलिबा-सा हो जाता है धर्म-शास्त्रों मे इसकी बडी निन्दा है। एकादशी के दिन एक भी बीज बेंगन का पेट मे रह जाय, तो इक्कीस पीढी नरक में जाती हैं। महाराज धार्मिक लोग तो इसे छूते भी नहीं। शास्त्र पुराणों में जहाँ त्याज्य शाक बताये हैं, वहाँ सर्व प्रथम बेंगन का ही नाम

आता है। यथार्थ में इसका नाम है बेगुण। इसमें एक भी गुण नहीं है।"

हँस कर राजा ने कहा—"मंत्री जी! अभी तो आप बेंगन को शाकराज कह रहे थे, अभी उसे बेगुण बता दिया।"

मंत्री ने हँस कर कहा—"महाराज! हमें शाक थोड़े ही सिद्ध करना है। हमें तो अपना स्वार्थ सिद्ध करना है। बेंगन अच्छे हों, बुरे हों, आप प्रसन्न हो जायँ, यही हमारा लक्ष्य है हम तो अवसरवादी है, जैसा अवसर देखते है, वैसा कह देते हैं। हमें अपने सिद्धान्त को रक्षा थोड़े ही करनी है, हमें तो अपनी आजीविका की रक्षा करनी है।"

स्वार्थी पुरुषों का भी यही सिद्धान्त होना है, जहाँ जैसा बनने से अपना स्वार्थ सधता हो, वहाँ वैसे ही बन जाते है। जहाँ रोना होता है, वहाँ बिना रुदन के आँसू बहा देते हैं, जहाँ हँसना होता है, बिना हँसी के हँस जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कंस को हृदय से पश्चात्ताप नहीं हुआ। उसने तो देवकी वसुदेव जी को प्रसन्न करने के निमित्त उनके आगे झूठे ही आँसू बहाये थे। किन्तु उन्होंने इसके पश्चात्ताप को सत्य ही समझा और हृदय से इसे क्षमा कर दिया। देवकी वसुदेव से विदा होकर वह अपने घर आया, किन्तु उसे शान्ति कहाँ? योगमाया के वचनों से उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। उसने तुरन्त अपने मंत्रि-मंडल को बुलाया। सबके आने पर उसने चिन्ता प्रकट करते हुए आदि से अन्त तक सभी कथा सुनायी। योगमाया ने जो कुछ कहा था; उसे भी सुनाया और अंत में कहा—"मेरा पूर्व-शत्रु तो यहीं कहीं व्रज में उत्पन्न हो गया है। इस विषय में क्या करना चाहिये।"

यह सुन कर वे सब देवद्रोही दुष्ट देवताओं के प्रति क्रोध

प्रकट करते हुए एक साथ अवहेलना के स्वर मे हँस पडे और बोले—"अजी, महाराजाधिराज ! आपने किन भगोडो की बात कहो। इतना तो पता है, आपका पूर्व शत्रु व्रज-मडल मे उत्पन्न हुआ है। फिर चिन्ता की कौन सी बात है। पैदा हुआ होगा तो इन्ही आठ दश दिनो मे हुआ होगा। इसलिये आज से दश दिनो मे जितने व्रज मे बालक उत्पन्न हुए हो, उन सब को मरवा डालें इसी झपट्टे मे आपका शत्रु भी मर जायेगा। आप हमे आज्ञा भर दे दें, हम बडे-बडे नगर मे, उपनगरो में, ग्रामो मे, पुरो मे, व्रज-गोष्ठो मे, गोपो के समूहो मे, खानो मे तथा और भी जहाँ लोग रहते हैं, सर्वत्र जाकर पता लगावेंगे। जहाँ भी नवीन-जनमा बालक देखेंगे मार डालेंगे। हमारे गुप्तचर विभाग की माननीया मन्त्राणी पूतना देवी अपने गुप्तचरो को भेज कर खोज करावेंगी, स्वय भी शत्रु का पता लगाने जावेंगी, ये अपने कार्य मे तत्परता दिखावेंगी, फिर ये महाराज से पूर्ण पुरस्कार पावेंगी या "गोविन्दाय नमोनमः" जो है सो अपने प्राण...।"

दूसरा बोला—"हैं, हैं, यह क्या कहते हो। पूतना मौसी के दो भाई हैं अघासुर, वकासुर; ये ही जो चाहे सो कर सकते हैं। मौसी जी तो उच्चासन पर बैठ कर विधान बनाती रहें।"

तब पूतना देवी बोली—'अरे ! तुम क्यो घबडाते हो। ये मनुष्य हैं क्या वस्तु। यद्यपि हमने मनुष्य रूप बना रखा है, किन्तु हम सब कामचारी हैं, इच्छानुसार रूप बदल सकते हैं, मनुष्यो मे इतनी शक्ति नहीं। हम छोटे बन सकते हैं, बड़े बन सकते हैं मोटे, पतले, लम्बे, ठिगने जैसे चाहें बन सकते हैं। जैसा चाहें रूप धारण कर सकते हैं।"

कस ने कहा—"नहीं मनुष्यों से तो मुझे कुछ डर नहीं;

किन्तु इतनी ही तो बात नही है, इन षड्यन्त्रो मे देवताओ का ही प्रधान हाथ है।"

इस पर मोटा-सा मोटी बुद्धि वाला मूर्ख मंत्री बोला—'महाराज, भोजराज! आपने भी किन नपुसको की बात कही। आप जानते ही हैं, देवताओ के बच्चे नही होते, क्योकि ये सबके सब नपुसक हैं। इतने देवासुर सग्राम हुए कभी देवता असुरो के सम्मुख ठहरे हैं। वे तो अब भी आपके धनुष की प्रत्यञ्चा के शब्द को सुनकर सदा सिर पटकते रहते हैं। देवासुर सग्राम मे जब युद्ध करते समय आपने समस्त सुरो का अपने दिव्य बाणो द्वारा बाँध दिया, तब जो जीना चाहते थे, जिन्हे अपने प्राण प्यारे थे, वे युद्ध छोडकर भाग गये। जिनको भागने का अवसर नहीं मिला, ऐसे भयभीत देवता अपने अस्त्र शस्त्रो को फेंककर नि शस्त्र होकर अत्यन्त दीनता-पूर्वक हाथ जोड़े, सिर नवाये बाल बखेरे, कच्छ खोले आपकी शरण मे आये और दीनता पूर्वक आकर कहने लगे—'हम भयभीत हैं, आपकी शरण हैं, आप हमे शरणागत समझकर क्षमा करें, हमारी रक्षा करें।"

आप ऐसे वैसे ओछे वीर तो हैं ही नही कि जो भी शत्रु सम्मुख आ गया उसी का सहार कर दिया। आप तो सम्मुख लडने वाले वीराभिमानियो से टक्कर लेते हैं, आपके साथ युद्ध करते-करते विपक्षी का रथ टूट गया हो, तो आप तुरन्त युद्ध बन्द कर देते हैं। अथवा आप रथ पर हो और कोई पैदल आपसे युद्ध करने आवे तो, आप युद्ध नीति की रक्षा करते हुए पदाति से युद्ध नही करते। युद्ध करते-करते जिन्हें अस्त्र शस्त्र विस्मरण हो गये हों, उनके साथ भी आप नहीं लडते। जो भयभीत होकर भागने का उपक्रम कर रहा हो, उसकी चेष्टा देखकर ही आप क्षमा कर देते हैं। जो युद्ध में अन्यमनस्क हो या रण से मुख मोड

लिया हो, युद्ध करते-करते जिनका धनुष टूट गया हो, ऐसे लोगों को मारना तो दूर रहा, आप उनसे धर्मानुसार युद्ध भी नहीं करते।

एक बोला—"हाँ, महाराज ! इन देवताओं से डरने का तो रचक मात्र भी प्रयोजन नहीं है। ये तो वीर हैं जहाँ कोई भय नहीं होता वहाँ अपनी स्त्रियों में तो बड़े वीर बनते हैं, किन्तु युद्ध का अवसर आते ही इनकी नानी मर जाती है। उनसे बातें चाहे जितनी बनवा लो, गप्प चाहे जितनी मरवा लो, किन्तु लड़ाई के समय तो इन्होंने भागकर छिपना ही सीखा है।"

कंस बोला—"अरे भाई देवताओं की ही बात थोड़े है। यह सब सुनकर देवताओं का राजा भी तो हाथ में अपना अमोघ वज्र लिये हुए आ जायगा।"

एक मूर्ख-सा असुर हँसकर बोला—"महाराज ने इन्द्र को अच्छी कही। बलि के शंख की ध्वनि सुनकर ही यह स्वर्ग छोड़कर भाग गया था। हिरण्याक्ष के आते ही शची के लहँगा में चूड़ी पहिनकर छिप गया। बुढ़िया ब्रह्महत्या के भय से मानसरोवर में कमल की नाल में सैकड़ों वर्ष छिपा रहा। महाराज बलि के भय से गदहा बना पृथ्वी पर घूमता रहा, देवताओं के राजा इन्द्र का पराक्रम बहुत स्वल्प है।

कंस बोला—"केवल इन्द्र और देवता ही तो नहीं हैं, इन सबके स्वामी तो विष्णु हैं।"

एक बोला—"अजी, महाराज ! विष्णु तो विचारे बड़े शान्त हैं। उन्हें भीड़भाड़, कोलाहल, मँगतों की भीड़ अच्छी नहीं लगती। इन्हीं सब झंझटों से ऊबकर तो क्षीरसागर में जाकर बीचों बीच सोते हैं। चारों ओर दूध भरा रहने से कोई वहाँ पहुँच भी नहीं सकता। साँप पर सोते हैं, कि कोई डरके मारे

भी वहाँ न जाय। योगी लोग अत्यन्त एकान्त प्रिय होते हैं वे एकान्त अरण्य मे जनशून्य स्थान मे योग-साधन करते हैं। उनके भी एकान्त हृदय मे जाकर विष्णु छिप जाते हैं, हिरण्यकशिपु उनसे लडने गया। उन्होने सोचा "कौन लडाई झगडे के पचडे मे पडे। तुरन्त उसके एकान्त हृदय मे छिप गये, विष्णु वैसे बुरे नही एकान्त प्रिय हैं किन्तु ये देवता ही उनके कान भरते रहते हैं। असुरो के विरुद्ध उभाडते रहते हैं, जब ये जाकर रोते पीटते हैं, तो वे लडने चले आते हैं।"

कस ने कहा—"अकेले विष्णु ही तो नही है। त्रिशूलधारी शिवजी भी तो हैं।'

यह सुनकर हँसते-हंसते एक असुर बोला—"शिवजी की आपने अच्छी कही, वे तो भोलानाथ हैं। आक धतूरा खाते हैं, भांग का लोटा चढाते हैं। कैलास पर्वत के वनो मे विचरते रहते है उन्हे नगर और पुरो के झझट से क्या काम ? वे देवताओ का पक्ष लेकर यहाँ क्यो आने लगे। वे तो राक्षसो और असुरो को बडे-बडे वर देते हैं।"

कस बोला—"भाई, ब्रह्मा बाबा तो देवताओ का पक्षपात सदा करते हैं।'

वही मन्त्री तमककर बोला—'करते रहे पक्षपात। उनके पक्षपात करने से क्या होता है। आपने कही ब्रह्मा को लडते हुए सुना है। उसे जब देखो तब तप मे ही लगा रहता है। इसलिये शिव से ब्रह्मा से तो कुछ भय नही। पुरानी शत्रुता के कारण देवता विष्णु को भडकाकर युद्ध के लिये तैयार कर लेते हैं, क्योकि स्वय तो वे शक्तिहीन ही ठहरे। मन ही मन हमसे शत्रुता रखते ही हैं, यद्यपि वे हमारा कुछ कर नहीं सकते, फिर भी शत्रु और रोग कितना भी छोटा क्यो न हो, उसकी उपेक्षा कभी न

करनी चाहिये। शत्रु तो सदा हमारे छिद्र ही देखने मे लगा रहता है। कहावत है "लगा हुआ बुरा होता है।" अत राग का और शत्रु को कभी बढने न देना चाहिए। जब ये सिर उठावें, तभी इन्हे दवा देना चाहिये। तनिक-सा फोडा हुआ, हमने उसकी उपेक्षा कर दी कि, यह फोडा हमारी क्या हानि कर सकता है, तो सभव है वह भीतर ही भीतर बढ जाय सड जाय, राजरोग बन जाय सम्पूण शरीर का विषाक्त बना दे अत रोग के उत्पन्न होते ही उसकी चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये। अब इन देवताओ ने सिर उठाया है, हमे तुरन्त इनके सिरो को कुचल देना चाहिये। आप इनका मुलोच्छेदन करने के लिए हम अनुचरो को आज्ञा दीजिये। अब इनकी उपेक्षा करना उचित नही। कोई साधक है, वह इन्द्रियो की उपेक्षा करता है, तो पतित हो जाता है। कोई बनिया है यदि वह हिसाब देखने मे उपेक्षा करता है, तो दिवालिया बन जाता है। कोई ब्राह्मण है, वह नित्यकम को साधारण समझकर छोड देता है तो वह ब्रह्मत्व से च्युत हो जाता है। कोई सपेरा साँप को तुच्छ समझकर उसके दातो को नही तोडता, तो कभी असावधानी मे वह काट लेता है। इसी प्रकार शत्रु की उपेक्षा करने स उसका बल बढकर अटल हो जाता है। फिर उसे विचलित करना कठिन काय हो जाता है। देवताओ मे स्वय शक्ति नही है, वे तो विष्णु के बल पर ही कूदते हैं। विष्णु को निवल कर देने से देवता तो कुछ कर नही सकत।"

कस ने कहा—"विष्णु निर्बल कैसे हो ?"

एक बूढा-सा असुर मन्त्री बोला—"विष्णु वही रहता है, जहाँ सनातन धम होता है, अत सनातन धम को नष्ट कर दो, विष्णु स्वय घर बार विहीन निर्बल बन जायगा।"

कंस ने पूछा—"अच्छा सनातन धर्म का मूल क्या है।"

उसी मंत्री ने कहा—"सनातन धर्म के मुख्य पाँच मूल हैं। इन पाँचो को नष्ट कर दो, सनातन धर्म स्वतः नष्ट हो जायगा। सनातन धर्म के नष्ट होने से नास्तिकता बढ जायगी। नास्तिकता बढने से असुरो का प्राबल्य हो जायगा। असुरो की वृद्धि होने से लोग शरीर सुखो को ही मुख्य मानने लगेंगे। सबके सम्मुख रोटी का प्रश्न ही प्रधान हो जायगा। सब लोगो की दृष्टि इन बाहरी घटनाओ मे ही लग जायगी। अध्यात्मिक-चिन्तन सभी का छूट जायगा। खाओ, पीओ, मौज करो, यही मूल मन्त्र हो जायगा। हम असुर प्रकृति के तो यही चाहते हैं।"

कस न कहा—"हाँ, तो वे पाँच मूल कौन-कौन हैं पहिले उन्हे ही नष्ट करें।"

मन्त्री बोला—'सनातन धर्म के प्रथम मूल कारण तो ये बडी-बडी चोटी और पोथो पत्र वाले जनेऊधारी ब्राह्मण हैं। कैसे भी इनकी चोटी कटे, किसी प्रकार ये अपने प्रचीन आचार विचारो को छोड़े। दूसरे सनातन धर्म के मूल कारण वेद हैं। ये ब्राह्मण ही कष्ट सहकर बिना फल की इच्छा से वेद वेदाङ्गों को पढते और याद करते हैं। किसी प्रकार वेद वेदाङ्ग तथा पुराण शास्त्रों का प्रचार बन्द हो। इन ग्रन्थो पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। तीसरा सनातन धर्म का मूल कारण गौ है। गौ के ही दूध घी से यज्ञ याग आदि होते हैं। लोग गौ पालना छोड दें। सब गौ का भक्षण करें। यन्त्रो से या घोडो से खेत जोते जायँ, गौ को माता न मानकर भेड बकरी की भाँति एक साधारण पशु माना जाय। चौथा सनातन धर्म का मूल कारण है तपस्या। लोगो को तपस्या न करनी दी जाय। ऐसे नियम बनाये जायँ

लोग पवित्रता न रख सकें, सबके साथ खान पान विवाह सम्बन्ध अनिवार्य कर दिया जाय, जा तपस्या करते हो या तो उन्हें मार दिया जाय, या उनका विवाह करके उन्हे कृपक बना दिया जाय। पांचवां सनातन धर्म का मूल कारण है दक्षिणा सहित यज्ञ। यज्ञो को जैसे हो तैसे बन्द किया जाय। इन पांचो के नाश होने से निश्चय ही सनातन धर्म का नाश हो जायगा। इनमे दो मुख्य हैं गौ और ब्राह्मण, हत्या की जड ये ही हैं। अत. आप हमे आज्ञा दे दें कि, हम सब मिलकर वेद वेत्ता कर्म निष्ठ तपस्वी और यज्ञपरायण ब्राह्मणो का तथा यज्ञीय सामग्री हव्य देने वाली गौओ का सहार करें। इनके सहार करते ही विष्णु बिना गुण का अशरीरी निर्गुण बन जायगा। उसके शरीर को ही पहिले नाश कर दो।"

कस ने कहा—"विष्णु का शरीर कैसे नाश होगा। उसका शरीर तो नित्य है।"

मन्त्री बोला—'अजी, विष्णु का जो शरीर दीखता है, वही उनका शरीर नहीं है, उनके मुख्य शरीर तो ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य दम, शम, श्रद्धा, दया, तितिक्षा, और यज्ञ यही हैं। इन्हें पृथ्वी से हटा दो, विष्णु स्वय हट जायगा। विष्णु को पृथ्वी स अवश्य हटाना चाहिये। क्योकि ससार मे इस विष्णु को ही लेकर बड़े बखेड़े हो रहे हैं, भांति-भांति के सम्प्रदायो की सृष्टि हो रही है। सम्प्रदायिकता के मूल ये विष्णु ही हैं। इन्हें लोग सूर्य, शक्ति, शिव, महेश, गॉड, अल्ला, विष्णु भगवान् न जाने किन-किन नामो से पुकारते हैं। यह विष्णु दैत्यो का द्रोही है, सबका अन्यर्यामी है और समस्त देवताओ का नायक है। महादेव हुए, ब्रह्मा हुए तथा इन्द्रादि देव हुए सभी इस विष्णु के ही आश्रित हैं। और उसके वध का सरल सुगम सीधा उपाय

है ऋषि मुनियो का वध करना। केवल आपकी आज्ञा भर की देरी है। फिर देखिये, एक भी तिलकधारी जटाधारी, शिखा सूत्रधारी वामन न बचने पावेगा।'

कस ने उन क्रूर कर्मा कुटिल मन्त्रियो की बात पर विचार किया और फिर सोचा—'हाँ, ये लोग सत्य ही कह रहे हैं। ऐसा ही हो। उसने सबसे कहा—"यदि आप लोग मेरा इसी मे कल्याण समझते हैं, तो इन धर्म के प्रचारको को ही पहिले पकड लो। इन्हे ही मारो, इन्हे ही यातना दो, किसी पर दया मत करो, जिससे विष्णु का जड मूल से नाश हो, वही उपाय करो। कोई कीर्तन न करने पावे, विष्णु का नाम न लेने पावे। कथा-कीर्तन पर प्रतिबन्ध लगा दो। साधुजनो का सहार कर दो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। ऐसी आज्ञा देकर कस अपनी सभा से उठकर अन्त पुर मे चला गया। अब क्या था, असुर तो यह चाहते ही थे, अब तो उन्हे राजाज्ञा का सहारा मिल गया, राजविधान का भी बल प्राप्त हो गया। वे इच्छानुसार अनेक रूप रखकर साधुओ को पीडा देने लगे। उन दुष्ट दानवो की प्रकृति तो रजोगुणी थी ही। उनका चित्त तमोगुण से भी आच्छन्न था, इसीलिये वे सद् असद् के विवेक से सर्वथा शून्य थे। वे सब मृत्यु के मुख मे जाने वाले थे। जिसका विनाश निकट आ जाता है, उसे ही ऐसे कुकर्म सूझते हैं विनाश काल मे बुद्धि विपरीत हो जाती है। ऐसे लोग स्वभाव से साधुओं से द्वेष करने लगते हैं। मुनियो। महान् पुरुषों का [illegible] मनुष्यो के आयु श्री, यश, धर्म, स्वर्गादि उच्च लोक [illegible] तथा सम्पूर्ण श्रेयो को नष्ट कर देता है अत [illegible] रखने वाले को कभी भूलकर भी महान् पुरुषों का [illegible]

करना चाहिये। यह मैंने आप से योगमाया की भविष्यवाणी के सम्बन्ध की कथा कही। अब आप लौटकर पुन गोकुल मे आ जाय। वसुदेव जी श्रीकृष्ण को यशोदा जी की शैया पर रख आये, फिर इसके पश्चात् क्या हुआ इसी कथा को अब मैं कहता हूँ कि आप भली भाँति समाहित चित्त से श्रवण करें।

छप्पय

कुटिल कुमन्त्रिनि कही कंस सो सब कछु मानी।
गो, द्विज, तप, मख, वेद नाशकी मनमहँ ठानी॥
काल पाशमहँ फँस्यो असुर हिंसा हित मानै।
समुझै सतनि शत्रु द्विजनि निज नाशक जानै॥
यों मथुरामहँ असुरगन, धेनु द्विजनि दुख देहिँ नित।
मातु यशोदा सुत जन्यो, सुनहु भयो जो वृत्त इत॥

श्री नन्दलाल-जन्म

[८३८]

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥*

श्रीभा० १० स्क० ५ अ० १ श्लोक

छप्पय

जाइ सुनन्दा कह्यो—जन्यो भामीने लाला।
छिनमहँ फैली बात सुनत दौरी ब्रजबाला॥
नन्द अकबके भये देह की दशा भुलानी।
छायो नयननि नीर पुलक तनु गद्गद बानी॥
आवें गावत गीत सब, अति उमङ्गमहँ गोपगन।
पकरि नचावें नन्दकूँ, डगमग डगमग होहि तन॥

किसी वस्तु में सुख नहीं, घटना में सुख नहीं, सच पूछा जाय तो प्रतीक्षा मे सुख है। यो सामान्यतया शास्त्रकारो ने अनुकूल वदना को सुख कहा है, प्रतिकूल वेदना को दु ख कहा है। किन्तु वैसे ही सामान्य रीति से बिना प्रयत्न के बिना प्रतीक्षा के हमे

---

* श्रीशुकदेव जी कहते हैं—'राजन ! जब महामना नन्द जी ने सुना मेरे प्रात्मज हुआ है, तो उनके मन मे बडा आह्लाद उत्पन्न हुआ। उन्होंने ज्योतिष विद्या विशारद ब्राह्मणों को बुलाया, फिर स्वय स्नान करके वस्त्रो को धारण किया।'

इष्ट वस्तु प्राप्त हो जाय, तो उसमे कोई विशेषता प्रतीत नही होती। सामान्य सुख होता है, उसका भी अनुभव नही होता। यद्यपि जल को जीवन कहा है। प्यास न हो तो कितना भी सुन्दर जल रखा रहे, हमारे लिये उसका कोई विशेष महत्व नही। प्यास लगने पर उसके सुख का अनुभव होगा। प्यास जितनी ही अधिक तीव्र होगी, सुखानुभूति उतनी ही अधिक होगी। पपीहा के लिये वही स्वाति बूँद अमृत के सदृश है, क्योंकि उसने बहुत दिनो तक प्रतीक्षा की है। हम नित्य-प्रति भूख लगने के पूर्व ही भाँति-भाँति के स्वादिष्ट पदार्थ आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं, उनमे रस की स्फूर्ति नही होती, पदार्थ मे स्वाद का अनुभव नही होता। वही अन्न महीनो के लघन के पश्चात् अत्युत्कट भूख मे दिया जाय, तो दाल के पानी मे भी वह स्वाद आता है, जो कहा नही जाता। कुलाङ्गना पत्नी नित्य ही अपने पति से मिलती है, सामान्य सी-घटना प्रतीत होती है, किन्तु चिर प्रतीक्षा के अनन्तर जब वह परदेश से लौटता है, वह मिलन एक अत्यन्त सुखद प्रसग है। सामान्यतया जिनके घर मे खाने पीने का भी अभाव है, उनके यहाँ प्रति वर्ष एक पुत्र उत्पन्न हो जाय, तो उनके लिये सामान्य सी घटना है। वैसे पुत्र का उत्पन्न होना पिता-माता तथा परिवार वालों के लिये सुखद घटना है किन्तु आवश्यकता का अनुभव न होने पर भी जो पुत्र हो जाता है, वह किसी अश मे दु ख और चिन्ता का ही कारण होता है। जिसने कभी पुत्र का मुख न देखा हो, जो क्षण-क्षण पल-पल पर पुत्र मुख देखने के लिये लालायित हो रहा हो। माता-पिता तथा परिजन ही नही पूरा प्रात जिसकी प्रतीक्षा मे व्याकुल हो रहा हो, उसके उत्पन्न होने पर कितनी प्रसन्नता होगी यह कहने की बात नही अनुभव करने की बात है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! नन्दरानी के भवन में प्रसूति के लिये जितने उपयोगी सामान थे, वे सब जुटाये गये। गोपियाँ नन्दरानी का मन बहलाने के लिये ढोलक मँजीरा बजाकर गीत

गाने लगी। गीत गाते-गाते सबकी सब सो गयी। स्वयं यशोदा मैया को भी योगमाया के प्रभाव से नींद आ गयी। उसी नींद मे उसने कुछ पैदा किया। छोरा किया या छोरी, एक बालक जना या दो ये विवाद के विषय हैं। इस विषय पर सदा

भेद बना रहेगा, विवाद होता रहेगा। हमे इस विवाद में पडना नहीं छोरी हो तो भली छोरा हो तो भला। एक हो तो अच्छे दो हुए हो तो उससे भी अच्छे। ये सब बातें चोरी छिपे गुप चुप की हैं। अब जो सबके सम्मुख प्रत्यक्ष बात हुई, उसे ही आप सबके सम्मुख कहता हूँ।

सबसे पहिले सुनन्दा बुआ की आँखे खुली। उन्होने देखा सूतिका-गृह के दीपक सभी बुझे हुए हैं। भाभी के शयन स्थान मे एक नीलमणि के समान तजपुञ्ज पडा हुआ है, उसकी अनिर्वचनीय आभा से समस्त सूतिका-गृह अलौकिक हो रहा है। बूआ पहिले तो समझ न सकी यह क्या है। प्रथम उन्होने सोचा, यह कोई प्रस्फुटित नील कमल है, किन्तु नील कमल तो इतना वडा होता नहीं, वह तो जल मे खिलता है, सम्भव है, दाई ने नील मणियो का पुन्ज बनाकर किसी प्रयोजन से रख दिया हो, किन्तु यह तो पुज नहीं, इसके तो कर चरण आदि अग दिखाई देते हैं। सम्भव है अजन के चूर्ण को नवनीत मे मसल कर सुचिक्कण बनाकर रख दिया है, किन्तु निर्जीव अजन मिश्रित पुतला तो हिलता डुलता नहो इसमे तो चेष्टायें हैं।" बूआ ऐसी तकना कर हो रही थी, कि श्याम सुन्दर कुछ-कुछ अस्पष्ट स्वर मे रोए, मानो परा, पश्यन्ति वाणी में प्रणव का जन्म हुआ। अब बूआ को सदेह न रहा। समझ गयी, भाभी ने लाला जाया है। पास मे पडी दाई को झकझोरकर उसने कहा—"बुढिया, बुढिया! दाई! मर ही गयी क्या? हाय! ऐसी बूढ़ी दाई भी न बुलानी चाहिये। समय पर ही सो जाती है। दाई हड़बड़ाकर उठी और बोली—"बीबी! क्या है?"

झुंझलाकर सुनन्दा बुआ ने कहा—"है क्या, तेरा सिर

है। पडी-पडी खुर्राटे भर रही है। वहाँ भाभी के बच्चा भी हो गया।"

हडबडाकर दाई ने कहा—"अच्छा, बच्चा हो गया।" इतना कहते ही वह दौडी। मणियो के आलोक मे उसने देखा मानों–चिदानद सुधारस सरोवर मे एक अत्यन्त सुन्दर सुघर सुहावना नील सरोरुह खिल रहा हो। दाई ने दौडकर बच्चे को उठा लिया। पगली की भाँति चिल्ला उठी—"छोरा है, लल्ला है, राजकुमार है।" बस, फिर क्या था, इतना सुनते ही सबकी सब गोपियाँ जाग पडी। मसाले जल गयी। परिचारिकाएँ इधर-उधर दौडने लगी। परस्पर मे होड लग गयी, 'सबसे पहिले ब्रजराज को इस शुभ सम्वाद को मैं सुनाऊँगी।'

इधर दासियाँ दौड रही थी, उधर बूआ अपने अङ्गो मे नही समाती थी। कुछ भारी शरीर था; कटि के भार से छरहरी हथिनी की भाँति इधर से उधर इस प्रकार दौड रही थी, मानो उड रही हो। दौडकर घर मे से काँसे की थाली ले आयी। बच्चे के कान के समीप आकर उसे बजाया। बच्चे की शोभा निहार कर अकी-सी जकी-सी, भूली-सी भटकी-सी, प्रेम में बेसुधि-सी
गयी। फिर उन्हे चेत हुआ। हाथ मे गोबर और गेरू
पर दौडी गयी। और स्त्रियाँ तो ऊँचे स्वर-से बोल
किन्तु वह तो इस घर की लडकी ही ठहरी।
सुध नही। आँचल खिसक गया है। एडी तक
हिल रही है। द्वार पर से ही उसने
भाभी के बच्चा हुआ है, छोरा हुआ है
बूढी दासी आज युवतियों के भी
की तरह अपनी ओढनी को
चौपाल पर पहुँच गयी है।

बुआ सुनन्दा ने गेरू के थापे रखे। फिर दौड़ी-दौड़ी घर में गयी, एक कारी हँडिया उठा लायी। उसे आँगन मे लाकर फट्ट से फोड दिया। फिर घर मे घुस गयी, सूप उठा लायी; उसे घुमाकर दौडकर घूरे पर फेंक आयी। बात की बात मे धाय के पास आ गयी। धाय बच्चे को लिए बैठी थी, बालक के अनवद्य सौन्दर्य को निहारकर वह आत्म विस्मृत-सी बनी हुई थी। उस इन्द्र-नीलद्युति के सदृश प्रकाशवान् बालक के सौन्दर्य माधुर्य को निर्निमेष दृष्टि से निहारती हुई, अपने आपे को भूल रही थी, उसे न यह पता था, मै कौन हूँ, कहाँ हूँ, यहाँ क्यों और किस कार्य के लिए आयी हूँ, मेरा क्या कर्तव्य है। बस, उस सौन्दर्य की घनीभूत राशि मे उसने अपने मन को खो दिया था।

सुनन्दा बूआ ने आकर दाई को झकझोरते हुए कहा—"सो गयी क्या मरी! इस बुढिया से तो कोई दूसरी ही दाई बुलायी जाती तो अच्छी थी। इमे नीद से ही अवकाश नही।"

सुनन्दा के झकझोरने से दायी पगली-सी कहने लगी—"बीबो! मैं कहाँ हूँ, क्या है, मैं कहाँ चली गयी?"

खीजकर सुनन्दा ने कहा—"तू बैकुण्ठ में चली गयी, ला, लाला को मुझे दे। तू जाकर पैर फलाकर सोजा।" यह कहकर बूआ ने लाला को ले लिया। स्त्रियाँ सोहर के गीत गा रही थी, द्वार पर नौबत नगाड़े बज रहे थे, बीच-बीच मे तुरही की तू तू तू तू की विचित्र ध्वनि सुनायी देती थी।

बूआ ने शीतोष्ण जल से श्रीहरि के मुख पर छीटे दिये मानो पूजा मे प्रथम पाद्य अर्घ्य और आचमनीय दे रही हो, पुनः मोर पत्र लेकर उनका व्यंजन किया। बूआ की गोद में आते ही पाद्य, अर्घ्य का पानी पाते ही जगत्पति रोने लगे। "रोने क्यों लगे जी"—मानो हाऊ-हाऊ करके सामवेद के स्वरो को प्रकट

कर रहे हों; अथवा आज से श्रीकृष्णलीला आरम्भ होगी, अतः सर्वप्रथम मङ्गलाचरण करने के लिये उन्होंने प्रणवध्वनि की हो।

दाई को अब चेतना हो गयी, उसने शीघ्रता से कहा "बीबी ! बीबी ! मैने बच्चे के मुख में उंगली तो डाली ही नहीं। लाओ तनिक मुझे दे दो। तुम सुन्दर धुनी हुई रुई वहाँ छीके पर रखी है उसे ले आओ।"

इतना सुनते ही सुनन्दा ने बालक को दाई की गोदी में दे दिया, दाई ज्यो-ज्यों बच्चे को देखती, त्यों-त्यों आत्म विभोर-सी होती जाती। इतने में ही दौड़कर सुनन्दा रुई ले आयी। दाई ने अपनी उँगली को देखा, उसमें तनिक भी बढा हुआ नख नहीं था। उसे भली भाँति स्वच्छ करके उस पर रुई लपेट कर भगवान् के मुख मे वह उँगली डाली; साधारण बच्चो के कंठ मे कफ जरा आदि का अंश लिपटा रहता है, किन्तु भगवान् तो सभी मलो से निर्मुक्त हैं, उनका शरीर तो दिव्य चिन्मय है, उसमें क्या होना था। दाई ने उँगली से तालु, ओठ और कण्ठ को स्वच्छ किया। एक रुई के फोहे मे तेल भिगोकर भगवान् के तलवे पर रखा। अब भगवान् और स्पष्ट रुदन करने लगे। मानो मध्यमा वाणी में प्रणव उच्चारित हो रहा हो। तदनन्दर लालजी को दाई ने कूड़े में रखकर स्नान कराया। मानों पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय के अनन्तर अब स्नान हो रहा हो। स्नान कराके दाई ने कहा—"मैं तो इस पात्र को रत्नो से भरवाउँगी।"

यह सुनकर सुनन्दा बूआ थाल भरके रत्नों को ले आयी, कूडे को रत्नो से भर दिया। लालजी अब स्वस्थ हो गये, अब मानों वैखरी वाणी से स्पष्ट प्रणव ध्वनि करने लगे। लालजी जब मुक्त कण्ठ से रुदन करने लगे, तब दाई ने उन्हें उनकी बूआ की गोद में दे दिया। अब तक यशोदा मैया अचेत पड़ी थी। एक-

बार उन्होने अपने बालक की बाँकी झाँकी की थी, उसी से तन मन की सब सुधि भूल गयी थी। वे श्रीकृष्ण-दर्शन आह्लाद के सागर मे ऐसी निमग्न हो गयी कि, उन्हे चेतना ही न रही। दाई ने समझा रानी प्रसव की पीडा से अचेतन पडी हुई हैं, अतः उसने उनका उपचार करना आरम्भ किया। यशोदा मैया का शरीर कुछ स्थूल था। गोरे वर्ण के स्थूल शरीर पर उनके मातृ-स्नेह से परिपूर्ण लम्बे स्तन ऐसे प्रतीत होते थे, माना दो सुवर्ण के दिव्य पुञ्ज रखे हो। उनका कटिभाग अति स्थूल था। दाई ने उनकी नाभि पर दक्षिण हस्त रखकर नाभिको भली भाँति दबाया। बायें हाथ से पीठ को बल पूर्वक दबाकर उसे हिलाया। फिर पाँव को एडियो को शनै-शनै नाभि के ऊपर ले जाकर उनके नितबो की भली भाँति मालिस-सी की। समीप में ही खडी दासी से कहा—'अँगीठी जल रही है, उसमें से चार बडे-बडे दहकने कोयले ले आ। दासी तुरन्त कोयले ले आयी। उन्हें दूर रखकर उसमे उमने भोजपत्र, साप की किचुली पिसा काँच और मणि के चूर्ण की धूनी दी। और तुरन्त बोली—"वह जो मैंने सौंफ, कूट, मैनफल और हींग डालकर तिल का तेल तैयार किया है, उसे उस सामने की दिवाल मे से उठा ला। दासी तुरन्त उस तेल को उठा लायी। उसका फोहा बनाकर दाई ने रखा, फिर कहने लगी—सोंठ इलायची, चित्रक, चव्य, पीपल, कालाजीरा, देवदारु कूट, बायविडग, तथा विडनमक इनके कल्क म मिश्रित क्वाथ है इसे तुरन्त ले आ। इसके पीते ही अमरा गिर जायगा।"

इस प्रकार जब सब उपचार हो गये, तब यशोदा अपने व्रज-बालचन्द्र सच्चिदानन्द-कंद श्रीकृष्ण को अपनी गोद में लिया। वे देखती हैं नूतन दिव्य जलधर के समान उस दिव्य शिशु की आभा है, उसका प्रत्येक अग चम-चम करके चमक रहा है। वे समझ ही

नहीं सकती, कि यह घनीभूत आनन्द है या सुख की साकार मूर्ति है, अथवा प्रत्यक्ष सशरीरी आह्लाद है। वे जितना ही बालक को निहारती हैं, उतनी ही आनन्द मे विभोर होकर आत्म-विस्मृत सी बनती जाती हैं।

इधर जब बूढ़ी परिचारिका ने नन्दजी को पुत्र जन्म का मधुरातिमधुर कर्णों को अमृत रस मे परिप्लावित करने वाला शुभ सम्वाद सुनाया। तो उनके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उधर यशोदाजी ने एक बच्चा अपने उदर से उत्पन्न किया, इधर नन्दजी के हृदय से भी एक बच्चा उत्पन्न हो गया। उसकी पीड़ा मे ये भी मूर्छित हो गये।

यह सुनकर शौनकजी बोले—'सूतजी! आप यह कैसी उलटी गंगा बहा रहे हैं। महाभाग! स्त्रियो के बच्चा होते तो हमने सदा सुना हैं। पुरुषो के कभी बच्चा हुआ हो यह बात तो हमने कभी सुनी नहीं। हाँ, महाराज मान्धाता अपने पिता के पेट से अवश्य उत्पन्न हुए थे, सो वह तो मन्त्रपूत जल के प्रभाव से ऐसा हुआ था। अच्छा यशोदाजी ने तो श्रीकृष्ण को उत्पन्न किया। नन्दजी के बच्चे का नाम क्या था?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! नन्दजी के बच्चे का नाम था आह्लाद। आत्मा से ही तो पुत्र उत्पन्न होता है। नन्दजी के अन्तरात्मा मे अत्यधिक आह्लाद उत्पन्न हुआ, उसी आह्लाद के कारण वे आत्मविस्मृत से बन गये। पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनते ही उनके रोम-रोम खिल उठे। नेत्रों से प्रेम के अश्रु स्वतः निकलने लगे सपूर्ण शरीर पुलकित हो उठा। जो हार पहिने थे, उसे सूचना देने वाली दासी को पहिना दिया। वे हक्के-बक्के से खड़े ही रह गये।"

उपनंदजी ने कहा—"नन्द ! भैया ! तू घर में जा। देख कोई काम हो तो।"

नन्द का हृदय बाँसो उछल रहा था, वे चाहते थे, अभी चलकर बच्चे को छाती से चिपटा लूँ। स्वप्न में जो पुत्र की साँवली सलोनी मूर्ति देखी थी, वह उनके नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष नाचने लगी। वे उस साकार सौंदर्य का स्मरण करते ही अचेतन-से हो उठे। अपने बड़े भाई के सम्मुख अन्तःपुर मे कैसे जायं, अतः वे बड़े कष्ट से बोले—"मै वहाँ जाकर क्या करूँगा। ब्रजभर की लुगाइयाँ तो वहाँ इकट्ठी हो रही है।"

हँसकर उपनन्दजी बोले—"अरे तू अभी तक भौंदू ही रहा। तुरन्त उपनन्दजी अपने छोटे भाई सनन्द से बोले—"भैया जा तू जितने ब्रज मे ज्योतिषी ब्राह्मण हैं, सबको बुला ला। शांडिल्य जी को पहिले भेजना।"

इतना सुनते ही सनन्दजी तुरन्त लाठी लेकर चल दिये। १०।२० गोप उत्साह मे भरकर उनके पीछे-पीछे चले। उपनंदजी स्वयं दौड़े दौड़े रोहिणी देवी के घर में गये। रोहणीजी प्रोषित भर्तृका ही ठहरी। उन्हे नियमानुसार उत्सव में न जाना चाहिये। अतः कई बार सूतिका-गृह का तो चक्कर लगा आयी है, किन्तु अभी तक उत्सव में नही गयी। उपनन्दजी ने जाकर कहा—"रानी ! तुम्हारे घर में पुत्र हुआ है, तुम यहाँ बैठी हो। वहाँ सार सम्हार कौन करेगा। अपने घर में भी कोई नियम होता है क्या ?"

संकोच के स्वर में रोहणीजी ने कहा—"अजी मैं अभी तो वहाँ से आयी हूँ, भेरी, वीणा, नौबत आदि बाजो की ध्वनि सुन कर ही मैं समझ गयी नंदरानी के लाला हुआ है, मैं अभी जाती हूँ।" यह कहकर बलरामजी को गोदी में लेकर रोहणी देवी भी

पहुँच गयी । बलदेवजी जग पड़े । वे चकित-चकित दृष्टि से अपने भाई की ओर देखने लगे । हँसने लगे और किलकारियाँ मारने लगे । सभी को बडा कूतूहल हुआ, यह लडका तो कभी हँसता ही नही था । आज तो यह बहुत हँस रहा है । सभी को पौर्णमासी पुरोहितानो की बात याद आयी । रोहिणीजी ने यशोदाजी से पूछा—'बीबी ! कैसा चित्त है ?"

यशोदा रानी यह सुनकर रो पडी, उनका कठ अवरुद्ध हो रहा था, उन्होने कुछ भी नही कहा केवल हाथ जोड दिये । रोहिणी ने दाई से पूछा –"क्या-क्या हुआ ?"

दाई अकबका गयी और कुछ रुक रुककर बोली—"बालक को स्नान करा दिया है, तालुमे फोहा रख दिया है, सेंधा नमक और घी चटाकर मैंने बालक को वमन करानी चाही, किन्तु उसने वमन नही की । बालक के अङ्ग मे न मल था न किसी प्रकार की अशुचिता । रानी ने पुत्र प्रसव के अनन्तर ही अमरा का परित्याग कर दिया है । अब जो आपकी आज्ञा हो वह करूँ ।"

अधिकार के स्वर मे रोहणी देवी ने कहा—"ठीक है, अब बच्चे को ऐसे ही सुला दो । फिर सुनन्दा से बोली—"बीबी ! तुमने महागोपुरो मे जो महादुन्दुभियाँ रखी हैं, उन्हे बजवाने की की आज्ञा नही दी ?"

सुनन्दा शीघ्रता से बोली—"अरी, भाभी ! क्या बताऊँ मैं तो भूल ही गयी थी, किन्तु बड़े आश्चर्य की बात यह सुनी, वे दुन्दुभियाँ तो अपने आप बजने लगी । तुम सुन नही रही हो । उनकी ध्वनि २४ कोस मे पहुँचती होगी ।"

रोहणीजी बोली—"अच्छा तो बीबी जी, एक काम करो । अभी तो बच्चे के नाल-छेदन मे देरी है, क्योकि अभी तो पण्डित आवेंगे । बडी देर तक वे पूजन आदि करेंगे । तब तक तुम एक

भीगे कपडे को नाभि मे रख दो, जिससे नाल सूखने न पावे।"

दाई बोली—"रानीजी! सो तो मैंने सब कुछ कर दिया है। अब बाहर से ब्रजराज को बुलाओ। अब देखो प्रात.काल ही होना चाहता है, अब देरी करने का काम नही है।"

यह सुनकर तुरन्त रोहिणीजी ने बूढी दासी को भेजा—"ब्रजराज से कहो, क्या कर रहे हैं वे। उनसे कहना जो कराना हो शीघ्र करावे। फिर हमे अपने घर के भी तो नेग जोग कराने हैं।"

दासी पुन: दौडी-दौडी गयी। वहाँ वह क्या देखती है, कि बडी-बडी पगडी बाँधे पडितो की सभा लग रही है। कोई लगन निकाल रहे हैं, कोई हाथ पर मेष, वृष, मिथुन, कर्क आदि गिन रहे हैं। कोई बालक के जन्म की यथार्थ घडी पूछ रहे हैं। महीना, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण सभी ज्योतिष सम्बन्धी बातो पर विवाद कर रहे हैं।

दासी ने कहा—"ब्रजराज! महारानी रोहणी ने आज्ञा दी है, अब देर करने का काम नही आप अतिशीघ्र महलो मे पधारें।"

नन्दजी कहा—"अच्छी बात है; कहना हम आते है।"

यह सुनकर दासी चली गयी, तब उपनन्दजी ने शाडिल्य से पूछा—"अब इस नन्द को क्या करना चाहिये।"

शाडिल्यजी ने कहा—"अब इन्हे स्नान करना चाहिये। अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणो को धारण करना चाहिये, तब अन्त.पुर मे ब्राह्मणो के सहित बालक के जात कर्म सस्कार के निमित्त जाना चाहिये।"

इतने मे ही गोप बोले—"बाबा यहाँ ही नहा लें। गरम पानी अभी हम लाते हैं।"

यह सुनकर शाडिल्य मुनि बोले—"तुम सब सिर्री हो गये हो क्या रे ! तुम निरे भौंदू ही रहे। इतना भी तुम नही जानते पुत्र-जन्म के समय उष्ण जल से स्नान न करना चाहिये।"

गोप बोले—"अच्छी बात है महाराज, तो चलो यमुना स्नान ही कर आवे।"

यह कह कर बहुत से गोपो के साथ नंदजी यमुना स्नान करने गये। यमुना स्नान से लौट कर उन्होने अपना सफेद अगरखा पहिना। बडी सफेद पगडी बाधी उसके ऊपर पेच कसा। दुपट्टा कधे पर डाला। गोप गले मे पहिनी। कानो को मुरकियो को कपड़े से पौंछा। सोने की जजीर कंठ में पहिनी। इस प्रकार सज बज कर वे अन्त. पुर मे जाने के लिए तैयार हो गये। उनका हृदय प्रेम से भरा हुआ था। पुत्र दर्शन की चटपटी लगी हुई थी। शील सकोच से कहते नही थे, नही तो वे चाहते थे, मैं तुरन्त वहाँ पहुँच कर उस नयनाभिराम मूर्ति को देख कर अपने हृदय को शीतल करूँ। ब्राह्मण अपनी-अपनी पोथी पत्रा बाधे नन्दजी के पीछे पीछे चले। आगे आगे शाडिल्य मुनि जा रहे थे। उनके पीछे ब्रजराज और इधर-उधर दायें बाये तथा पीछे और भी बहुत-से वेदज्ञ ब्राह्मण चल रहे थे।

भीतर स्त्रियो की भीड लगी हुई थी, आँगन मे तिल रखने का स्थान नही था। नदजी इतनी भीड को देख कर सकपका गये। पहिले तो जहाँ उन्होने पौरी से खास मठार की कि, उनके खाँसने को सुन कर ही स्त्रियाँ लम्बा घूँघट मार कर एक ओर हट जाती थी, आज खास मठारने की बात तो कौन कहे शाडिल्य जी बार-बार कहते—"बेटियो ! तनिक हट जाओ।

नन्दराय आ रहे हैं।" किन्तु कौन सुनता है, वे तो आनन्द में विभोर होकर अपने आपे को भूली हुई थी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जैसे-तैसे प्रसूति-गृह के सम्मुख आँगन में स्थान किया गया। वहाँ सुन्दर आसन बिछाये गये। जात कर्म संस्कार की सभी सामग्री जुटाई जाने लगी। नंदजी चुपचाप बैठे-बैठे इन सब बातों को देखने लगे। अब जात-कर्म की कथा आगे सुनाऊँगा।"

छप्पय

ज्योतिषविद्या विज्ञ बहुत से विप्र बुलाये।
नंदमहरि सुत जन्यो सुनत सब द्विज उठि धाये॥
सबने आशिष दई ग्रहनि के सुफल बताये।
सबकी सम्मति समुझि नंद जमुनामहँ न्हाये॥
बूढ़े बाबा पहिन पट, आज अनंग के सम लिले।
वृन्द गोप अरु द्विजनि सँग, प्रमुदित अन्त पुर चले॥

श्रीनन्दात्मज का जात-कर्म संस्कार

[८३९]

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥ ❀
(श्रीभाग० १० स्क० ५ अ० २ श्लोक)

छप्पय

गोपिनितैं घर घिर्यो गीत सोहरिके गावैं ।
सुधि बुधि भूलैं खड़ीं हटैं नहिँ विप्र हटावैं ॥
ज्यों त्यों भीतर गये द्विजनि सामान मँगाये ।
जात करम अरु देव पितर पूजन करवाये ॥
ब्रज सुख-सागर शान्त सम, उमड़ि हरष प्रकटित करैं ।
उदित भये ब्रजचन्द्र हरि, रत्ननितैं तटकूँ भरैं ॥

संस्कार ही सदाचार में मुख्य कारण है। जिसके जैसे संस्कार होंगे, आगे वैसा ही उसका जीवन होगा। माता-पिता कुटुम्ब, परिवार के लोगों के जैसे संस्कार होंगे बालक पर भी उनका वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। इसके अपवाद भी देखे जाते हैं, किन्तु नियम में अपवाद तो हुआ ही करते हैं, नियम ऐसा ही है।

❀ श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! पुत्र उत्पन्न होने पर नंदजी ने ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराके विधिवत् सुत का जात-कर्म संस्कार कराया तथा देवता और पितरों का पूजन कराया।"

समाज की संस्कृति का प्रभाव भावी सन्तानों पर पड़ता है, इसीलिए आर्य वैदिक सनातन धर्म में वैदिक संस्कारों के प्रति बड़ा आग्रह प्रकट किया जाता था, स्त्री विषय के लिये नहीं है। यह नहीं जब इच्छा हो संयोग करो। इन सब बातों का नियम है, गर्भाधान भी एक संस्कार है, प्रथम विधिवत् वेदोक्त विधि से हवन पूजन आदि करके वैदिक या तांत्रिक मंत्रों द्वारा गर्भाधान संस्कार करे, गर्भ रह जाने पर पुनः पुंसवन संस्कार करे। फिर सीमन्त संस्कार होता है, उत्पन्न होने पर जात-कर्म सस्कार होता है। इन सब सस्कारों का एक मात्र तात्पर्य यही है, कि बच्चे के शुभ संस्कार बनें। गर्भ में रहने के दोषों को निवारण करने के निमित्त जात-कर्म संस्कार होता है। नालच्छेदन के पूर्व ही यह संस्कार किया जाता है। जब वैदिक संस्कारों में आस्था थी, तब प्रत्येक द्विज के यहाँ ये सब संस्कार किये जाते थे, अब तो इनकी कथा मात्र ही अवशेष है। विकृत रूप में कुछ संस्कार अब भी अवशिष्ट हैं।

सूतजी कहते—"मुनियो! वेद वेदाङ्ग के जानने वाले ज्योतिष विद्या में निपुण ब्राह्मणों को साथ लिये हुए नंदजी आँगन में पहुँचे। सामने ही प्रसूति-गृह था। घर के सम्मुख पर्दा पड़ गया। आँगन में ऊनी बिछोने बिछ गये, स्त्रियाँ सब दालानों में बैठ गयी। उनमें जालीदार परदे लग गये, सुनन्दा बूआ और दास दासियाँ ही आँगन में रह गयी। नंदजी ने कहा—"सुनन्दा देख, ये जो ब्राह्मण कहें, वे सब वस्तुएँ लाकर यहाँ रखती जा।"

सुनन्दा बूआ ने कहा—"पूजन की सामग्री तो मैंने पहिले ही इकट्ठी कर रखी है। कलश, यमुना जल, आसन, दूध, दही, घृत, दीप, नैवेद्य, सुपारी, फल, वस्त्र, कलावा, यज्ञोपवीत, ये सब तो हैं। पान अभी मँगाती हूँ, इनके अतिरिक्त और जो चाहिये सो पंडितजी बतादें।" यह कहकर तुरन्त उन्होंने सेविकाओं से

सब वस्तुएं मंगा दी। पडितो ने सब वस्तुओ को यथा स्थान सजाया। फिर बोले —'अच्छा तो कार्य आरम्भ हो।"

सुनन्दा बोली—'पडित जी, भाभी तो बाहर आ नही सकती।"

पडित जी बोले—"कोई बात नही, नंदराय के दुपट्टा मे एक बडी सी पगडी जोड कर नदरानी को ओढनी मे बांध दो। इतने-से ही काम चल जायगा। जा बांध आ।'

हंस कर सुनन्दा बोली—"पहले अपना नेग जोग लेलूंगी तब बाँधूगी या वैसे ही बाँध आऊंगी।"

पडित जी बोले—'तू ही तो घर की सब कुछ है, जो चाहे सो ले लेना।'

सुनन्दा बोली—'सब कुछ होने से क्या हुआ सब बात समय पर शोभा देती है। आज मेरे लेने का समय है।"

नदजी ने हंस कर कहा—'तू अब क्या काम करती है या लडाई करती है।'

सुनन्दा बोली—"मैया! मेरी लडाई का तो यही समय है मै लडूगी झगडूंगी।"

नदजी ने हंस कर कहा— जा, जा, काम कर अपनी भाभी से मांगना।"

यह सुनकर नद जी के दुपट्टा मे गांठ बांध कर सुनन्दा सूतिका गृह मे गयी और बोली— भाभी गांठ बधाई चन्द्रहार लूंगी।"

आँखो मे आसू भर कर यशोदा मैया न कहा— बीबी! सब तुम्हारा ही तो है मैं देने वाली कौन होती हूँ।' सुनन्दा बूआ ने गाँठ बांध दी। बच्चे को गोद मे लेकर आ बठी।

ब्राह्मणो ने प्रथम सस्वर स्वस्तिवाचन कराया। तदनन्तर नद-

जी से सकल्प कराया, नदजी की दृष्टि एक टक उस नीलबाल-मणि, तेजपुंज सुधारस सागर सौन्दर्य-सा सरोरुह सुत के सलोने शरीर पर ही लगी थी, वे उसकी शोभा को निरखते-निरखते आत्मविभोर-से हो रहे थे। पडित कहते 'महाराज! जल छोडो, पुष्प छोडो, नद जी कुछ सुनते ही नही थे, सुनते थे, तो कुछ का कुछ छोड देते थे। जब ब्राह्मण कई बार कहने लगे तब उन्होने कहा—'ब्राह्मणो! न जाने मुझे क्या हो गया है, मेरा चित्त कुछ अच्छा सा नही है। आप मे से कोई मेरा प्रतिनिधि बन कर इन सब कृत्यो को करावे।"

एक वृद्ध पडित बोले—"हाँ, हाँ, यह उत्तम विधि है। वैश्य क्षत्रिय अपने प्रतिनिधि ब्राह्मण से ही करा सकता है। इन पडितजी को अपना प्रतिनिधि बना दो।"

नद जी ने ऐसा ही किया, अब वे ब्राह्मणो के द्वारा करवाने लगे। ब्राह्मणो ने प्रथम कलश-पूजन, दीप पूजन, शखादि का पूजन कराया। पुन. सक्षेप मे गणपति, नवग्रह, षोडशमात्रिका, पच देवो का पूजन कराया। पुन. नान्दीमुख श्राद्ध कराया। पितर-गण स्वर्ग मे बैठे इसी बात की प्रतीक्षा करते रहते हैं, कि हमारे वश मे कोई पुत्र उत्पन्न हो, जो हमे जल तर्पण तथा पिडादि श्राद्ध द्वारा तृप्त कर। अपने वश मे पुत्र उत्पन्न होने से पितरो को अत्यधिक प्रसन्नता होती है।

देवता और पितरो का पूजन अर्चन होने के अनतर तीन व्याहृतियो से 'उपयिदधामि' ऐसा मत्र पढ़कर चौथी ऋचा मे प्रणव लगा कर बताया गया, तेरी मेधा को मित्रावरुण बढ़ावे'। फिर पाँचवी ऋचा मे प्रार्थना की गयी तेरी मेधा को अग्नि कमलो-की माला धारण करने वाले अश्विनी कुमार बढावे ऐसे मन्त्र पढ़ कर सुवर्ण की सलाका से बालक की जिह्वा पर घृत के

बिन्दु डाले गये। इस मेधा वृद्धि संस्कार से बालक तीक्ष्ण बुद्धि-वाला होता है। तदनन्तर वेदोक्त मन्त्रो द्वारा मन्त्रित किया हुआ विषम भाग में घृत और शहद मिलाकर बालक को चटाया। जिससे बालक की कान्ति प्रकृति स्निग्ध हो, उसकी वाणी मधु के सदृश मीठी हो। फिर ब्राह्मणो ने भाँति-भाँति के आशीर्वाद दिये।

इस प्रकार जात कर्म सस्कार के सब कृत्य होने पर ब्राह्मणो ने बालक को भीतर ले जाने की आज्ञा दी। सुनन्दा बूआ बालक को यशोदा मैया की शैया पर सुला आयी। अब तक नन्दजी ब्रह्मानन्द मे निमग्न हुए अचेतन-से पड़े थे। आकर सुनन्दा ने कहा—"भैया! अब कहो तो बच्चे का नालच्छेदन किया जाय।"

नन्दजी मानो सोते से जागे हो। सम्मुख उस साँवरी सलौनी मूरति को न देखकर वे हड़बडा कर उठ खडे हुए और बोले—"सुनन्दा! अब क्या करना होगा।"

सुनन्दा ने कहा—"अब भैया! तुम चौपाल पर जाओ। हम अपने घर के नेग-जोग करेंगी। हाँ, पडितजी से पूछ लो नालेच्छेदन करे।"

नन्दजी ने कहा—"अरी, अभी नालेच्छेदन कैसे होगा, इन सब ब्राह्मणो को दान दक्षिणा देनी है। अभी नालेच्छेदन का काम नहीं। हमारा यही प्रथम और यही अन्तिम पुत्र है। अब हमारे कोई दूसरी सन्तान होगी, ऐसी आशा नही। मेरा मन कहता है आज मैं अपना सर्वस्व लुटा दूँ।"

सुनन्दा ने कहा—"हाँ, भैया! बडी अच्छी बात है, लोग कब से आशा लगाये बैठे हैं। ये ब्राह्मण कितने दिनो से यमुना जी पर कुटिया बनाये अनुष्ठान कर रहे हैं। सबकी इच्छा पूरी

कर दो। सबको ऐसा बना दो, कि फिर इन्हे याचना ही न करनी पड़े।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अपनी बहिन के ऐसे उत्साह वर्धक वचन सुनकर नन्दजी तुरन्त चौपाल पर आये, उन्होंने अपने कोषाध्यक्ष को बुलाया और फिर वे भाँति-भाँति के दान करने लगे।"

छप्पय

लौकिक वैदिक कर्म करे सुतके मङ्गल हित।
निरखि निरखि सुत-बदन हृदय होवे आनन्दित॥
चितमहँ अति उत्साह विचारें का दै डारूँ।
ऐसे सुतकूँ पाइ च्यौं न सरवसु हौं वारूँ॥
यौं विचारि चौपारिमहँ, कोषाध्यक्ष बुलाइकें।
बोले ताले खोलकें, सब धन देहु लुटाइकें॥

पुत्र-जन्म के उपलक्ष में नंदजी द्वारा विप्रों को दान

[८४०]

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते ।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥*
(श्री भा० १० स्क० ५ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

पुनि बुलवाये गोप कही खिरकनिकूँ खोलो ।
मनमानी द्विज धेनु, लेहिँ मत तिनतें बोलो ॥
चाँदी के खुर करो-सींग सोनेतें मढ़िकें ।
सुंदर वस्त्र उढ़ाइ पूँछ मोतिनितें जड़िकें ॥
माँगें जितनी जो गऊ, तितनी तिनकूँ दानमहँ ।
देहु न होवे- नेंकहू, कमी-- मान सम्मानमहँ ॥

हृदय में भिन्न-भिन्न वृत्तियो की स्नायु होती हैं, जब जैसा भाव होता है, तब तैसी वृत्तियाँ उदय हो जाती हैं। बहुत-से भाव स्वतः एकान्त में उदित हो जाते हैं, बहुत-से किसी वाह्य कारण से उदित होते हैं। कामिनी को देखकर काम के भाव उदय हो जाते हैं,

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! नन्दजी ने बीस लाख गौएँ ब्राह्मणों को दीं; वे सबकी सब वस्त्राभूषणों से अलकृत थी। सात तिलके पर्वत भी दिये, जो रत्नों से तथा सुनहरे काम किये हुए वस्त्रों से ढके हुए थे।"

जिन्होने काम पर विजय प्राप्त करली है, उनकी बात दूसरी है। किसी हर्ष के समाचार को सुनकर हमारा रोम-रोम खिल उठता है। चित्त अत्यन्त प्रफुल्लित हो जाता है, इसी प्रकार प्रियजनो की विपत्ति मृत्यु आदि सुनकर शोक सम्बन्धी स्नायुओ मे एक प्रकार का विशेष स्पंदन होता है, हृदय धडकता है, नेत्रो मे अश्रु आ जाते हैं, चित्त व्याकुल हो जाता है। कुछ वृत्तियो के आने से संग्रह का भाव जाग्रत होता है, जैसे कोई अपरिचित इष्ट वस्तु की याचना करे या संग्रहणीय वस्तु के नाश का प्रसग हो, ऐसे समय लोभ की वृत्ति प्रवल हो जाती है। किसी समय उदारता की स्नायु बलवती बन जाती है, पुत्रोत्सव के समय, विवाह के समय अथवा अन्य उत्सव-पर्व या सस्कार के समय चित्त मे देने की व्यय करने की भावना जाग्रत होती है। इन सब मे केवल काल का ही प्रभाव नही पडता है, अपितु देश और पात्र का भी संयोग होना आवश्यक है। कोई पात्र अनुपम युक्त है, उस पर देश काल का प्रभाव ही नही पडता। एक अत्यंत कृपण है, उसे किसी को खिलाना हो, विवाह हो, पुत्र-जन्म हो, व्यय करते समय उसके प्राण निकलेगे। उस पर काल का जितना चाहिये उतना प्रभाव नही पडता। एक अत्यंत वज्र हृदय पुरुष है, उसकी लडकी बहिन विदा हो, सगे सम्बन्धी मर जायँ, उसकी फूटी आँखो से एक भी आँसू न गिरेगा। या पूर्ण ज्ञान निष्ठ की भी ऐसी दशा होती है। माघ का महिना है, तीर्थराज प्रयाग ऐसा पुण्य क्षेत्र है, वहाँ स्नान करके दान पुण्य करने की स्वाभाविक इच्छा होती है, यह देश का प्रभाव है। यदि कोई उदार चित्त का व्यक्ति है, उसे यदि कोई अभूत पूर्व प्रसन्नता हो जाती है, जैसे अब तक उसके पुत्र नहीं और सहसा आशा न रहने पर भी पुत्र हो जाय, तो उस समय उसकी उदारता पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है,

देत-देते उनका चित्त भरता भी नही। ऐसा लगता है, मा
सर्वस्व दान कर दूं। बौद्ध काल मे सम्राट् हर्ष के सम्ब
मे ऐसी प्रसिद्धि है, कि जब प्रयाग में बारह वर्ष के पश्चात् क
लगता था, तो वे अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणो को भिक्षुओ
तथा दीन दुखियो को बाँट देते थे। यहाँ तक कि अपना रा
मुकुट भी उतार कर दे देते थे। एक लंगोटी लगा कर रह जा
थे। सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के बहुत-से राजाओ की ऐसी कथा
हैं कि, वे अपने यज्ञो मे सर्वस्व दान कर देते थे, और अंत मे मिट्
के पात्रो मे खाते थे। वास्तव मे यही तो धन का उपयोग है। दे
जाय तो धन है क्या। जसे भूमि से कही काली मिट्टी निकल
है, कही पीली, कही सफेद। ऐसे ही सोना, चाँदी आदि धातु
भी मिट्टी ही है, जहाँ से उत्पन्न हुई हैं। वही मिल जायँगी।
न आज तक किसी की हुई न होगी। यह लोगो का भ्रम
मोह है, कि हाथ मे रुपया पैसा या अन्य धन आते ही मेर मे
कह कर उसमे लोभ करने लगते हैं। धन तो यही से उत्पन्न हु
है यही रह जायगा केवल यश अपयश ही शेष रह जाता
मनुष्य उसके द्वारा सद्वृत्तियो का उद्बोधन करके स्वर्ग लाभ
कर सकता है और लोभादि असद्वृत्तियो को बढा कर घोर न
क मे भी जा सकता है। हर्ष के समय जिसकी त्याग वृत्ति जाग्र
न हो उसे या तो त्रिगुणातीत समझो या फिर नरपशु।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नदजी महामना थे। उनव
चित्त अत्यत ही उदार था। व्रज मे उनकी उदारता सर्वविदि
थी। सहस्रो वेदज्ञ ब्राह्मणो को उन्होने आश्रय दे रखा था। व्र
के जितने गोप है सब उन्हे अपने पिता के समान मानते थे
जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होती, अपने घर के समान न
जी के यहाँ आते और उठा ले जाते थे। भाग्य से ऐसा ही स्वभा

जाते, गोप तुरत उनके खुरो को चाँदी से मढ देते। सीगो मे सोना लगा देते। कठ मे सुवर्ण की माला पहिना देते। ऊपर से सुवर्ण के काम का दुशाला उढा देते। पूँछ मे मोतियो को लगा

देते। कासे की दोहनी दे देते। अन्न रख देते, ब्राह्मण को भी अँगरखी, पगडी, पेच, दुपट्टा, साफी तथा मणि मुक्ताओ और सुवर्ण की मालायें पहिना देते। इस प्रकार अलकृत गोओ को अलकार किये हुए ब्राह्मणों के लिये तुरन्त दे देते थे। किसी

को रोक नही, टोक नही, जिसे जितनी चाहिये उतनी ले जाओ। बहुत-से आते महस्रों छाँट लेते, फिर सोचते—'और गौओ का ले जाना तो सरल है, इन्हे रखेंगे कहाँ, बाँधेंगे कहाँ। फिर इनकी देख-देख कौन करेगा। यही सब सोच कर वे सब को छोड देते, दो चार ले जाते। इस प्रकार दिन भर यही लीला होती रही।

एक ब्राह्मण था, घर तो उसका छोटा था, किन्तु तृष्णा बडी थी। अच्छी-अच्छी सुंदर-सुंदर पचास गौएँ ले आया। इसकी स्त्री कुछ ऐसी ही सट्ट-पट्ट थी। वह तो बडे उत्साह मे बडी प्रसन्नता मे गौओ को लाया। उसने सोचा—"मेरी घरवाली अत्यन्त प्रसन्न होगी।।" आते ही उसने घर मे आँगन मे पैरी मे द्वार पर सर्वत्र खूँटे गाड दिये। फिर भी गौएँ न समायी। तब उसने घर मे रसोई घर में खूँटे गाढे। अब घर मे एक तिल रखने को स्थान न रहा। गौएँ फिर भी शेष थी। उसने अपनी घर वाली स पूछा—"सुनती है सुक्खा की माँ! ये गौएँ बच रही हैं इन्हे कहाँ बाँधूँ।"

उसने कहा—"एक खूँटा मेरे सिर पर गाड दो उसमे बाँध दो।"

ब्राह्मण बोला—"अरी, क्रोध क्यो करती है, कैसी सुन्दर-सुन्दर तो मै गौएँ लाया हूँ, तुझे प्रसन्न होना चाहिये। उलटे व्यग वचन बोल रही है।"

उसने तुनक कर कहा—"और कहाँ स्थान बताऊँ। घर तो तुम्हारा जितना बडा है उतना ही रहेगा। वह बडा तो हो सकता नही। चौका चूल्हे को भी तो तुमने घेर लिया है। चूल्हे पर खूँटा गाड दिया है, अब मै रोटी कहाँ करूँगी।"

ब्राह्मण ने कहा—"अब रोटी का क्या काम? अब तो खीर बनाओ और दोनो,हाथों से सपोटो।"

स्त्री बोली—'खीर बनाने को भी स्थान चाहिये।"

ब्राह्मण बोला—"बरोसी मे बने, यदि तेरी इच्छा होगी तो कुछ गौओ को ससुराल भेज देंगे।"

यह सुन कर स्त्री प्रसन्न हो गयी और उसने ब्राह्मण की बात-को स्वीकार कर लिया।" इस प्रकार दिन भर गौओं का दान होता रहा। जब सब चले गये, तो नदजी ने पूछा—"सब कितनी गौएं दान दी गयी।"

सेवकों ने गणना करके बताया—'बीस लाख गौएं अब तक दान हुई हैं।"

नदजी ने कहा—"इतने से तो हमारी तृप्ति हुई नही। उन्होने ब्राह्मणो से कहा—"ब्राह्मणो! मेरी तो इच्छा यह होती है, कि सुवर्ण के सुमेरु को दान दे दूं। किन्तु सुमेरु हमे मिले कैसे?"

ब्राह्मण बोले—"बाबा! साक्षात् सुमेरु न भी हो, तो भी पुराणो मे ऐसे उपाय है कि, सुमेरु दान का फल मिल जाता है।"

नन्दबाबा बोले—"हाँ, हाँ वह उपाय मुझे अवश्य बताओ। उसे मै करूंगा।"

ब्राह्मण बोले—"बाबा! तिलो का एक ऐसा ढेर लगाओ जिसके पीछे खड़े होने पर मनुष्य दिखाई न दे। उसे रत्नो से ढक दो उसके ऊपर पीला वस्त्र ढक कर ब्राह्मणो को दान कर दो। सुमेरु पवत के दान का फल हो जायगा। यदि ऐस सात पर्वत दान कर दो तो ब्रह्माण्ड दान का फल हो जायगा।"

नन्द बाबा वाले—"तो ब्राह्मण मुझमे ऐसे सात तिल के पर्वतो का ही आप दान करावें।"

फिर क्या था इस समाचार से सब के हर्ष का ठिकाना नही रहा। सहस्रो बोरियो मे भरे तिल मगाये गये। उतने ही मणि मुक्ता आदि रत्नो के समूह मंगाये गये। सुनहरे काम के बहुत से पीले रग के बहुमूल्य दुशाले मंगाये गये। सात स्थानो मे तिलो के बड़े-बडे सात पर्वत बनाये गये। उनके ऊपर मणि मुक्ता इस

प्रकार बिछाये गये, कि तिल दिखाई ही न दें। फिर वे सब पीले दुशालाओं से ढक दिये गये। उनको सब ब्राह्मणो के लिये दान कर दिया गया।

यह सुन कर शौनकजी बोले—"सूतजी ! पुत्र उत्पन्न होने पर वृद्धि सूतक लग जाते हैं। सूतको में तो ब्राह्मण उस घर का जल भी नही पीते, फिर इतने दान ब्राह्मणो ने सूतक मे कैसे ले लिये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! पुत्र उत्पन्न होने पर सूतक तभी लगता है जब नालच्छेदन हो जाय। जब तक नालच्छेदन नहीं होता तब तक सूतक नही माने जाते। उस समय में दान लेने मे कोई दोष नही, ऐसा शास्त्र का प्रमाण* हैं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी ! आपका कथन सत्य है, अच्छा फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! फिर घर मे जो भीतर नेग जोग होते हैं, वे हुए। उन सबका भी मैं वर्णन करूंगा। नन्दोत्सव की कथा बडो सरस है। इसे शनैः शनैः कुछ रुक-रुक कर कहूँगा। आप ऊबे नही।"

छप्पय

सब गोपनि व्रजराज नद आज्ञा सिर धारी।
कनक रतन लै धेनु दान की कीन्हीं त्यारी॥
हल्ला व्रजमहँ मच्यौ सुनत सब द्विजगन आवें।
छाँटि-छाँटि के धेनु लेहिं अतिशय हरपावें।
पाँच, सात, दश, बीस, सौ, लेओ चाहें सहसहू।
आज खिरक सबई खुले, रोक टोक नहिँ नेंकहू॥

---

* यावन्न छिद्यते नाल तावन्नाप्नोति सूतकम्॥
छिन्न नाले ततः पश्चात्सूतक तु विधीयते॥

श्री नंदजी ने अपना सर्वस्व सार्थक किया

[८४१]

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ।*

(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० ४ श्लोक)

छप्पय

बीस लक्ष्य दै धेनु नहीं सन्तुष्ट भयो चित ।
तिलके परवत सात रत्न पट दीये हरषित ॥
दयो शुद्धि हित दान यही सद्व्यय धनको है ।
शुद्ध कालतैं भूमि तोष कारन मनको है ॥
मज्जनतैं तनु वस्तुकी, शुद्धि शोचतैं कहैं मुनि ।
गर्भादिक संस्कारतैं, आशय होवे शुद्ध पुनि ॥

इस जगत की स्थिति पञ्चपर्वा अविद्या के कारण है। यदि अविद्या का आवरण न हो, तो यह ससार इस प्रकार अनेक रूप मे चित्र विचित्र दिखाई न दे, भगवान् तो नियम से परे ही है वे जो चाहे सो करें उनके लिये कोई नियम नहीं। नहीं तो साधारण नियम यह है, कि सब वस्तुएं मल सहित उत्पन्न होती है। क्रिया द्वारा उन्हें निर्मल बनाया जाता हैं, सस्कार

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं— राजन् ! सम्पूर्ण द्रव्यों की शुद्धि क्रमश: समय के द्वारा स्नान शौच सस्कार, तप, यज्ञ दान तथा सन्तोष के द्वारा होती है और आत्मविद्या के द्वारा आत्मा की शुद्धि होती है।

द्वारा वे विशुद्ध होती हैं। खान से सुवर्ण, चाँदी, ताँबा आदि धातुएं जैसी हम देखते हैं वैसी नही निकलती। वहाँ से अशुद्ध मलावृत निकलती हैं, पीछे युक्तियो द्वारा तपा-तपाकर उन्हें शुद्ध किया जाता है। हम श्रीमानो के कठो मे आभूपणों मे जो मणियाँ देखते हैं, खान से वे ऐसी चमकीली नही निकली हैं। वहाँ से तो वे मल युक्त निकली हैं। निकालने पर उनका सस्कार किया गया। खराद पर उन्हे खरादा गया, तव उनमे चमक आयी। जिन गेहूँ, जौ, चावलो को हम खाते हैं, वे खेत से ऐसे हो विशुद्ध उत्पन्न नही हुए थे। खेत से आये तो व छिलको से ढके थे। कूट-कूट कर उनका सस्कार किया गया, छिलके उतारे गये। सूप मे रखकर फटका गया। फिर एक-एक करके बीने गये, चक्की मे पीसे गये चलनी मे छाने गये। इतने सस्कारो के अनन्तर वे खाने के योग्य हुए। वनाकर भगवान् का भोग लगाया गया। अतिथि आदि को देकर गो ग्रास आदि निकाल कर तव प्रसाद पाने योग्य हुआ। इसीलिये ये सिद्धान्त है, कि सस्कार ही शुद्धि मे मुख्य कारण हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर नन्द जी तो दान देने मे वेसुध हो रहे थे, उधर स्त्रियाँ वच्चे के नालच्छेदन के लिये व्याकुल हो रही थीं। वे कहती देना लेना तो वना ही रहेगा, वच्चे को घुटी देनी है, मैया को कुछ आहार देना है, रात का वच्चा हुआ है।"

दासियो ने आकर नन्दवावा से कहा—"नन्द वावा ने ब्राह्मणा की ओर देखा। तब ब्राह्मण वोले—'हाँ, हाँ नालच्छेदन-हो। आपको जो देना हो, सकल्प कर लें, फिर चाहे जब तक देते रहें।"

नन्दजी ने हाथ जोड़कर आँखो मे आँसू भरकर कहा—"मेरा

तो सभी संकल्प है महाराज ! जैसी आप सबकी आज्ञा ।" फिर दासियों से कहा—"हाँ, जाओ नालेच्छेदन करो ।"

इतना सुनते ही दासियाँ दौड़ी-दौड़ी आयी और सुनन्दा से बोलीं—"बीबी ! बीबी ! व्रजराज ने आज्ञा दे दी है, नाल छेदन करो ।" यह सुनकर सभी को हर्ष हुआ ।

यशोदा मैया, लालजी को गोद में लिये हुए है, बार-बार उन्हें भाव समाधि हो जाती है, जब भी लाल की अद्भुत शोभा मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त आनन को निहारती है, तभी वे अचेत बन जाती है, उनके नेत्रों से निरन्तर नेह का नीर निकल कर नील नीरदद्युति नन्दलाल के नील वदन को भिगो रहा था मानों नेह नीर से न्हिला रही हों। अथवा नव जलधार द्युति श्याम को संकेत कर रही हो कि बरसो-बरसो और इस व्रज मंडल को प्रेम परिप्लवित कर दो अथवा बच्चे को भूखा समझ कर स्तनों से दुग्ध न बहते देखकर नेत्रों के निर्मल नेह नीर से ही उनकी बुभुक्षा शान्त करने का प्रयत्न कर रही हों। अथवा वाणी रुद्ध होने के कारण नेत्रों से नीर बहाकर ही संकेत कर रही हों, कि इसे न्हिला दो, कुछ पिला दो। इतने में ही सुनन्दा बुआ सुवर्ण की बनी चमचमाती छुरी ले आयी। दाई के हाथ में देकर बोलीं—"दादी ! अब देर मत कर शीघ्र नाल काट दे।"

दाई ने झिड़ककर कहा—"कोई गाजर मूली है, जो काट दूँ, नाल तो विधि पूर्वक ही काटा जायगा।"

बूआ ने कहा—"विधि पूर्वक ही काट, बुढ़िया ! तेरे मुँह में दाँत तो एक भी नहीं गरजती है सिंहनी की तरह। है तो डोकरी बनी, है लोठरी-सी। कर क्या-क्या विधि करेगी।"

बुढ़िया दाई बोली—"हल्दी लाओ रेशम का धागा वह मेरी संदूकची में रखा उसे मंगाओ जल लाओ।"

बूआ जाकर स्वयं ही सब वस्तुओं को उठा लायीं। बुढ़िया ने अपने काँपते हुए हाथों से नाल को प्रथम नापा। नाभि से ८ अंगुल छोड़कर जहाँ उसमें एक गाँठ-सी थी, उसके नीचे रेशम का डोरा बाँधा। एक अंगुल छोड़कर ऊपर भी एक डोरा बाँधा। हल्दी लगायी, छुरी का पूजन किया और फिर बैठ गयी।

उप नन्दजी की पत्नी जो लालजी की सबसे बड़ी ताई हैं, उन्होंने दायी से कहा—"अब देर क्यों कर रही है बुढ़िया! नाल काटती क्यों नहीं?"

दाई बोली—"वैसे ही काट दूँगी? पहिले अपना नेग जोग तो ले लूँ। पहिला लाला है भगवान् करे ऐसे बहुत होवें। सदा हम नाल काटती रहें।"

हँसकर सुनन्दा बूआ बोलीं—"तब तक बुढ़िया तू बैठी ही रहेगी? मिलेगा नेग जोग काट देर मत कर।"

बुढ़िया तुनक कर बोली—'अपने लिये तो भैया भाभी से लड़ रही थी। चली है मुझे सीख देने। नहीं काटती मैं। लो, तुम ही काट लो। जब तक मेरी दक्षिणा न मिलेगी।"

हँसकर उपनन्द पत्नी बोली—"अच्छा, क्या लेगी तू?" फिर सुनन्दा से बोली—"बीबी! इसे भी एक थाल भर के मोती दे दो।"

बुढ़िया तुनक कर बोली—"मुझे मोती मूँगा नहीं चाहिये। मैं तो जो नन्द रानी नौलखाहार पहिने हैं उसी को लूँगी।"

बूआ बोली—"इसे पहिन कर तू गौने को जायगी। बड़ी अच्छी लगेगी इसे पहिन कर बन्दरी-सी। दूसरा ब्याह करले तब हार पहिनना इस पोपले मुँह में-तिनका जैसे शरीर में हार अच्छा लगेगा।"

इतने मे ही नद जी आ गये। उन्हे बालक को देखने की चटपटी लगी हुई थी, भीतर दाई और सुनन्दा मे झगडा होते देखकर वे बाहर से ही बोले—"सुनन्दा! अरी, लाली, क्या झगडा है।"

वही से अचल सम्हालती हुई सुनन्दा बूआ बोली—"भैया यह बुढिया नही मान रही है, झगडा करती है, नाल नही काटती।"

नन्दजी ने कहा—"बात क्या है क्या नहीं काटती? तुम उसका नेक जोग न देती होगी?"

सुनन्दा ने कहा—"बडी भाभी दे तो रही है, किन्तु यह अड रही है मैं तो भाभी वाला नौलखाहार ही लूंगी।"

नन्दबाबा की आँखो मे आँसू भर आये वे सोचने लगे—"धन्य मेरा भाग्य जो आज मेरे बच्चे के पीछे सभी अपना अधिकार जमा रही हैं, सभी झगडा कर रहे हैं। ऐसा अवसर भाग्यवानो को ही प्राप्त होता है उनका कठ रुद्ध हो गया। कुछ आगे बढ कर बच्चे की ओर देखकर बोले— दे दो, दे दो हार और बन जायगा। आज किसी क मन को मारो मत।'

इतना सुनते ही नन्दरानी ने अपना नौलखाहार दाई के गले मे पहिना दिया। दाई फूली न समायी।

बूआ बोली—"बुढिया लगती तो बडी अच्छी है, एक मोरी चन्द्रिका की और कमी है नही पूरी दुलहिनि सी लगती।"

अब बुढिया ने दो तीन बार छुरी को देखा फिर दोनो डोराओ के बीच से नाल को शीघ्रता से काट दिया। कटे नाल को लेकर उसमे द्रव्य रख कर घर के आंगन मे गड्ढा खोद कर गाड दिया। नाभि स जो नाल लगा रह गया था उसमें एक पतला सा मृदुल रेशम का डोरा बाँधकर उसे लालजी क गले में इस प्रकार ढीला बांध दिया मानो पीला हार पहिना दिया हो। तब तो

बूआ जन्म घुटी तैयार करके ले आयी। चमची से शनैः शनैः लालजी के मुख मे डालने लगी। लालजी मुंह बनाने लगे, इधर-उधर छटपटाने लगे। उन्हें घुटी-फुटी से क्या काम वे तो माखन मिश्री के खवैया है, किन्तु अब तो बालक बने हैं। ससार को नचा रहे थे, अब स्वय नाचना होगा। ये लुगाइयाँ जैसे रखेंगी वैसे रहना होगा, जो खिलावेंगी खाना होगा; प्रेम का बन्धन होता ही ऐसा है।

फिर दाई ने कहा—"नन्दरानी! बच्चे के मुख मे चूची देना अब तो दूध उतर आया होगा। अभी घुटी पी है, कुछ देर मे देखना पीता है या नही।" यह कह कर लालजी को माता के पलग पर सुला दिया। लालजी ने आँखें बन्द कर ली। आँखें क्यो बन्द कर ली जी? सम्भव है सोच रहे हों, आगे अब क्या करना है। अभी तक मैंने तो एक रोने की लीला की। और सब तो ये बाबा भैया, बूआ, ताई, दाई, और व्रज की लुगाइयाँ ही करती रही। अब मुझे भी कुछ करना चाहिये। यही सब सोचते-सोचते लालजी झपकियाँ लेने लगे।

नन्दरानी का शरीर स्थूल था। इस कारण स्तन कुछ बडे-बडे थे। अब तो मातृस्नेह के कारण वे दूध से भर गये थे, इस लिये परस्पर जुड से गये थे। उनके नितम्ब अति स्थूल थे अतः सम्पूर्ण शैया को घेर कर पडी थी, उस समय उनके पास संयोग से कोई था नही, स्तन दूध से भर रहे थे, माता का स्नेह उमड रहा था। समीप ही लालजी झपकियाँ ले रहे थे कि इच्छा हुई बच्चे को दूध पिलाऊँ। इसलिये उन्होने लालजी को उठाया पहिले कभी बच्चा हुआ हो, तो दूध पिलाना जानती। उन्होने अपने बड़े-बडे लम्बे दुग्ध से भरे सुपुष्ट स्तनो को आगे किया, लालजी को टेडा किया और लेटे ही लेटे उनके मुख मे स्तन

दे दिया। ये नटखट देव तो दूध के प्रेमी ही ठहरे टेढ़े होकर चुसुर-चुसुर करके दूध पीने लगे। इतने में ही उपनन्द संनन्द की स्त्रियाँ आ गयी और आश्चर्य चकित होकर बोलीं—"हाय! नन्दरानी, बच्चे को कहीं ऐसे दूध पिलाती हैं, ऐसे पिलाने से तो बच्चे-के अंग टेढ़े हो जायँगे। बैठ कर गोदी में लेकर, हाथ का सहारा देकर, घोंटू को उठा कर तब सुख पूर्वक बच्चे को दूध पिलाया जाता है।" यह सुन कर नन्दरानी उठ कर बैठ गयीं। वे लज्जित हुईं, अपने स्तन को लालजी के मुख से निकाला। दूध बह कर बाल लाल के वक्षःस्थल पर बहने लगा। माता के कज्जल मिश्रित अश्रुओं का जल भी उसके साथ ही बहने लगा। मानों गंगा जमुना का संगम वक्षःस्थल पर हो रहा हो और बाल मुकुन्द अपने छोटे से शरीर को अक्षयवट के पत्र पर हिला रहे हों।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माता की तनिक-सी भूल से ही हमारे ये नटनागर तीन स्थानों मे टेढ़े हो गये। आपने देखा होगा, जब भी ये खड़े होते है इनकी गरदन झुक जाती है। कटि भी टेढी हो जाती और टेढी टाँग तो इनकी प्रसिद्ध ही है। जब खड़े होगे तब टेढ़े ही खड़े होंगे। शरीर ही टेढ़ा हो सो बात नहीं। टेढ़े टाँग वाले इन देवता जी की सभी बातें टेढ़ी हैं। चितवन टेढ़ी, चलन टेढ़ी, उठन टेढ़ी, बैठन टेढ़ी, वाणी टेढ़ी, लकुट टेढ़ा, मकुट टेढ़ा, स्वभाव टेढ़ा, कहाँ तक बतावें टेढ़े की सभी वस्तुएँ टेढ़ी ही टेढ़ी हैं। इनकी टेढ़ी चितवन किसी के हृदय में चुभ जाती है, तो फिर निकलती नहीं। हाय! सीधी यशोदा के यह कैसा टेढ़ा बेटा हुआ। अपने टेढ़ेपन से इसने सबको चक्कर में डाल रखा है। जो कहते हैं—"हैं" उनको भी चैन नहीं। कैसा है सगुण है या निर्गुण है लोग है या लुगाई है बेटा है या भाई है। पति है या यति है। आस्तिक तो इसी चक्कर में पड़े हैं। नास्तिक कहते

हैं, नहीं है नहीं है। क्यों नहीं है इसी की युक्ति देते-देते वे पागल हो जाते हैं। अरे, जो नहीं है, उसके पीछे तुम व्यर्थ क्यों पड़े हो। नहीं है समाप्त हुआ, किन्तु इस टेढ़े का चक्कर है ही ऐसा टेढ़ा। किसी प्रकार सन्तोष नहीं, चैन नहीं। सो महाराज! इस टेढ़ी टाँग वाले के कभी सामने न आना चाहिये, इसके सम्बन्ध की कोई बात भी न कहनी चाहिये। मौनी बन जाना चाहिये। यदि कुछ बात मुँह से निकाली, समझ लो फँस गये चक्कर में। यह मीठी सीधी सादी खीर नहीं है, बड़ी टेढ़ी खीर है, क्योंकि टेढ़े होकर इसने अपनी माँ का क्षीर पिया था। इस-प्रकार मुनियो! श्रीकृष्ण जन्म के उपलक्ष्य में नन्द जी ने स्नान दान तथा संस्कार आदि कराये।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूत जी! नन्दबाबा ने इतने दान, इतने खटराग क्यों किये? प्राकृतिक नियम है, माता-पिता के रजवीर्य मिलने से बच्चा होता है, हो गया। अब उसके लिये इतना झंझट करना यह समय का दुरुपयोग नहीं है?"

यह सुन कर सूतजी हँस पड़े और बोले—"हाँ, महाराज! जो लोग शरीर को ही सब कुछ समझते हैं, वे नास्तिक ऐसा ही कहते है। वे वाह्य शुद्धि को ही शुद्धि कहते हैं। नहा लिये, वस्त्र सफेद पहिन लिये शुद्धि हो गयी। भीतर की शुद्धि वे जानते ही नहीं। नहा लेना, शुद्ध स्वच्छ धुले कपड़े पहिन लेना। यह भी शुद्धि है, किन्तु सब की शुद्धि एक-सी नहीं होती, एक प्रकार से भी नहीं होती। सब की शुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार है। अशुद्धि तो पृथ्वी, तन, मन, धन, इन्द्रियों तथा सभी वस्तुओं में हो जाती है। उनकी शुद्धि के भी भिन्न-भिन्न प्रकार हैं।"

शौनकजी बोले—"पृथ्वी की शुद्धि कैसे होती है?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! जैसे माघ के महीने में लक्षों

आदमी आकर एक महीने रहकर सगम के समीप मल मूत्र द्वारा अशुद्ध कर देते हैं। माघ बीतने पर महीने बीस दिन में भूमि स्वय पुन शुद्ध हो जाती है। अत भूमि की शुद्धि मे काल की अपेक्षा है। काल पाकर भूमि शुद्ध हो जाती है।"

शौनक जी ने कहा—"जल की शुद्धि कैसे होती है ?"

सूतजी बोले—"बहुत होने से मिल जाने से या औषधि आदि डालने से होती है। जैसे—एक छोटे से गड्ढे मे जल भरा है, अशुद्ध है। वही वर्षात मे बढ जाय शुद्ध हो गया। किसी के हाथ का हम जल नही पीते वही दूध मे दही मे मिल जाय शुद्ध हो गया। कोई नाली मोरी का जल है उसे स्पर्श भी नही करते गङ्गाजी मे *मिल गया, शुद्ध हो गया।*"

शौनक जी ने कहा—"और भी वस्तुओं के शुद्धि के प्रकार बताइये।"

सूतजी बोले—"महाराज! कहाँ तक बतावें शुद्धि का तो बडा विस्तार है, देश काल तथा पात्र के अनुसार शुद्धि के भी असख्यो भेद हैं। ऊपर का शरीर स्नान करने से शुद्ध हो जाता है। अपवित्र पदार्थ मलने, धोने, छीलने, तपाने जल तथा मिट्टी से शुद्ध हो जाते हैं। लोटे को लेकर शौच गये। आकर तीन बार मिट्टी से मल लिया, जल से धो लिया, शुद्ध हो गया। पीतल आदि की थाली लोट मे खा पी लिया मिट्टी लगाकर मल दिया शुद्ध हो गया, सुवर्ण चाँदी के पात्रो में मिट्टी लगाने की भी आवश्यता नही, वे केवल जल से धो देने से ही शुद्ध हो जाते हैं। मिट्टी का सकोरा पानी पीने से अशुद्ध हो गया, उसे अग्नि मे तपाकर लाल कर लो, फिर पीने योग्य हो गया। काठ की कठौली है, खाने से अशुद्ध हो गयी, उसे छील दो शुद्ध हो गयी। धान्य धूप मे सुखा दो शुद्ध हो गये। इस प्रकार काल

सम्बन्धी शौच से कोई जल मिट्टी के सयोग से शुद्ध हो जाते हैं।

गर्भादि की शुद्धि सस्कार से बतायी है। जात-कर्म नामकरण आदि सस्कार हुए प्रसूत सम्बन्धी अशौच समाप्त हो जाते हैं। रजस्वला तीन दिन अशुद्ध होती है। चौथे दिन सिर से स्नान कर लेने पर अपने आप शुद्ध जो जाती है। द्विजो के बालक जब तक यज्ञोपवीत नही होता शूद्रवत् माने जाते हैं, जहाँ उपनयन वेदारम्भादि सस्कार हुए उनकी द्विज सज्ञा हो जाती है। इन्द्रियाँ तप के द्वारा शुद्ध हो जाती हैं। द्विजातीय पुरुष यज्ञो के द्वारा विशुद्ध बन जाते हैं। धन की शुद्धि का एक मात्र उपाय है दान। दान के बिना धन की शुद्धि नही। जिस धन मे से दान के लिये नही निकाला जाता वह मल के समान है, उसको बिना दान किये जो खाता है, वह पाप को खाता है। चित्त की शुद्धि सन्तोष से होती है। जिसे सन्तोष नही, उसे चाहे जितना धन मिल जाय, वह सदा चिन्तित और दुःखी ही बना रहता है। चित्त की प्रसन्नता सन्तोष-ही सबसे श्रेष्ठ धन है। आत्मा की शुद्धि आत्म विद्या से ज्ञान से होती है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यह तो आपने बड़ा गहन विषय छेड दिया। हमे तो आप श्रीकृष्ण जन्म की कथा ही सुनावें। कैसी सरस कथा कह रहे थे, अब आप कर्म-काड को ले पड़े।"

सूतजी ने कहा—"अजी, महाराज! आप ही तो छेड देते हो। अब आप आज्ञा देते हैं, तो मैं श्री कृष्ण-जन्म की ही अत्यन्त सरस कथा कहता हूँ बड़ी लच्छेदार, आप ध्यान पूर्वक सुनें।"

छप्पय

तपतें इन्द्रिय शुद्ध होहिँ मखतें सब द्विजगन।
हरि भर्जनतें देश दानतें होहि शुद्ध धन॥
सब वस्तुनि की शुद्धि विविध विधि वेद बताई।
नदनँदन के जन्म समय विधिवत करवाई॥
देशकालवित नदको, दान देत नहिँ भरहि मन।
आवें दशहूँ दिशनितें, मागध बन्दी सूतगन॥

श्री नंदजी द्वारा सबका दान-मान से सम्मान

[८४२]

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥*
(श्री भाग० १० स्क० ५ अ० ५ श्लो०)

छप्पय

सबकी आशा लगी नित्य ही टोह लगावें।
नँदरानी कब कमलनयन लालाकूँ जावें॥
धुनि भेरी की सुनि सुनत सब जन हरषाये।
जामा पगड़ी पहिन दौरि गोकुलमहँ आये॥
दूरहितें अति मुदित मन, जय जयकार सुनाइकें।
आशिष सुतकूँ देहि शुभ, गीत मनोहर गाइकें॥

ससार मे सदा दो प्रकार के पुरुष होते आये है, एक श्रमजीवी दूसरे बुद्धिजीवी। वैसे तो श्रमजीवी भी बुद्धि से ही काम करते हैं, किन्तु उन्हे श्रम अधिक करना पड़ता है। इसी प्रकार

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! श्रीनन्दजी क पुत्रोत्सव के समय ब्राह्मण-गण तथा सूत, मागध और बन्दी-जन सुन्दर मगल युक्त वचन बोलने लगे। गायक लोग गान लगे तथा भेरी दुन्दुभि आदि बाजे स्वय बार-बार बजने लगे।"

बुद्धिजीवी भी कुछ न कुछ श्रम करते ही हैं, किन्तु उन्हे बुद्धि से विशेष काम लेना पडता है। श्रमजीवियो मे भी दो भेद होते हैं, एक कृषि वाणिज्य गो-रक्षण आदि समाजोपयोगी कार्य करने वाले, दूसरे सेवा द्वारा निर्वाह करने वाले। इसी प्रकार बुद्धि जीवियो मे भी एक मनोरजक ललित कलाओ द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले, दूसरे धर्म, समाज, राजनीति द्वारा समाज को सुव्यवस्थित रखने वाले। ये परस्पर मे मिलकर काम करते हैं, तो समाज का सगठन सुदृढ और सुन्दर रहता है। जब ये परस्पर मे एक दूसरे को सहयोग नही देते तो समाज मे विघटन हो जाता है। श्रमजीवी श्रम द्वारा धन उपार्जन करते है। सेवोपजीवी सेवा करते हैं, और पुरस्कार द्वारा अपना जीवन विताते है। विद्योपजीवियो का कार्य श्रमजीवी या शासको की सहायता से ही चलता है। सबका समय बँधा रहता है। कृषक जब खेती काटता है, तो सभी सेवोपजीवी पहुँचते हैं सबको वह देता है। ६ महीने वे बिना कुछ लिये सेवा करते हैं। विवाह, पुत्रोत्सव तथा अन्य उत्सव पर्वों पर वे पारितोषिक पाते हैं। एक के उत्सव मे सभी सम्मिलित होते हैं यही सामाजिक एकता है, इसी का नाम सम्मिलित परिवार है। आज श्रम किया, आज ही हम उसका वेतन मांगते है, यह सम्मिलित समाज का नियम नही। यह स्वार्थ पूर्ण स्नेह रहित समाज का जीवन है। इसमे सरसता नही, सहयोग नही, सद्वृत्तियो का विकास नही, उत्साह और एक दूसरे के सुख दुख मे सुखी दुखी होने का भाव नही। यह ममता और स्नेह से रहित स्वार्थ परायण नागरिक जीवन है। ग्राम्य जीवन इससे अधिक सरस और सुख प्रद हैं यह सरसता विवाह तथा पुत्रोत्सव के समय अत्यन्त बढ जाती है एक की प्रसन्नता मे सभी प्रसन्न होते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! नंदराय के लाला हुआ है। यह वात सम्पूर्ण व्रजमंडल में रातो रात फैल गयी। सभी लोग आशा लगाये वो बैठे ही थे। रात्रि भर भेरी, नगाड़े तथा दुन्दुभियों की तुमुल ध्वनियाँ सुनकर ही सबने समझा लाला के जन्म का ही महोत्सव है। सभी वधाई देने गोकुल की ओर दौड़े। मार्ग में उन्होंने देखा, सहस्रों ब्राह्मण लाखों गौओं को लिए जा रहे हैं। सब बड़े उत्साह से पूछते—"क्या व्रजराजजी के लाला हुआ है ?"

ब्राह्मण कहते—"लाला नहीं हुआ है; सर्व सुख समृद्धि देने वाला हुआ है। तुम जाओ, जो इच्छा हो माँग लाओ। कोई भी वहाँ से निराश या रिक्त हस्त न लौटने पावेगा।"

यह सुनकर याचक तथा सूत, मागध बन्दी तथा अन्यान्य विद्योपजीवी जन परम प्रमुदित होते। सब बड़े उत्साह के साथ, अत्यन्त उमंग आह्लाद और शीघ्रता के साथ, गोकुल की ओर दौड़े जाते।

नंदजी बड़े-बड़े गोपों से घिरे चौपाल पर बैठे थे। मंच विछे हुए थे, जाजिम, गलीचे, तकिये पड़े थे। वड़ी-बडी जाजिमें बाहर विछी थी, इतने मे वड़ी पगड़ी बाँधे लम्बा अंगरखा पहिने, तिलक छापा लगाये, दो चार बाल बच्चों के सहित पोथी पत्रा बाँधे सूतजी वहाँ आ गए।

नंदजी ने कहा—"आओ ! आओ ! महाराज ! आप कौन हैं ? कहाँ से पधारे।" आगत वृद्ध ने नंदजी का जय जयकार किया और बोला—

दोहा—गोपेश्वर व्रजराजजी ! मैं तुम्हरो हूँ सूत।
दौरयो आयो सुनत हीं, भयो तुम्हारे पूत ॥

नंदजी ने कहा—"धन्य-धन्य महाराज कुछ सुनाइये आप तो पौराणिकी गाथा सुनाया करते हैं सुनाइये कुछ।"

यह सुनकर सूत सुनाने लगा—

सवैया

व्रजराज ! कहैं सब सूत हमें, मुनि व्यास कृपा करिके अपनाये।
सुनिके सुत जन्म उमंग भरे, हियमहँ हुलसे सरसे इत आये॥
दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये।
व्रजमहँ विहरैं घुँघची पहिरैं, वर देहु जिही तनु धूरि लगाये॥

नन्द बाबा ने कहा—"सूतजी ! कुछ हमारी समझ में बात आयी नहीं। आप क्या चाहते हैं, धन, रत्न पृथ्वी, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बछेरा, गौ, रथ, घर, भूमि तथा और भी अन्न, वस्त्र आप जो चाहे माँग लें।"

यह सुन कर आँखो में आँसू भरके सूत बोला—"महाराज ! मैं आपके लाला को जानता हूँ वह कौन है ? जीवन भर मैंने पुराणो में यही पढ़ा है। माँगते-माँगते बाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ, कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसी के सामने हाथ न पसारना पड़े यही अन्तिम याचना हो।"

नन्दजी ने उत्साह के साथ कहा—"हाँ, हाँ, ठीक है। इतना धन माँग लो, कि जीवन भर बैठे-बैठे खाते रहो। दूसरे के यहाँ याचना करने की क्या आवश्यकता है।"

सूत बोला—"आप तो महामना हैं, उदार शिरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है।"

सवैया

हे व्रजराज ! करूं नहिं लाज समाज जुरयो जिह फूहरि नारी।
सोवे सिदौसि अबेरी उठे नित देइ परोसिनिकूं गिनि गारी॥
आवत देखि पिछारि परी चटकीलि रँगीलि टरी नाहिं टारी।
घरवारि हमारि हिलावति हार चलावति सैन मँगावत सारी॥

यह सुन कर नन्दजी बोले—"मागध जी तो बूढ़े दीखते हैं, किन्तु मागधिनि तो अभी छरहरी बनी हुई है। छत्तीस छोरी और एक छोरा जनिके भी अभी जैसी की तैसी बनी हैं। अच्छा, भैया मागध जी की घरवारी को सुन्दर-सी बनारसी रेशमी सारी, गोटावारी दिला दो। और भी जो ये हार, हमेल, कड़े, छड़े नकबेसर, बाजूबंद जो मांगे वह दिला दो।"

फिर नन्द जी ने पूछा—"भैया, इन ऊँटो पर क्या लदा है ?

जगा बोला—

दोहा—वही पुरानी सबनिमहँ, सब गोपनिके वंश।
आप सबनि के मुकुट मनि, गोपवश अवतंश॥

नन्दजी ने उत्सुकता के साथ कहा—"अच्छा हमारे वंश को सुनाओ।"

इतना सुनकर बड़े हर्ष के साथ जगा ने बड़े ऊँट से बहुत-सी बहियों को उतारा कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नो को पलट कर उसे उठा कर नन्दबाबा के समीप आया और उसमे से पढते हुए बोला—

छप्पय

प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप 'चन्द्र सुरभि जी'।
'भीमक' तिनके पुत्र भये तिनि 'महाबाहु जी'॥

तिनिके सुत 'गोपेश' 'काननेचर बडभागी।
'कंजनाभि' तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी ॥
कजनाभिके पुत्र सुठि, 'वीरभानु' आभीरवर।
'कृती' तनय तिनि गोपपति, धर्मधोर' सुत धीरधर ॥

छप्पय

धर्मधीर के 'भद्रश्रवा' तिनि 'देवराज' सुत।
देवराज के 'नवल' नवल के द्वै सुत श्रीयुत ॥
'काननेन्दु' सुत द्वितिय पुत्र 'जयसेन' भये तिनि।
देवमीढ़ मधुरेश सग व्याही कन्या जिनि ॥
ताके सुत परिजन्यजो, नानाकी गोदी गये।
तिनिके अति सुदर सुघर, पुत्र पांच पेदा भये ॥

दोहा

ते पांचो ई शूर अति, भये ज्येष्ठ उपनन्द।
नन्दन अरु सन्नन्द जी, अभिनन्दन श्रीनन्द ॥

छप्पय

मातामहकी गोद गये गोकुलमहँ गोपति।
वृद्ध भये परिजन्य गये तप हित हर्षित मति ॥
गद्दीको अधिकार पाइ उपनन्द सिहाये।
सुकृति मूर्ति श्रीनन्द यशस्वी भूप बनाये ॥
इतनो जानूं वश मैं, नारायण किरपा करो।
वृद्धावस्थामहँ बहुरि, गोद यशोदा की भरी ॥

यह सुनकर नदजी बड़े प्रसन्न हुए और सब लोगों को सुना कर बोले—"अरे, भैया ! यह तो हमारा वश जानता है। इसे जो माँगे सो तुरन्त दो। गोएँ दो, वस्त्र दो। आभूषण दो, द्रव्य दो। जो माँगे उससे दुगुना चौगुना दो।"

इतने मे एक आदमी खिरकीदार पाग बाँधे हुए बहुत-से वाल बच्चो को साथ लिये हुए आया, नदजी ने उनसे पूछा—"अरे, भाई तुम कौन हो।" उनमे से एक छोटा सा छोरा बोला—

तुकवन्दी—मै हूँ तुमरो वन्दी, पहिने बगलवन्दी।
मिरजई मेरी गन्दी, खाऊँ सकरकन्दी॥
यह छोरा छरछन्दो, भैया है वहु धन्धी।
तेरो सुत आनन्दी, रच्यो जगत् फरफन्दी॥
दादो मेरो अन्धी, बाप बन्धो है वन्दी।
चाहूँ सोना चदी, और मिठाई कलाकन्दी॥

हँसकर नदजी बोले—'अरे, भाई तेरी तुकवन्दी लगो नही। तुम लोग रायभाट हो न ?'

यह सुनकर उनमे जो सबसे बडा था, वह बोला—"हाँ, अन्नदाता हम रायभाट ही हैं। हमारा काम ही है, तुरन्त रचना करके तुरन्त कवित्त कहना। यह अभी बच्चा है अवस्था का कच्चा है, बात का सच्चा है, यदि श्रीमान् की आज्ञा पाऊँ, तो मैं भी स्वरचित कवित्त सुनाऊँ ?"

नदजी ने कहा—'हाँ भाई, सुनाओ।"

तब वह भाट कहने लगा—

कवित्त

नदको दुलारो सुत प्यारो व्रजवासिनि को,
कोई कहे कारो परि जग को उजारो है।

-वेद नहिं पायो भेद ताही को नाल छेद,
घागन मे गाढि तापे अगिहानो बारो है ॥
भक्तनिको जीवन धन गोपिन को प्राण मन,
वालनिको बन्धु धेनु धन को रखवारो हैं।
यशुमतिको लाल व्रज गोपिनको ग्वाल बाल,
दर्शनते निहाल होहुँ सरवसु हमारो है ॥

नन्दजी बोले—"भैया ! तैंने तो मेरे लाल की बडी उपमा चढायी। बडी सुन्दर कविता सुनायी। अच्छा तू चाहे जितना धन ले जा छकडा भरले जा, चाहे जितनी गौवें हकवा ले जा।"

नन्दजी यह कह ही रहे थे, कि तबला, तमूरा ढोलक, मजीरा, सितार इसराज, मृदङ्ग, चङ्ग, बासुरी वीणा आदि विविध वाद्यो को लिये हुए बहुत से गायक आ गये। गायको को देखकर सबके चित्त प्रसन्न हो गये। सभी ने नन्दजी का जय जयकार किया। उन्हे गलीचो पर बिठाया। समस्त गोकुल के गोप जुट आये। वालक हँसने खेलने और किलकारियाँ मारने लगे। बड़े बड़े गोप उन्हे डाँटने फटकारने लगे। बडा सुन्दर समाज लग गया। नन्दजी ने बडी नम्रता से कहा—"हाँ गायको कुछ सुनाओ। इन उपस्थित नर-नारियो के मन को रिझाओ, अपना कला कौशल दिखाओ, इन सबकी उत्सुकता मिटाओ और अपने-अपने भावो को प्रकटाओ।"

नन्दजी की आज्ञा पाकर सब साज एक स्वर ताल मे मिलाये जाने लगे। तबले के ऊपर हथौडी पडने लगी, सारङ्गी के कान ऐंठे जाने लगे, वीणा के तार झनझनाने लगे तानपूरा की खूँटी खेंची जाने लगी। बडी देर तक खट-खट, तिन-तिन, तान-तान, होती रही। जब सब साज एक स्वर मे मिल गये तो एक बूढे-

से बाबा गाने लगे। उनका स्वर सुरीला था, वाणी आकर्षक थी, गान में सरसता थी। बड़ी देर तक आ आ करने के पश्चात् गाने लगे—

पद

नन्द घर आज भयो आनन्द।
मातु यशोदा लाला जायो, ज्यों पूनोंमे चन्द ॥१॥
गोपी गोप गाय गायक-गन, सब हिय सरसिज वृन्द।
नन्दनंदन रवि उदित भये हिय, विकसे पंकज वृन्द ॥२॥
वसुधा मुदित समीर बहुत वर, शीतल मन्द सुगन्ध।
गरजत मन्द-मन्द घन नभमहँ प्रकटे आनंद कन्द ॥३॥
माया बन्धु सिन्धु सब सुखके, स्वयं सच्चिदानन्द।
प्रभुके प्रभु विभु विश्वविदित वर, काटें यमके फन्द ॥४॥

नन्दजी ने कहा—"धन्य! धन्य! साधु! साधु! बहुत सुंदर राग है, कंठ बड़ा सुरीला है। और कोई पद गाओ।"

इतना सुनकर उसमें से एक तिलक छापा वाले बूढ़े-से पंडित जी अपनी सफेद दाढ़ी को हिलाते हुए, पोपले स्वर से राग अलापते हुए बार-बार तानपूरा के कानों को ऐंठते हुए, नेत्रों से पखावज वालों को संकेत करते हुए चकित-चकित दृष्टि से इत-उत देखते हुए, दृष्टि द्वारा ही औरों को कुछ बताते हुए, गाने लगे—

पद

जसोदा कैसो लाला जायो।
कोई कहे कुसुम अरसी सम, अंजन अपर बतायो ॥१॥
कोई दूर्वा घन सम शोभा, उत्पल द्युति कहि गायो।
कोई कहे जनम नहिं जाको, छिपि मधुवनतें आयो ॥२॥

कोई कहे ब्रह्म को बाबा, वेदहु भेद न पायो ।
कैसो कहे कहत सकुचावत, नहिं हम दरशन पायो ॥३॥
गोविंद गोकुल कुँवर गोपपति, गोपीश्वर कहलायो ।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, चरन कमल सिर नायो ॥४॥

नन्दजी हँस पड़े और बोले—"अरे, भैया ! इन्होने तो बड़ी तान भिड़ायी । यह सत्य है, जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि । अच्छा भैया, इन सबको एक-एक सिरोपा दो, इनको घर-वालियों को तोहर दो । मणिमुक्ताओ के हार दो, सोने की मालाएँ दो, सुवर्ण दो, गौएँ दो और भी जो माँगे वह दो ।" ऐसा कहकर वे गोपो को समझाने लगे । इतने मे और भी याचक आ गये ।"

आगत किसी याचको मे से किसी ने कहा—' हमारी धर्म में निष्ठा बनी रहे, हमारे धार्मिक कृत्य भलीभाति सम्पन्न हो सकें, इसका प्रबन्ध कर दें ।" नन्दजो ने कहा—"ऐसा ही होगा ।"

बहुतो ने कहा—"हम निर्धन हैं, हमे विपुल धन दिला दें, हमारे सब दुःख दारिद्र को दूर कर दें । हमे अब फिर धनके लिये तरसना न पड़े ।"

नन्दजो ने कह दिया—"तुम्हे जितना चाहिये धन ले जाओ । मेरे यहाँ धन की कमी नही, आज मेरा कोपागार सबके लिये खुला है ।"

किसी ने कहा—"महाराज, मेरा विवाह नही होता । विवाह के विना आदमी का जीवन निरर्थक है । नित्य चूल्हे मे मूड़ देना पड़ता है, आग फूँकते-फूँकते आँखें लाल हो जाती हैं । फिर जो चूड़ियों की खनखनाहट के साथ बनी रोटियों में, आनन्द आता है, वह खाली हाथो से बनाई दाढ़ी मूछों को, खुजाते हुए सेकने

वाली रोटियो में आनन्द कहाँ ? कहीं से थके हुए आवें घर में वहू न हो तो कौन उठकर पानी दे। कौन प्रेम की मीठी-मीठी दो बातें करे ? व्रजराज ! बहू के बिना क्या-क्या कष्ट होते हैं, इसे आप क्या जानो, कोई जान ही कैसे सकता है, जिस पर वीतती है वही जानता है, सो आज अपने पुत्र के जन्मोत्सव के समय मेरा विवाह करा दो मुझे एक सुन्दर-सी बटुआ-सी बहू दिला दो। जो छम्म-छम्म करके इधर से उधर फिरे मेरे शान्त सूखे घर में रुनझुन-रुनझुन करके सरसता संचार करे, मेरे उजड़े घर को फिर से वसा दे, मेरे सूखे हृदय को फिर से सरसा दे। मुझे भोजन का स्वाद चखा दे और मेरे पितरो को सन्तान के द्वारा तार दे।"

यह सुनकर नन्दजी हँस पड़े और बोले—"भैया ! बहू कोई कुम्हार के चाक पर तो बनती नहीं। जो मै तुम्हें मँगाकर दे दूँ। तुम कहीं से अपनी साँठ गाँठ लगाओ। उसमे जितना धन लगेगा उतना हम देंगे।"

अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए वह बोला—"जय हो, व्रजराज की सदा जय हो। महाराज, धन के ही बिना विवाह रुका हुआ है। धन हो, तब तो मैं अपने नख नखका विवाह कर लूँगा। आपने मेरा बडा भारी दुःख दूर कर दिया। आपका वच्चा युग-युग जीवे। आपने मेरा एक विवाह करा दिया। आपके बच्चे के हजार विवाह हों।"

यह सुनकर नन्दजी हँस पड़े और बोले—"अरे, भैया ! एक वहू को हो सम्हालना कठिन हो जाता है, तू मेरे बच्चे के हजार विवाह का आशीर्वाद दे रहा है। यह आशीर्वाद अच्छा नहीं। वहुत-सी स्त्रियाँ होने से कोई कान खीचती हैं कोई नाक खींचती है, कोई चोटी खीचती है।"

उसने कहा—"महाराज ! देखिये, मैं ज्योतिष भी जानता हूँ, आपके बच्चे के सोलह हजार एक सौ आठ प्रकट विवाह होंगे और अप्रकट विवाहों की तो कोई संख्या ही नहीं।"

नन्दजी ने कानों पर हाथ रखकर कहा—"नारायण ! नारायण ! अरे, सोलह हजार एक सौ आठ विवाह। भैया, यह कैसी सुनायी।"

इस पर एक दूसरा बोला—"अजी, महाराज ! यह तो पागल है, बहू की चिन्तना करते-करते इसके मस्तिष्क में बहू ही बहू भर गयी हैं। आप मेरी सुनिये मुझे न तो धन चाहिये न धन, न बहू चाहिये न बाल बच्चे। मेरी आँख में तो ऐसा अंजन लगा दीजिये, कि यह नाम रूपात्मक प्रपञ्च कुछ दिखायी न दे। मैं ही मैं एक अद्वितीय शेष रह जाऊँ।"

इस पर एक बोला—"महाराज ! इसे गोवर्धन की गुफा में बन्द कर दो, वहाँ अद्वितीय होकर पड़ा रहेगा। मेरे लिए तो आप ऐसा प्रबन्ध कर दें, कि नित्य यमुना-स्नान मिले, करीलनि की कुञ्ज में निवास हो। लोटने के लिये व्रज की रज मिले, खाने के लिये इन व्रजवासियों के झूठे कूठे टुकड़े मिलें। पहिनने के लिए इनके उतारे चिथड़े मिल जाया करें। तुम्हारे लाला के नित्य दर्शन मिल जायँ। उनके साथ लकुट लेकर गौओं को चराने जाऊँ। व्रजवासियों के मुख से उसी के गीत सुनने को मिलें, मुख से उसी का नाम उच्चारण करने को मिले, उसी की कहानी सुना करूँ उसी को देखा करूँ। अपनी खिरक में मुझे गौओं के गोबर उठाने की सेवा मिल जाय। लालजी का जो कुछ जूठा-कूठा बच जाया करे, वह मुझे खाने को मिल जाय।"

नन्दजी ने कहा—"अजी, ब्राह्मण देवता ! आप यह कैसी

उल्टी गगा वहा रहे हैं, हम ठहरे गोप आप ठहरे ब्राह्मण, हम आपको अपना जूठा कैसे दे सक्ते हैं।"

ब्राह्मण बोले—"इस गोप कुमार के जूठे को जो जूठा बताता है, वह स्वय झूठा है। यह सम्पूर्ण जगत् उन्ही का तो उच्छिष्ट है। जो उनका जूठा समझकर इसका उपभोग करता है, वह कर्म बन्धनो मे लिप्त नही होता। फिर उसे नाक दबाने या गुफा मे घुटने की आवश्यकता नही रहती तुम्हारे लाला से जिसका सम्बन्ध हो गया। उसे फिर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की भी इच्छा नही रहती।"

नन्दजी लोले—"महाराज ! न जाने आप क्या कह रहे हैं। यह तो वेद शास्त्रो की वात हैं। मैं तो वेद शास्त्र पढा नही। जीवन भर लाला का ही चिन्तन करता रहा, सो आप सब ब्राह्मणो के आशीर्वाद से मुझे यह अवसर देखने को प्राप्त हुआ। मेरा सब कुछ आपका ही है आप जो चाहो सो ले लो। खिरक आपका है चाहे गौओ को दुहो, चाहे गोवर उठाओ। मैं तो अपने लाला के लिये सब कुछ कर सकता हूँ सब कुछ देख सक्ता हूँ।"

उसने कहा— नन्दजी ! आपने सब कुछ कर लिया। तुम्हारे लाला का चिन्तन हो सार है और सव तो निस्सार है, असार है। जिसने तुम्हारे लाला को नही जाना उसने कुछ भी नही जाना।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार नन्दजी निरन्तर धन को लुटाते रहे। जो भी आता उसे मना नहीं करते। अब जब लक्ष्मी का पति ही बेटा बन गया तो वेटा की बहू तो अपनी आज्ञा मे ही रहेगी। उससे चाहे गोवर उठवा लो या पानी भरा लो। व्रज तो लक्ष्मी के कीडा का स्थान हो गया। यह तो मैंने अत्यन्त सक्षेप मे व्रजराज जी के दान का प्रसङ्ग कहा। अब

लालाजी के जन्म के उपलक्ष्य मे सम्पूर्ण व्रज मे कैसा उत्सव मनाया गया, उस प्रसङ्ग को सुनिये।"

छप्पय

अति आनंदित नद सबनि को स्वागत कीन्हों।
जाने जो जो करी याचना सो सब दीन्हों॥
बार बार ह्वै मुदित गीत लाला के गावें।
गोप गान अरु वाद्य सुनत अतिशय हरषावें॥
नंदलाल के जन्म को, घर घर में उत्सव भयो।
मानो व्रज मडल सकल, मंगलमय ही बनि गयो॥

व्रजमण्डल में महामहोत्सव

[८४३]

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।
चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥*

(श्री० भा० १० स्क० ५ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

सकल राज-पथ गली गिरारे घर पिछवारे ।
सबनि स्वयं मिलि सींक सोहनी लाइ बुहारे ॥
चन्दन को छिरकाव इतर करपूर मिलायो ।
करि केशरि की कीच सबनि निज घर लिपवायो ॥
टाँगी बन्दनवार वर, घर घर सुघर बनाइकें ।
बिच-बिच कलियाँ कुसुम की, पल्लव ललित लगाइकें ॥

जिसमे सबके मन मे स्वतः ही स्वाभाविक उत्साह हो जाय उसे उत्सव कहते हैं । उत्सव मे बाह्य आभ्यन्तर की मलिनता, अशुचिता, चिन्ता, जडता, शुष्कता तथा कृपणता नही रहती ।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! श्रीकृष्ण जन्म के उत्सव मे समस्त व्रजमण्डल के सम्पूर्ण घरो के द्वार, आँगन और भी भीतर के भागों को भली प्रकार झाड बुहारकर उनम छिडकाव किया गया । फिर भाँति-भाँति की चित्र विचित्र ध्वजा पताका तथा मालायें लटकायी गयीं, रंग-बिरंगे वस्त्रों और पत्तों की बन्दनवारें लगायी गयी ।"

चित्त मे उमङ्गें उठने लगती हैं। अशुचिता सुहाती नही। बाहर भीतर के समस्त मलो को जड़ से उखाड फेंकने की प्रवृत्ति होती है। अमङ्गलो के निवारण और मङ्गलमय साधनो को जुटाने की व्यग्रता होती है। जिन वस्तुओ को देखकर मन तथा नयन प्रमुदित हो उन्हें एकत्रित करना और जिनसे चित्त दुखित और चिन्तित हो, उनका निवारण करना यही उत्सव का प्रधान कर्तव्य है। जिस समारोह मे उत्साह नही स्वच्छता नही, उदारता नही, चैतन्यता नही, प्रसन्नता नही, कार्य तत्परता नही तथा स्वागत सत्कार की प्रवृत्ति नही। वह उत्सव, उत्सव नही। वह एक भार टालना है। नाम मात्र करना है, समाज के सकोच तथा लज्जा के निवारणार्थ एक प्रदर्शन मात्र है। उत्सव तो वही है जिसमे सभी एक मन प्राण एक चित्त होकर कार्य करें, अपना सर्वस्व होम देने को तत्पर हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजी के लाला होने पर नन्दजी के ही महलो मे उत्सव मनाया गया हो, सो बात नही है। सम्पूर्ण व्रजमण्डल भर मे श्रीकृष्ण जन्मोत्सव का महा-महोत्सव मनाया गया। सभी ने ऐसा ही अनुभव किया, मानो हमारे ही घर लाला हुआ हो। अपने घर लाला होने पर चाहे इतना उत्सव न भी मनाते, आज तो सभी अत्यन्त ही आनंदित थे, व्रजवासियो के हर्ष का ठिकाना नही था। सभी आश्रम के लोगो ने इस पुण्योत्सव को बडी धूम-धाम से मनाया।"

नन्दलाल का जन्म होते ही ढाढी-ढाँढिनि नाई-नाइनि सभी घर-घर मे बुलावा देने दौड पडे। ढाढ़िनि और नाइनें तो लुगाइयो मे जाती और नाई तथा ढाढी लोगो मे जाते। जो सुनते वे ही आनन्द में विभोर हो जाते। अब गोपो ने सोचा—"पहिले घर को सजावें या पहिले बधाई देने नन्दबाबा के द्वार

पर चलें ।' फिर सोचा—"नन्दबाबा के जो लाला हुआ है, वह कुछ नन्दबाबा का तो अकेला होगा ही नहीं, वह तो हम सब गोपों का राजा होगा; अतः हम सबका उस पर उतना ही अधिकार है, जितना नन्दबाबा का। यही नहीं हमारा उस पर अधिकार अधिक है। नन्दबाबा तो अब बूढ़े हुए। जीवन भर काम तो हमें उसी से पडेगा; अतः पहिले अपने घर को सजा लें, अपने यहाँ उत्सव मना ले, तब नन्दजी के द्वार पर सब मिलकर गाते बजाते नन्दोत्सव करने चलेंगे।" ऐसा सोचकर सभी अपने-अपने घरों को सजाने लगे। सब मिलकर घरो से एक-एक आदमी तो बाहर की सार्वजनिक सजावट मे लग गये। घर की स्त्रियाँ लड़के लडकियाँ तथा अन्यान्य दास दासियाँ अपने-अपने घर को सजाने में व्यस्त हो गये। प्रथम सार्वजनिक सजावट के समाचारों को सुनिये। गोकुल यमुनाजी के कगार पर चन्द्राकार बसा हुआ था। घाट से एक सीधी सड़क दूर तक चली गयी थी। उस बडी सड़क के दोनों ओर गोपों की बस्ती थी। बड़ी सडक में से छोटी-छोटी सडकें निकली हुई थीं। उन छोटी-छोटी सड़को मे से गलियाँ थी। गोपो ने मिलकर सड़क को स्वच्छ किया। दोनों ओर सडक पर केले के खम्भे बाँध दिये, जिनमें फल लटक रहे थे। रङ्ग बिरंगे वस्त्रों की झण्डियाँ बनाकर बाँधी गयी थी। स्थान-स्थान पर मङ्गल घट रखे थे, जिन पर वस्त्रो मे लपेटे श्रीफल रखे थे। बट, पीपर, गूलर, पाकर और आम के पञ्चपल्लव उनमें खुरसे हुए थे। चौमुखे दिये उन पर जल रहे थे। स्थान-स्थान पर अगरु कर्पूर घृत और चन्दन का चूर्ण मिलाकर धूप जलायी गयी थी। आम के पल्लवों और अशोक के पल्लवों के बन्दनवार बनाये गये। उनके बीच-बीच में रङ्ग बिरंगे पुष्प लगाये गये थे।

विविध प्रकार की झण्डियों के बीच में वे वन्दनवार ऐसे लगते थे, मानों सड़क के दोनों ओर गोल नहीं, दो लम्बे इन्द्र-धनुष आकाश से गिर कर केलों के खम्भों पर टिके हों, स्थान-स्थान का सुगन्धित धूम्र ऐसा लगता था, मानों बहुत से कपोत उड़ रहे हो। सड़क इतनी स्वच्छ की गयी थी, कि सुई गिरने पर भी वह तुरन्त दिखाई दे जाय, प्रधान सड़क से जो छोटी-छोटी सड़कें निकली थी, वे भी इसी प्रकार सजाई गयी थीं। चौराहों पर विशेष प्रबन्ध था। वहाँ पुष्पों के स्तवक विशेष प्रकार से लटकाये गये थे। पुष्प वाले पौधा के गमले वाटिकाओं में से ला लाकर वहाँ रखे गये थे। चौराहे और तिराहों पर नौबत बज रही थी। वीणा भेरी और तुरही की ध्वनि नौबत की ध्वनि में मिलकर एक विचित्र मङ्गलमय प्रसंग की शुभ सूचना दे रही थी। जिनके घर प्रधान पथ के पार्श्व मे थे, उन्होने तो आज सजावट की पराकाष्ठा ही कर दी थी। सबने अपने घर की दीवालों को लाल, पीली, हरी, नीली साड़ियों को लटका-लटका कर ढक दिया था। सबकी सम्मिलित भीतें ऐसी लगती थीं मानों गोकुल नगरी दो रूप रखकर पञ्चरङ्गी साड़ी पहिने गोकुलेश की प्रतीक्षा मे सजी-बजी खड़ी हो। अपने-अपने द्वारों के सम्मुख बेलें बनाकर ऐसे वितान बनाये, मानों ये सदा से ही ऐसे बन रहे हों। उनमे फल लटकाये, पुष्प लगाये बड़ी-बड़ी ध्वजा पताकायें बनायी। मङ्गल घट, दूर्वा, अक्षत, धूप, लाजा, दधि, हरिद्राचूर्ण, श्रीफल, पुङ्गीफल, कदलीफल, बतासे तथा अन्यान्य मङ्गल की सामग्रियाँ रखी गयी। स्त्रियो ने घर-घर मे थापे लगाये। गेरू से घरों को रँगा, चौक पूरे और भाँति-भाँति के बेल बूटे लगाये। स्त्रियाँ इधर से उधर व्यस्त भाव से दौड़ रही थीं। कोई गोबर लाकर उसमें गेरू मिलाकर आँगन को

लीप रहीं थी। कोई केशर को चन्दन मे घिसवाकर उसकी कीच से ही आँगन को लोप रही थी। कोई बूढी कहती—' अरी, बहू मङ्गल की सभी वस्तुओं को लाकर रख दे। चौमुखा दीपक जोर ले उसे घर के द्वार पर रख दे। देख रम्मू की महतारी ने अपना घर कैसा सजाया है तेने अभी तक कुछ नहीं किया। बेटा ऐसा घर को सजा, जिससे सबकी दृष्टि हमारे ही घर पर पडे।"

बहू कहती—' सासूजी ! क्या करू, वे तो सबके साथ बाहर *की सजावट मे लगे हैं तुम्हारे छोटे लालाजी का पता ही नहीं* जाने कहाँ कबड्डी खेल रहे हैं।"

इतने मे ही एक हँसमुख छोकरा-सा कहता—"देख, भाभी ! तू अम्मा से बुराई मत करे, कितने फल वाले केले लेकर मैं अभी आया हूँ, अभी तेरे घर को ऐसे सजाता हूँ, जिससे तेरा सब फूहर पना छिप जाय।"

बहू वही से घू घट मे से कहती—"हाँ, लल्लू मैं तो फूहरिया हूँ ही तुम्हें देखना है, कैसी सुतंमन बहू लाते हो, किसी पतुरिया को ले आना जो घर का भी शृ गार करे और तुम्हे भी सजाती रहे।"

बुढिया झूठा कोप दिखाती हुई कहती—"अब तुम आपस मे लडाई करोगे, या कुछ काम भी करोगे ? मुझे यशोदा रानी के अभी चावल लेकर जाना है। सबके घर सज गये वाद-विवाद छोडो तुरन्त सजाओ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार व्रज मे घर-घर उत्साह छा गया। सम्पूर्ण व्रजमडल के समस्त ग्रामो मे इसी प्रकार नन्दलाल के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे सजावट हुई। यह तो गोपो के घरो की सजावट की बात है, अब जिस प्रकार गोपो ने

अपनी गौओं को सजाया, इस प्रसंग को भी आप सब समाहित चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

लीपे पोते द्वार वार घर अटा अटारी।
आँगन, पैरी, बगर रसोई और तिवारी॥
नीली पीली हरी गुलाबी पचरँग सारी।
टाँगी द्वारनि लाई कनहुँ जो नहीं निकारीं॥
दीप चौमुखा बारिकें, कलिशनिक ऊपर धरे।
मङ्गलदायक द्रव्य सब, घर घर एकत्रित करे॥

नये ग्वारियों के जन्म पर गौओं का शृंगार

[८४४]

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूपिताः।
विचित्रधातुवर्ह स्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० ७ श्लोक)

छप्पय

गैयाँ सब बगदाइ खिरकमहँ फिरितै लाई।
तेल फुलेल लगाइ न्हवाई फेरि सजाई॥
मोरपङ्खके मुकुट लसैं घुँघुरू पग जिनिके।
गेरू तेल मिलाइ रँगे तन सींग सबनिके॥
गंडा गरमहँ चमकनों, कनकहार पहिराइकें।
हरषित ह्वै पूजन करें, शाल दुशाल उढ़ाइकें॥

जिसकी जिसके द्वारा आजीविका चलती है, उसका वही इष्ट है, उसी की वह पूजा करता है। ब्राह्मण वेदों की पुराणों की पूजा करते हैं। क्षत्रिय शस्त्रों की रथ और घोड़ों की पूजा करते हैं। बनिया अपने तराजू की डन्डी की पूजा करते हैं, किसान अपने हल बैलों की पूजा करते हैं, मल्लाह अपनी नौका को पूजते

---

* श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में गौओं को, साड़ों को, हल्दी और तेल से रँगा गया और गेरू आदि धातुओं से, मोर पङ्ख, माल, वस्त्र और सुवर्ण की जंजीर से सजाया गया।"

इसी प्रकार गोपों की आजिविका गौओं से चलती है, अतः वे सब पर्वों पर सब उत्सवों पर गौओं की पूजा करते हैं, उन्हें ही सजाते हैं। मनुष्य को अपनी प्यारी वस्तु को सजी सजायी देखकर स्वाभाविक ही सुख हुआ करता है। माता-पिता अपने बच्चो को कैसा सजाते हैं। पुरुष स्वयं चाहे मेले कपड़े पहिने रहें, किन्तु अपनी स्त्रियो को वस्त्राभूषणो से सजाये रखने की चेष्टा करते ही हैं। हुक्का पीने वाले अपने हुक्के को ही सजाते हैं। संन्यासियों के पास कुछ नहीं होता एक कमण्डलु होता है; उसी को घोट-घोटकर चिकनाई से चुपड-चुपड़कर सुन्दर चमकीला बनाते हैं, बहुत से उसमें चौंप भी जडवाते हैं। यह सजावट उत्सव और पर्वो के अवसर पर विशेष होती है। धराऊ नये-नये वस्त्र निकाले जाते है। उत्सवों में यही तो होता है, स्वय तथा अपने आश्रितों प्रियजनो तथा घरो को सजाना, अच्छे-अच्छे वस्त्रा भूषणो से अलंकृत करना, और सुन्दर स्वादिष्ट पकवान बनाकर प्रसाद पाना, इसी का नाम उत्सव है। जिस उत्सव में सबको प्रसन्नता न हुई वह उत्सव नही।

सूतजी कहते हैं— 'मुनियो! नन्द के लाल का जन्म आधीरात में हुआ। गौओ को ले जाने वाले गोप सो रह थे। प्रात:काल उठते ही वे गौओं को लेकर चराने को चल दिये। खिरक में जब गौओं को न देखा, तो बूढ़े-बूढ़े गोप कहने लगे—"अरे भैया! आज नन्दलाल के उत्सव मे गौओ को सजाना था, उनका शृंगार करना था; आज गौओं को वन में भेजने की आवश्यकता नहीं थी। गौएँ खुलने ही क्यों दीं?"

जो युवक गोप थे वे बोले—"बाबा! हमें तो पता नही था; किन्तु कोई बात नहीं, अभी हो तो गौएँ गयी हैं। आप कहो तो लौटा लावें?

बूढ़े गोपों ने कहा—'हाँ, भैया। लौटानी ही चाहिए। गौएँ

ही तो हमारी परम देवता हैं। इनमे ही तो हमारी आजीविका है। इनकी प्रसन्नता में ही तो हमारा कल्याण है।"

यह सुनकर जो छरहरे युवक दौडने में प्रबल थे, वे दौड़े-दौड़े गये और दूर से ही पुकारने लगे—"अरे भैयाओ! गैयाओं को लौटा लाओ। यशोदा मैया ने एक नये ग्वारिया को पैदा किया है; उसी के उत्सव में सबको सजाना है।"

यह सुनते ही गोपों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। पौहार के आगे जाकर उन्होंने मार्ग रोक लिया, गौएँ अपने आपही खडी हो गयी; और बाँ-बाँ शब्द करती हुईं गोष्ठ की ओर दौडने लगी। गोप सब घर-द्वार सजाने मे लगे थे। जब घरो को सजावट कर चुके, सडकें सजा-बजाकर सुन्दर बनादी, तब गौओ को सजाने की बारी आयी।

सबा ने मनो गेरू घोला। सबसे पहिले गौओं को यमुनाजी में स्नान कराया। स्नान कराके उन्हे अच्छी प्रकार से पोछा। उनके सींगो मे तेल और गेरू मिलाकर लगाया। वे सींगे लाल-लाल चमकने लगी। फिर दोवला लेकर उन्हे गेरू सेलखडी आदि धातुओ मे बोर-बोरकर उसके साँचे से बनाकर सबके शरीर मे लगाय। बहुतो न लहरियादार बेल-बूटे उन पर काढे। फिर सोने के काम की हुई सुन्दर-सुन्दर रङ्ग विरङ्गी भूलें उन पर डाली। सबके सीगों मे कलँगीदार पगडी बाँधी। मोर के पङ्खों के बने हुए मुकुट उनके माथो पर बाधे। मोरपङ्ख की सीकों के बने गण्डे उन्हे पहिराये। घुँघचियो की मालायें उन्हे पहिनायी सुवर्ण के सुन्दर हारो से उन्हे सावधानी के साथ सजाया गया। उनके घुटने में बजने वाले घुँघुरू बाँधे; पीले या लाल रङ्ग का वस्त्र जिसका अंतिम भाग किसी दूसरे रङ्ग से रंगा था; वह घुटनो में बाँधा गया। बछड़े इधर से उधर कुदकने लगे, साँड रम्हाने लगे। लडके

कहने लगे—"दादा ! अम्मा ! हम बछडों को भी सजावेंगे।"

गोप गोपी कहते—"सजाओ भाई, आज बच्चों को ही तो सजाना चाहिये गोप के बच्चा हुआ है, गौओ के बच्चो को सजाना चाहिये।"

बालक कहते—"बछड़े हमे देखकर बिदुकते हैं। तुम पकड़ लो।"

यह सुनकर गोप बछडो को पकडते। लडके उन पर भी सकोरे से गेरु के चिन्ह करते, थापे लगाते तथा बिन्दी-बिन्दी रखकर त्रिकोण चतुष्कोण बनाते, उन्हे भी वस्त्र उडाते। फूलो की माला पहिनाते। बछडे कण्ठ को हिलाकर फूलो को खा जाते, तब लडके कहते—"दादा ! हम तो बछडो को सोने की माला पहिनावेंगे।"

गोप कहते—"अरे भैया बछडे तो बडे ऐबी होते है। सुवर्ण और मोतियो की मालाओ को उतारकर फेंक दगे।"

बच्चे कहते—"नही दादा ! हम उन्हे गंडो के साथ बाँध देंगे।"

इस प्रकार गोपबाल भी गौओ के बछडो को गौओ की ही भाँति सजाते। साडो को भी सबने उसी प्रकार सजाया। उनके गले मे बडा भारी घंटा बाँध दिया। गौएँ कान उठा-उठाकर चकित-चकित दृष्टि से देख रही थीं। मानो वे अपने नये ग्वारिया के विषय मे जानने को सुनने को समुत्सुक हो रही हों बछडे रस्सी को तोड़े ही डालते थे—मानो वे अपने रक्षक बालक को देखने के लिये लालायित हो रहे हो।

गोपो ने कहा—'सडकें सज गयी, घर द्वार सज गये, गौओ का भी साज शृंगार हो गया। अब इन गौओ को साथ-साथ लेकर नन्दबाबा के द्वार पर चलें।"

युवको ने कहा—'लाखों गौएँ हैं वहाँ इतनी गौएँ खडी कहाँ होगी। फिर सभी गाप तो गौएँ लेकर जायँगे।"

बूढे गोप बोले—"अरे, भाई बाहर वाले गोप जो बधाई देने को आवेंगे वे गौओं को लेकर थोड़े ही आवेंगे हम गाँव वाले ही गौओ को लेकर चलें। गौओ को आगे करके चलना शुभ होता है, फिर वहाँ रोकने का काम क्या? बडी सड़क से चलेंगे, नन्द महल की परिक्रमा करते हुए गोप गौओ को गोष्ठ मे लौटा लावेंगे हम सब वहाँ मिलकर दधिकाँदो करेंगे उत्सव मनावेंगे।

गोपो न कहा—"अच्छी बात है, गौएँ भी चलें। यह कहकर सबने गौओ को खोल दिया। गौएँ बड़े उत्साह और उमङ्ग के साथ नन्द महल की ओर चलने लगीं। अन्य दिन तो वे नचाने से भी नही नाचतीं, आज वे अपने आप ठुमुक-ठुमुक कर नाचती हुईं जा रही थी। लाखो गौओ के घण्टाओ और पैर मे बांधे नूपुरो की ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था मानो पथ मे से सङ्गीत निकल रहा हो सड़कें हर्षित होकर बाजे बजा रही हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। इस प्रकार सज बजकर गोप बधाई देने के लिये नन्द महल की ओर गौओ के साथ चले।"

छप्पय

बछरा गोप कुमार सजावें सब हरपावें।
बहुबिधि करें किलोल तुरावें मूड़ हिलावें॥
अति चचलता करें फुदुकि इततैं उत आवें॥
मानो बालगुपाल जनम को हरप मनावें।
बहु उमंगमहँ उछरिकें, सबई भागें नंद-घर।
मनहु मुनमुने सखा कीं, लगी चटपटी दरश उर॥

बधाई के लिये गोपों का आगमन

[८४५]

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।
गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ५ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

सजिबजिकें सब गोप ढोल करताल बजावत।
नन्दमहल की ओर जाहिँ सब रसिया गावत ॥
पहिन अँगरखी पाग दुपट्टा उरमहँ डारें।
लम्बे तिलक लगाइ मूँछ अरु बाल सम्हारें ॥
चले विविध विधि भेंट लै, प्रेम रसिकता महँ पगे।
मनहु कमल बिकसित सुनत, भ्रमर तुरत उतई भगे ॥

गृहस्थी की चिन्ताओं की कोई गणना नहो। कहना चाहिये गृहस्थी चिन्ताओं का पुञ्ज ही है। जिसने कभी गृहस्थ मे पदार्पण नही किया है, वह अनुमान भी नही लगा सकता, कि व्यक्ति को नित्य ही असख्यो चिन्ताएँ कहाँ से आ जाती हैं। परन्तु कोई भी गृहस्थी ऐसा नही, जो इन चिन्ताओ से दबा न हो। इतनी

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! व्रजमण्डल के समस्त गोपगण अँगरखे पगड़ियों तथा अन्यान्य वस्त्राभरणो से विभूषित होकर, हाथ मे भेंट की सामाग्रियो को लिये हुए नन्दजी के द्वार पर आने लगे।"

चिन्ताओ से दवे रहने पर भी कोई गृहस्थी को छोड़ नहीं सकता। क्योकि उसे समाज की सहानुभूति प्राप्त है, दूसरो को विवाह, पुत्रोत्सव तथा दूसरे उत्सव पर्वों पर सुखी देखता है। स्वय भी उनके सुखो मे सम्मिलित होता है और आशा करता है, कभी मुझे भी ऐसा सुख मिलेगा। मेरे सुख मे भी समाज के सदस्य सहानुभूति प्रकट करगे। समाज की सहानुभूति से सुख दुःख बँट जाता है। दु.ख मे सहानुभूति प्राप्त होने म दुख घट जाता है सुख मे सहानुभूति प्राप्त होने से वह बढ जाता है। हृदय को प्रसन्नता को प्रकट करने अपनी श्रद्धा-भक्ति सहानुभूति व्यक्त करने हम कुछ वस्तुओं को ले जाते है। वास्तव मे वस्तुओ मे तो सुख है नही, हम उनके द्वारा अपने भावो को व्यक्त करते हैं। अपने गुरुजनो के निकट हम एक फूल की माला लेकर जाते है, उन्हे उस माला की काई आवश्यकता नही। पहिनकर तुरन्त उतार देते हैं, किन्तु इसके द्वारा हम अपनी श्रद्धा को व्यक्त करते है। मनुष्य किसी न किसी रूप मे अपने भावों को व्यक्त करने क लिए विवश है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब घर द्वार तथा गौओं को सजावट हो गयी तो सभी गोप बधाई देने के लिये सज-बजकर चले। उनमे जो बूढे-बूढे गोप थे, वे तो सिर पर सफेद पगडी बाँधे हुए थे, काना मे मुरकी और कंठ मे गोप पहिने थे। उनका अँगरखा घुटनो तक लटकता था। पाइजामा कुछ ढोला और हाथ मे लठिया लिये हुए थे। युवक गोपों की पगड़ियाँ रग-विरगी थी, कोई सुरगी थी कोई पीली, कोई हरी, कोई वंजनी और कोई लहरियादार पँचरगी थी। किसी ने खिड़कीदार बाँध रखी थी, तो किसी ने लटकन, किसी ने सुई और किसी ने नोकदार सुक्केदार बाँध रखीं थी। किसी ने पगड़ी के ऊपर दुपट्टा बाँध

रखा था, किसी ने चमकना सुनहरी चोरा लगा रखा था। किसी का चोर चांदी के रग का था, माथे पर चंदन के खोर मुख पर भी चंदन लपेट रखा था। कानो में मुरकी पहिने हुए थे, किसी-किसी के कानों में सोने की लौग भी शोभा दे रही थी। कण्ठ में सोने की चिपकन, गोप, तोरा कण्ठा, लडी तथा जंजीरें पडी थी। अंगरखी शरीर मे पडी हुई थी। किसी-किसी की धोती धुली और स्वच्छ थी, किसी की तेल मे चिकनी थी, उस पर लाल लंगोटा बंधा हुआ था; उंगलियो मे अंगूठी और हाथों में अंमेठवां कड़े पड़े थे, कमर के ऊपर कौधनी और किसी-किसी के बाजूबन्द भी बाहों में शोभा दे रहे थे। किसी के हाथ में ढप था, किसी के हाथ में ढोलक थी। कोई खंजरी बजा रहा था। किसी के हाथो में करतालें थी, कोई वीणा बजा रहा था। कोई मृदङ्ग को गले में लटकाये उसी पर हाथ मार रहा था। इस प्रकार गात-बजाते नन्दजी के महल की ओर चले।

छोटे-छोटे बच्चे गोटादार चमकनी टोपी पहिने थे। सुन्दर रग विरंगी बगलबन्दी जिनके किनारों पर गोटे लगे थे सूर्य के प्रकाश मे चमकने लगती। सभी गोपकुमार कानों में बारी हाथो में कडूला, कण्ठ में कठुला, गले में हंसुली और कमर में कौधनी पहिने थे। सबकी आंखों में मोटा-मोटा काजर लगा हुआ था। सभी अपने भाई, पिता तथा चाचाओं के साथ हंसते खेलते जा रहे थे। गोप पीछे-पीछे गौओं को भी सजाये हुए ला रहे थे। उस समय का दृश्य देखने ही योग्य था। इस प्रकार गोकुल के सभी गोप नन्दबाबा के द्वार पर पहुँचे। नन्द, उपनन्द तथा सनन्द आदि सभी भाइयों ने उठकर गोपो का स्वागत सत्कार किया। सब गाने बजाने और हंसी विनोद करने लगे। नन्दजी को भांति-भांति की बधाइयां देने लगे। नन्दजी प्रेम में विह्वल

हुए लज्जित से इधर-उधर देखने लगते। बात को टाल जाते।

ब्रज चौरासी कोश मे बात फैल गयी। सभी गाँवो के गोप दल के दल बना-बनाकर आने लगे। सब ढप ढोल बजाते रसिया गाते परस्पर में बातें करते आते। एक दूसरे गाँव वालो से मिलते और कहते—"राम राम जी, राम राम जी।"

वे कहते—"राम रामजी चौधरी जी, राम रामजी बोहरे! कहो बाल-बच्चे सब राजी खुशी हैं। तुम्हारे यहाँ अबकी कैसी वर्षा हुई।"

वे कहते—"सब आपकी कृपा है, आप कहिये, आपके तो बाल-बच्चे अच्छे हैं न? हमारे यहाँ तो अबकी बहुत वर्षा हुई। घास का कुछ भी अकाल नही, गैयाँ भर पेट चर आती हैं। आपके यहाँ तो घास पर्याप्त है न?"

वे उत्तर देते—'पारसाल तो जी, हमारे यहाँ घास की कुछ तगी रही, परन्तु अबके तो रेज है। चाहे जितनी गौएं खायँ।"

बड़े बूढा की बात सुनकर कोई होले से किसी के कान मे पूछता—'अरे ये किस गाँव के हैं?"

वह कहता—'अरे, तुम नही जानते, तुम्हारी भाभी के गाँव के हैं, हथोरा के हैं। और आगे यह 'रीठा' गाँव वालो का झुण्ड है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सभी गोप प्रेम मे पगे हुए-से, आनन्द में सने-से जा रहे थे। ढोल के ढोल जय जयकार करते हुए जा रहे थे। बहुत गाँवो के थे उनमे से मुख्य-मुख्य गाँवो के नाम मैं बताता हूँ।

वे ये हैं—"हथोरा, रीठा, बारच, रावल, लोहवन, गोपालपुर बिजोली, जसौनी, माँट, भाँट, माँटरम, सुनरख, बसई, छटीकरा,

नरी सेमरी, पारसौली, कोटवन बठैन कलहरा, नन्दीश्वर, वनई, कमई वरसानो, ऊँचोगाँव चिकसौली सुमहरा महारानो कामवन, सोपरसो, खाइरो दाउजी, दीघ होरी, रायो, सुरीर, मदनवारो तथा और भी बहुत से गाँवों के गोप थे। वे सब उमङ्ग के मारे दौड़े जा रहे थे। किसी का नाम वीरभानु किसी का नाम चन्द्रभानु कोई सूर्यभानु कोई देवभानु इन्हीं नामों से विख्यात थे। कोई महानन्द कोई शिवानन्द, कोई ब्रह्मानन्द कोई सुप्रभानन्द, कमलानन्द और कोई नित्यानन्द इन नामों वाले थे।"

गोपों में मुख्यतया तीन दल थे। एक तो नन्द जी के गोत्री, जिनसे नन्दजी का भाई चारा था। वे आकर नन्दजी से भाई, ताऊ चाचा आदि कहते थे। एक महारानी के सम्बन्ध से ससुराल वाले वे आकर नन्दजी से फूफा, जीजा, बाबा आदि कहते थे, एक वृषभानु जी के गोत्री थे उनमें और ही सम्बन्ध था। इस प्रकार मिल कर चलते, कोई आगे बढ़ जाते कोई किसी गोल का साथ छोड़कर किसी दूसरे गोल में जा मिलते सभी नन्द के यहाँ पहुँचकर तुमुल ध्वनि से वाद्यों को बजाने लगते। किन्हीं के समीप नन्दजी जाते किन्हीं को उपनन्दजी बिठाते किन्हीं का स्वागत सनन्द जी करते किन्हीं को हुक्का तमाखू के लिये नन्द जी पूछते। पान, बीरी, सुपारी, तमाखू लौंग, इलायची तथा अन्यान्य मुख शुद्धि के पदार्थों के ढेर लगे थे। देखने में तो स्वागत गोकुल के गोप कर रहे थे, किन्तु वास्तव में अदृश्य रूप से सब सिद्धियाँ ही सेवा कर रही थीं। सभी यह अनुभव कर रहे थे, कि नन्दजी ने हमारा सबसे बढ़ कर स्वागत सत्कार किया।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार झुन्ड के झुन्ड व्रज भर के गोप आकर नन्दजी को बधाइयाँ देन लगे, अब जिस

प्रकार गोपियों ने आकर नन्दलाल को उपहार भेंट किये, उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा। आप सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

मिलहिँ परस्पर गहिके हृदयतेँ हृदय सटावेँ।
कोई छूवै पैर गहकिकें ताहि उठावेँ॥
कोई केशर मलै सुपारी बीरी देवें।
कोई लैँन न पाहिँ झपटि तिनि करतेँ लेवेँ॥
सिद्धिनि सब सत्कार करि, जनम सुफल अपनो करचो।
गोकुल धन, मणि, अन्न अरु, सबई वस्तुनितेँ भरचो॥

गोपियों की तैयारियाँ

[८४६]

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥*

(श्री भाग० १० स्क० ५ अ० ९ श्लो०)

छप्पय

इत गोपिनि सम्वाद सुन्यो सुत जसुमति जायो।
रोम रोममहँ हरष सुनत सबई के छायो॥
नंदभवन कूँ गमन करन की करी तयारी।
लँहगा नयो निकारि पँचरँगी ओढ़ी सारी॥
सुमन लगाइ सजाइ कच, वैणी बाँधी विधि विहित।
सिर सिंदूर लगाइ पुनि, अधर रँगे शोभा सहित॥

जो त्रिगुणातीत हैं, वे तो मनुष्य नहीं, उनकी बात तो छोड़ दीजिये, नहीं तो मनुष्य की इच्छा अपने को सजाने की होती है। देखने वाले हमे सुन्दर समझें यह लालसा सभी के मन मे रहती है। इसी दृष्टि से शृंगार किया जाता है। शृंगार के विविध प्रकार हैं, देश काल और पात्र के अनुसार शृंगार में

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब गोपिकाओं ने यह बात सुनी कि यशोदारानी के पुत्र हुआ है, तो उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। वे वहाँ जाने के लिये अपने को वस्त्र, आभूषण और अञ्जनादि से सजाने लगीं।"

भी भेद होता है। राजा का श्रृंगार और ही प्रकार का होता
व्यापारी के श्रृंगार भिन्न ही होते हैं। बूढ़े इस विचित्र ढङ्ग
श्रृंगार करते हैं, कि उनके वृद्धपने की मानमर्यादा बनी
युवकों का श्रृङ्गार और ही होता है। कोई केशों में कु
लगाकर उन्हें सजाते हैं, कोई धूलि मलकर उसी में सौन्दर्य
अनुभव करते हैं। नागा महात्मा अपने सम्पूर्ण शरीर में
लगाकर उन्हें विधिवत् सम्हालते हैं। सौन्दर्य की भावना
भी है। कोई इस प्रकार श्रृंगार करते हैं हमारी सादगी प्र
हो। कोई तो शुभ्र-वस्त्र पहिनकर अपने मन को सन्तुष्ट करते
कोई मैले कुचैले फटे पुराने वस्त्रों को पहिनकर अपनी स्वा
विकता सादगी और सरलता समाज को दिखाते हैं।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में श्रृंगार करने की भावना प्र
होती है। जब से इस देश की श्री नष्ट हो गई है, तब से अधर्म
प्राचुर्य से स्त्रियों की मति भी मारी गयी है, वे श्रृंगार को एक
का कार्य समझती हैं। द्वेषवश वे कहती हैं—"हम कोई खिल
तो हैं नहीं जो पुरुष को प्रसन्न करने के लिए दिन भर अङ्गों
रँगती रहें, हम भी स्वतन्त्र हैं।" किन्तु स्वतन्त्र होने पर
वे श्रृङ्गार किये बिना मानती नहीं। बालों को आकर्षक बनाने
वस्त्रों की सजावट में उनका बहुत समय जाता है, फिर चाहे
सजावट हमारी संस्कृति के विपरीत ही क्यों न हो। जो सह
स्वभाव है, वह तो किसी न किसी रूप में प्रस्फुटित होगा ही
स्त्रियाँ कितनी भी उन्नति या अवनतिकी ओर अग्रसर हो जा
स्त्री सुलभ लज्जा और श्रृङ्गार प्रियता को वे खो नहीं सकत
क्योंकि सहज स्वभाव दुरतिक्रम होता है। प्राचीन काल में स्त्रि
श्रृङ्गार न करना यह अशुभ चिह्न मानती थीं। बहुत से सौभा
चिह्न तो ऐसे थे, जिनका धारण करना अनिवार्य था। श्रृङ्गार

स्त्रियो की शोभा और वढ जाती है । उनके आभूपण ऐसी सम्पत्ति हैं जो विपत्ति मे काम आते हैं । पुरुप जब सब ओर से निराश हो जाता है, कही भी उसे आश्रय नही दीखता, तव उसकी दृष्टि अपनी पत्नी के आभूपणो की ओर जाती है और वे आडे समय पर काम आते हैं अत घर में स्त्रियों पर आभूपणो का रहना आवश्यक हो नही अनिवार्य है। सौभाग्य की वृद्धि के लिये शृ गार करके आवें तभी उत्सवो की शोभा है रस की वृद्धि होती है तभी सरसता आती है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! जब अन्त पुर मे गोपियो न श्रीकृष्ण जन्म का समाचार सुना, तव तो उनके हृष का ठिकाना नही रहा। प्रथम झाड बुहार कर लीप-पोतकर चौक आदि पूरकर ध्वजा, पताका वन्दनवार लगा कर तथा मङ्गल द्रव्यो को यथा स्थान रखकर अपने-अपने घरो को सजाया। घर सजाने के अनन्तर फिर उन्होने अपने-अपने अङ्गो को सजाया शरीर का शृ गार किया। उत्सव मे जा रही हैं, मङ्गल का अवसर है, मङ्गलमयी वनकर वहाँ जाना चाहिये। फूहर की भाँति मैले कुचैले वस्त्रा से चली गयी तो बच्चे का अमङ्गल होगा सब घृणा करेंगी। सब प्रकार की सजावट ही तो समारोहो की शोभा है।

प्रथम उन्होने अपने शरीरो को झाड पोछकर उसमे सुन्दर सुगन्धित तैल लगाया। पुन किसी ने पिसी सरसो मे बेसन मिलाकर उसका उवटन किया। किसी ने हल्दी तैल आटा मिला कर उसी से उवटन किया किसी ने वादाम पिस्ता तथा केशर पीसकर उसी का उवटन किया। उवटन से तैल की चिकनाहट छूटकर शरीर दमकने लगता है। तदनन्तर सुन्दर सुगन्धित गुलाब जल पड़े जल के द्वारा सिर से स्नान किया। भाँति भाँति

की सुगन्धित वस्तुओ से सिर के बालो को धोया। फिर उन गीले बालो को अगुरु, चन्दन के चूर्ण का दहकते कोयलों पर डालकर उसके धूएं से सुखाया, जिससे उनमे सुगन्धि व्याप्त जाय। फिर उन्हे बहुमूल्य सुगधित तैल आदि डालकर कंघी से सीधा किया। बूढी-बूढी स्त्रियो ने कहा—"आ बेटी ! तेरी वेणी गूथ दूँ।"

सबको तो श्रीकृष्ण दर्शन की चटपटी लगी हुई थी। मुनियो! आप इस कथा को प्राकृत कथा समझ कर मुझे बीच मे टोककर रस भग न करे। इसमे प्राकृत रस की गन्ध भी नही। ये गोपियाँ सभी महाभागवती हैं इनकी चरणो की धूलि के लिये ब्रह्मादि देव तरसते रहते है। यह जो सब शृंगार कर रही है, श्रीकृष्ण के निमित्त ही कर रही हैं। श्रीकृष्ण के निमित्त किये हुए सभी कार्य अप्राकृत चिन्मय हो जाते है यह शृंगार कर रही है परम दिव्य अलौकिक और दिव्य रस का उत्पादक है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! महाभाग ! हम विमुक्त मुनि शुष्क हृदय के नही हैं। यह तो कह नही सकते हमारा उस दिव्य अप्राकृत चिन्मय रस मे प्रवेश है; किन्तु इतना जानते हैं, श्रीकृष्ण और गोपियो का जो शृ गाररस है वह दिव्यातिदिव्य अलौकिक तथा कुत्सित काम भाव से सवथा रहित है इनकी कथा सुनने से अन्त.करण शुद्ध होता है, प्राकृत काम नष्ट होता है। आप नि:संकोच गोपियो के शृंगार का वर्णन करें।"

श्री सूतजी बोले—"हाँ, महाराज ! यही मुझे निवेदन करना था। अच्छा तो बडी बूढियों द्वारा उन्होने अपनी-अपनी वेणियो को बंधवाया। किसी ने एक वेणी कराई बड़े विचित्र ढग से उनमे मालती, माधवी तथा यूथिका के छोटे-छोटे पुष्पो की मालायें गूँथ कर एक प्रकार का जाल-सा बनाकर एडी तक उसे लटका दिया, उसमे रेशमी फुन्देदार लच्छे लटका दिये। किसी ने बीच से

वालों को दो करके उन्हें गुहकर उनका जूडा बनाया बीच-बीच मे कुसुम कलियो को लगवाया। किसी ने जूडे को सिर की ओर बाधा किसी ने दाईं ओर किसी ने बाईं ओर किसी ने ठीक सिर ओर पीठ की दोनो हड्डियो के बीच मे अपने जूडे को बाँधा और उसमे रगविरगी मालाय लपेटीं माँग मे सिंदूर की रेखा लगायी। भाल पर केशर, कस्तूरी गोरोचन चन्दन चमकनी बेंदी अथवा सुवर्ण की बिन्दी लगायी। कपोलो पर चदन की खौर लगाकर तथा लोध्र से उन्हे लाल बनाकर उन पर पत्रावली की रचना की। भौंहो को सम्हाल कर उन्हे कुटिल बनाया। आँखो मे सुन्दर सुरमा कज्जल अजन लगाया। दाँतो मे मिस्सी, किसी-किसी ने उनमे चौंप भी लगायी। मुख मे सुन्दर लौंग, इलायची, केशर कपूर, जायफल, सुपारी तथा अन्यान्य सुगन्धित पदार्थों से युक्त सुन्दर पान दबाया। ओठो के आलक्तक स विधिपूर्वक सम्हाल कर रँगा। चिबुक पर चमकीली बिन्दी लगायी। अगो मे केशर, कस्तूरी कपूर तथा लोध्र आदि मिलाकर लगाया, जिससे सब अग सुगधित हो जायँ और अग के वर्ण मे पीतरक्त वर्ण मिलकर एक विशेष आभा को उत्पन्न करे। वक्षस्थल पर गन्धयुक्त कुकुम का लेप किया। हाथो मे मिहदी तथा नखो को आलक्तक से रँगा। चरणो मे महावर लगाया, नखो के पादतल को आलक्तक से रँगा। पुन: दर्पण मे मुख देखकर जहाँ-जहाँ कोई त्रुटि दिखाई दी, उसे पुन सम्हाला। तदनन्तर धराऊं सुन्दर सुगन्धित रखे हुए वस्त्रो की पेटिका निकाली। उसमे स जो सबस सुन्दर घूमघुमार साट पाट का लँहगा था वह पहिना। किसी का लँहगा ८० गज का था। किसी का सौ गज का था। उनके किनारा मे मोतियो की लामन लगी थी, सिलमा सितारेकार चोवी का काम उन पर हो रहा था, गोपुरी की उडी, जरी के बेलबूटे उसमे कढे थे, स्थान-

स्थान पर छोटे-छोटे शीशे चढे थे, दूर से ऐसा प्रतीत होता था मानो नीले लाल रंग वाले नभ मे तारे उदित हो रहे हो। उनमे झब्बेदार रेशमी लम्बा नारा लगा था। जिन्हे पहिन कर उनकी शोभा अत्यन्त बढ रही थी। कन्चुकी हरी, लाल अथवा गाढे पीले रङ्गो की थी। सब ओढनी—फरिया रङ्ग बिरङ्गी थी जिनमे भाँति-भाँति के काम हो रहे थे, गोटा लगाने से वे चमक रही थी। इस प्रकार चार वस्त्र पहिनकर उन्होने आभूषणो को धारण किया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आभूषणो की गडना करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है, फिर भी मुख्य-मुख्य आभूषणो के नाम मैं बताता हूँ। गोपियो ने श्रीकृष्ण जन्मोत्सव मे जाने के लिये अपने जूडे मे जूडा नामक फूलदार आभूषण लगाया, सिर पर चूडामणि और माथे के ऊपर लडोदार खौर बाँधी। कानो मे कुण्डल कर्णफूल, बाला छोटी बाली तथा झुमका पहिना। दातो मे चौप और नासिका मे किसी ने नथ, किसी ने सौने का सेंठ, किसी ने लटकन बुलाक, झलका तथा जडाऊ नग पहिना। चिबुक पर नील नग चिपकाया। कठ मे कठा कठहार, मणि-मुक्ताओ के हार, चन्द्रहार नौलखाहार, द्विमनिया, तिमनिया, पचमनिया, गुलूबन्द, इकलरी, दुलरी, तिलरी, चौलरी, पचलरी, सतलरी जोमाल, चम्पाकली, पुनरीमाल, मोहनमाल, तथा और भी अनेक प्रकार के हार यथा रुचि पहिन। भुजाओ मे बराजो-सन, बाजूबन्द, कलाई मे कगनी, चुरी, छन्ना पछेली, दूआ, बगली, तारकसी, मठिया, और परोबन्द। उँगलियो मे आरसी छल्ला छाप तथा मुदरी। कटि मे कर्धनी, तथा बाजनी। पैरो मे पायजेब, पायल, रमझोल लच्छे कडे छडे साकर, स[illegible] -तया तोडा। पजे मे पगमान, नहिया, एडीचोप, चुटकी, दुछल्ली,

बिछिया तथा छमछम आदि। इस प्रकार भाँति-भाँति के सुवर्ण चाँदी तथा रत्न जटित बहुमूल्य आभूषण पहिन कर वे नन्द भवन की ओर जाने के लिये समुत्सुक हुईं। घूम घुमारे लँहगों को पहिनकर छम्म-छम्म करती हुईं वे गजगामिनी इधर से उधर घूमने लगीं। कभी इसे बुलातीं कभी उसे पुकारतीं, इस प्रकार आभूषणों की झङ्कार से निर्जीव गृहों को मुखरित-सी करतीं अत्यधिक उत्सुकता प्रकट करने लगीं। उनके उत्तुंग कुच तंगदार मणि जटित कंचुकी से आबद्ध होने पर भी शरीर से पृथक् स्पष्ट दिखाई देते थे। वे श्रीकृष्ण दर्शन लालसा में घर द्वार, कुटुम्ब परिवार को भूल रही थीं। युवती चंचलता प्रकट कर रहीं थी। वृद्धा गंभीरता के साथ साज सम्हार कर रही थीं। बुढ़ियाँ कह रही थी "शरीर तो सजा लिया क्या वहाँ खाली हाथ जाकर लठ्ठ-सी खड़ी हो जाओगी। उपहार का थाल तो सजाओ!"

लजाती तथा मंद-मंद मुस्कराती हुईं युवतियाँ कहतीं— "अम्मा जी! क्या क्या चाहिये हमें तो पता नहीं आप जो कहें वही थाल में सजावें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। इस प्रकार व्रज की गोपियाँ स्वयं वस्त्राभूषणों से मंडित होकर अब नंद-गृह ले जाने के लिये थाल सजाने लगी।"

छप्पय

मुखमहँ मिस्सी पान नाक नकबेसरि सोहे।
कुच कुंकुम की कीच कठिनता रति मनमोहे॥
बेंदी, कुंडल, हार, झूमका, कण्ठा, लटकन।
चम्पकली, चौमाल वरा, वाजूबँद कंगन॥
मुदरी, छल्ला, आरसी, पगपानहु पायल कड़े।
पहिने पैरनि साँट अरु, पाइजेब, छमछम छड़े॥

नन्द-भवन की ओर सोपहार गोपियों का गमन

[८४७]

नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥❀

(श्री भाग० १०'स्क० ५ अ० १०, श्लोक)

छप्पय

करि सोलह शृङ्गार बनीं रति-सम सब नारी।
चाँदी को लै थार चाव की वस्तु सम्हारीं॥
किसमिस, गोलागिरी, छुआरे और मखाने।
पिस्ता अरु बादाम, चिरौंजी, एलादाने॥
हँसली कठुला कौंधनी, कुरता टोपी खिलौना।
न्योछावर, राई नमक, लयो ललाकूँ झुँझुँना॥

शास्त्र का ऐसा वचन है, कि जब राजा के समीप जाना हो, किसी वेदपाठी-ब्राह्मण के पास जाना हो, अपने गुरुओं के समीप जाना हो, मुहूर्त दिखाने के लिये ज्योतिषी के समीप जाना हो,

---

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! उन गोपियों के कमल मुख की कान्ति नव-कुंकुम के किञ्जल्क के सदृश थी वे बहुत सी भेंटों को लिये हुए नन्द भवन की ओर शीघ्रता के साथ जा रही थीं, शीघ्र चलने के कारण उन-पृथु श्रोणियों के पीनपयोधर चञ्चल हो रहे थे।"

औषधि आदि पूछने वैद्य के पास जाना हो अथवा अपने कुटुम्ब परिवार मे मित्रो के यहाँ उत्सव आदि में जाना हो, तो रिक्त हस्त कभी भी न जाय, कुछ न कुछ लेकर ही जाय। उत्सव मे सभी भेंट लेकर आते हैं, भेंट क्या लाते हैं अपने प्रेम को प्रदर्शित करते हैं। लडकी के विवाह मे सम्बन्धी सम्मिलित होते है तो लडकी के लिये कुछ वस्तुएं लाते हैं, कुछ द्रव्य कन्या-दान मे देते हैं उसे उपहार की वस्तुएं देते है। विवाह होने पर लडकी याद रखती है, यह उनकी दी हुई अँगूठी है, अमुक वस्तु उन्होंने मुझे दी थी। लड़का होने पर परिवार वाले कुटुम्बी सगे सम्बन्धी तथा इष्ट-मित्र प्रेमी बच्चे के लिये बच्चे की माँ के लिये उपहार भेजते हैं। जिनसे अपना सम्बन्ध है, उत्सव-पर्वो मे जिनके यहाँ आते जाते हैं, वे लोग सभी परस्पर मे सम्मिलित होते हैं। स्त्रियाँ पृथक् सौ पचास मिलकर गीत गाती हुई चावल लेकर आती हैं। नगरों में तो यह प्रथा नाम-मात्र को ही अवशिष्ट रह गयी है। गाँवो मे अभी तक चावल ले जाने की प्रथा है, किन्तु पहिले जैसा उत्सव नही है। अब तो लकीर पीटना शेष रह गया है। चाव लेकर स्त्रियों को आने मे कितना उत्साह होता है, इसका अनुमान बिना प्रत्यक्ष देखे कोई लगा ही नही सकता। उस समय मूर्तिमान् सरसता सजीव चञ्चलता नृत्य करती हुई दिखाई देती है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! यशोदाजी के लाला हुआ है। इस समाचार ने व्रजाङ्गनाओ के रोम रोम मे आनन्द और उत्साह को उत्पन्न कर दिया। हर्ष के कारण उनके पैर पृथ्वी पर नही पड़ते थे। तितलियो की भाँति वे इधर से उधर नाच रही थी। यह ला, वह ला इसे उठा, उसे रख। यह वस्तु हमारे घर मे नही है तो श्यामा जीजी के यहाँ से माँग लो। बहू कहती—

"माँजी! मतलसका पीला कुरता तो नही है।" बुढिया कहती—"गोविन्द बीबी के यहाँ से ले आओ।" कोई दौडकर जयदेवी के यहाँ चली जाती और पच-मेवा ही माँग लाती।

कोई नई वहू पूछती—अम्मा जी! टीके मे कौन-कौन सी वस्तुएँ जाती हैं।"

बुढिया अपना पुरखापन जताती हुई कहती—"देख बहू! चाँदी के थाल मे मिठाई रख ले। किसमिस गरी का गोला, चिरौंजी, बादाम और छुआरे, ये पञ्चमेवा रख ले। बच्चे के लिये कुरता, टोपी, कठुला, कडूला, हँसली, कौंधनी, खेलने के खिलौना, झुझुंना, न्यौछावर के लिये द्रव्य और माँ बच्चे के ऊपर उतारने के लिये राई और नौंन भी रख ले। यशोदारानी के लिये तीहर तो उनको पीहर से आवेगी। हमारे यहाँ से तो इतना ही नेग होता है। न्यौछावर उतारकर नाइनि को दे देना और दाई को भी कुछ देना होगा।"

वहू तुरन्त इन वस्तुओ को चाँदी के थाल मे सजा लेती। अब एक दूसरी के यहाँ दौरकर जाती और कहतीं—'आनन्दी-जीजी! अब किस बात की देर है।"

वह मुँह बनाकर कहती—"अरी बीबी! देर काहे की है। हमारे गोकुल की रीति ही ऐसी है, साज सम्हार मे ही समय बिता देती हैं। अभी-अभी कामलता-चाची प्रेमलता चाची, रूपो-जीजी, ये सब निकलें, तब हम निकल सकती हैं। छोटी होना यह भी तो एक पाप ही है।"

इतने में ही बाहर से सुनाई दिया—"वहू सब दोष हमारा ही है क्यो! अपनी बात नही कहती, अभी तक तुम्हारी रामा-रानी तो आँखो में मजन ही लगा रही हैं।"

यह सुनकर बहू भीतर से हडबडाकर आती और कहती—

"चाची ! पइँन लगती हूँ।" यह कहकर उसके पैरों को दो चार बार मसलती।"

इस पर चाची कहती—"हजारी उमर हो बेटी ! तेरा सुहाग सदा बना रहे, बूढ़-बुढ़ै लो हो, दूध-पूत से घर भरा रहे, बेटा हो नाती-पोता हो।"

इस पर बहू कहती—"चाचीजी ! अब देर करने का काम नहीं ? देखो, सुन रही हो तुम, उस मुहल्ले की स्त्रियाँ तो पहुँच भी

गयी; आज बड़ी भीड़ होगी। देर हो जाय, तो सम्भव है सूतिका-गृह तक पहुँच भी न सकें।"

इस पर चाची कहती— हाँ, बहू! अब चलो।" बस फिर क्या था, चाचा के निकलते ही घरों में से स्त्रियाँ उसी प्रकार निकलने लगी, जैसे कबूतरी अपने-अपने दरों में से निकलकर दौड़ती हैं। सबके हाथों में नाना प्रकार के उपहारों के थाल थे। आगे-आगे बड़ी-बूढ़ी सौभाग्यवती स्त्रियाँ सादे सफेद कपड़े पहिने भक्ति भाव से शनैः शनैः गीत गाती हुईं चल रही थीं। उनके पीछे नई छरहरी युवती गोपियाँ चल रही थी। वे रङ्ग बिरंगे वस्त्राभूषणों के कारण अत्यंत ही सुन्दर लग रही थी। एक-एक हाथ लम्बा घूँघट मारे सरसता में पगे हुए शृंगार-रस के गीत गाती हुई जा रही थी। वे दो उंगलियों से घूँघट को सरका कर कभी-कभी एक आँख से इधर-उधर देख लेती थी। नितम्बों के स्थूल होने से वे लचक-लचक कर स्थूल हथिनियों की भाँति चल रही थीं। उन्हें जाने की चटपटी लगी थी, पीछे से नितम्बों के भार के कारण और आगे से पीनपयोधरों के भार के कारण वे अधिक शीघ्रता से चलने में समर्थ नहीं थीं। फिर भी वे जब दौड़ती तो कंचुकी से कसे विल्व के समान स्तन चचल मछली के समान हिल-हिलकर उनकी गति में बाधा डाल रहे थे। उनके मुख-चन्द्रों की आभा से लज्जित हुए सूर्य आकाश के नील अंचल में छिप गये थे। नव-कुकुम रूप केशर से सुशोभित उनके मनोहर मुख शारदीय अरविन्द के समान दिखाई देते थे। वे अपने सुरीले कण्ठों से ऐसे सरस गीत गा रही थी, मानों सुधारस की सगीत द्वारा वृष्टि कर रही हो। उन युवतियों के साथ जो मुख खोले हुए युवतियाँ या लड़कियाँ थी, वे इस गाँव की लड़कियाँ हैं, उनमें से बहुत—सी कुमारी थी, जिनका अभी विवाह नहीं हुआ था।

बहुत सी ऐसी थी जिनका विवाह ता हो गया था, किन्तु अभी गौने नही गई थी। बहुत सी गौने से लौटकर आयी थी। वे गाँव की बहुओ के गीत मे महयोग नही दे रही थी, किन्तु भीतर ही भीतर उनका चित्त उमड रहा था, सरसता मे पग रहा था, हृदय हिलोरें ले रहा था। श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये सभी समानरूप से लालायित थी।

सूतजी बोले—'महाराज! एक बात अभी स स्मरण रख लीजिये। व्रज की स्त्रियो के, भगवान् मे दो ही भाव थे। कुछ बुढियाओ का तो भगवान् के प्रति वात्सल्य स्नेह था, नही तो सभी का उनमे कान्त ही भाव था। श्याम सुन्दर हमारे प्रेष्ठ हैं।

शौनकजी ने हंमकर कहा—'सूतजी! आपने तो आश्चर्य की सीमा का भी उलघन कर रहे है। अभी नन्दलाल एक दिन के भी हुए नही, गोपियो न दर्शन तक भी किय नही, उनमे कान्त भाव कैम हो गया।"

सूतजा बोले—"अजी, महाराज! ये नटनागर कभी बालक नही होते, ये तो नित्य किशोर ही बने रहत है। इनका नाम ही नन्दकिशोर है। किशोरी और किशोर ये न कभी बालक होते हैं न बूढे। इनकी सदा एक ही अवस्था रहती है। रही दर्शन की बात सो, ये तो न जाने कवसे नन्दलाल से सम्बधित हैं। बिना पूर्व के सम्बन्ध के उत्कण्ठा नही होती। ये गोपियाँ तो रात्रि-दिन उन्ही की प्रतीक्षा करती थी। इसलिये व्रज मे लडको के साथ तो सख्य भाव श्रीकृष्ण का है, किन्तु स्त्रियो से माता और कान्ता ये ही दो सम्बन्ध हैं। व्रजे सन्ति त्रयो गुण.' व्रजमे सख्य, वात्सल्य और मधुर ये ही प्रधानतया तीन रस हैं।"

इस पर शौनकजी ने कहा— सूतजी! भगवान् के दो ताऊ

थे दो सगे चाचा थे, इनके भी तो लडकियाँ होगी। वे तो भगवान् की वहिनें ही हुईं।

सूतजी बोल—"महाराज! मै कह तो चुका हूँ, उनमे से किसी के लडकी थी हो नही। यशोदा मैया के एक योग माया से हुई थी, उसे भगवान् ने व्रज के बाहर विन्ध्याचल में पठा दिया। व्रज-मडल भर मे उनके कोई वहिन ही नहीं थी। सुभद्रा का जन्म तो द्वारका मे हुआ था। द्वारका मे तो द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को भाई कहा है। अस्तु, यह प्रसङ्ग तो गहन है। आगे यथा स्थान इस विषय की चर्चा होगी। यहाँ केवल वात्सल्य रस के प्रसङ्ग मे इतना ही सकेत करना था, कि बूढी गोपियो का ही वात्सल्य भाव था। ऐसी बहुत कम थी। शेष तो सरसता मे पगी गीत गाती जा रही थी।

इस प्रकार वे आनद मे मतवाली हुईं गाती बजाती नन्दजी के भवन के सम्मुख पहुँची महाराज! यह तो मैंने गोकुल की गोपाङ्गनाओ के सम्बन्ध मे बताया, अब अन्य गाँवों मे चाव ले लेकर व्रजाङ्गनाएं आयो, उनके सम्बन्ध की भी कुछ बातें सुनिये।"

छप्पय

लीये कर उपहार भावमहँ भरिकें भामिनि।
कटि कुचभार सम्हारि नामित-सी है गजगामिनि॥
नेह पागमहँ पगीं सरसता-सी सरसावति।
मुखरित पथकूँ करति चलति रस-सो बरसावति॥
देह गेह सुधि बुधि न कछु, कृष्ण-कृपाकी कामिनी।
नव जलधरमहँ चमकिरे, चलीं मनहुँ सौदामिनी॥

भावमयी गोपियों की अपूर्व शोभा

[८४८]

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥❀

(श्री भा० १० स्क० ५ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

काननि कुंडल कनक समुज्वल मणिमय विलसित ।
चमकें दमकें हार मनहु नभ उडगन विकसित ॥
घूँघटतें मुख ढक्यो मनहु छिपि घनमहँ निशिपति ।
झरहिं सिरनितें सुमन मनहु शर छोंड़ें रतिपति ॥
हृदय-हार अरु कुचनिमहँ, होवे संघर्षण प्रवल ।
ज्यों झखझोरें मीन द्वै, मानसरोवर हृत्कमल ॥

स्त्रियो मे शास्त्रकारो ने तीन प्रधान गुण बताये हैं । वे गुण

❀ श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् नन्दजी के भवन को जाती हुई गोपिकाओं की कैसी अपूर्व शोभा उस समय हुई । उनके कानों में उज्वल मणिमय कुडल थे, हार हमेल गले मे पहिने थी, रग विरगे वस्त्र पहिने थी, मार्ग मे उनकी चोटियो से फूलों की वर्षा-सी होती जाती थी । करो मे कङ्कण पहिन थी, और शीघ्र चलन से उनके कुण्डल स्तन तथा हार हिल रहे थे ।"

और किसी मे भी नही हो सकते। प्रथम सद्गुण तो इनमे यह है, कि ये पुत्ररत्नो को प्रसव करती हैं। जितने अवतार, महात्मा अथवा महापुरुष हुए हैं, उनको इन्होने ही जना है। दूसरा गुण इनमे यह है, कि ये पति के लिये अपना नाम, कुल, गोत्र तथा शरीर सब कुछ निछावर कर देती हैं। यही नही, कि जीवित पति के मन मे अपना मन मिलाकर उसकी सहगामिनी बनी रहे, अपितु मरने पर हँसते-हँसते उसकी चि ा पर चढकर जल जाती हैं और परलोक मे पुन अपने प्राणनाथ से मिल जाती हैं। इतना बडा त्याग ससार मे और कोई कर नही सकता। तीसरा गुण इनमे सर्वश्रेष्ठ यह है, कि ये मङ्गलमयी हैं। घर में रहकर नित्य कोई न कोई मङ्गलकृत्य करती हो रहती हैं, व्रत, उपवास उत्सव, गीत वाद्य, नृत्य यह इनका स्वभाव है। सच पूछा जाय तो उत्सवो की शोभा तो स्त्रियो से ही है। स्त्रियाँ जिसके भी यहाँ जायँगी जाते ही काम मे जुट जायँगी। समारोह को सफल बनाने मे ये सतत प्रयत्न करेगी। घर मे जितने विवाह, पर्व तथा अन्य उत्सव होत हैं उनमे पुरुष तो सामग्री जुटा देते हैं, करती धरती तो घर की स्त्रियाँ ही हैं। स्त्रियो का हृदय सरस और सङ्गीतमय कला पूर्ण होता है। ललित कलाओ मे इनकी स्वाभाविकी प्रवृत्ति होती है। जिस उत्सव मे स्त्रियो का सहयोग समारोह न हो वह अधूरा है, नीरस शुष्क और केवल चहल पहल मात्र है। उत्सव स्त्रियो से चौगुना शोभा युक्त बन जाता है, तभी तो भगवान् शुकने नन्दोत्सव के प्रसङ्ग मे गोपो की शोभा का वर्णन एक ही श्लोक मे किया, किन्तु गोपियो के वर्णन मे चार श्लोक कहे। परमहस चक्रचूडामणि वीतराग नि सग सर्वत्यागी जितेन्द्रिय भगवान् शुक ने प्राकृत शृङ्गार रस की सरसता बढ़ाने के लिये ऐसा किया हो, सो तो सम्भव नही,

क्योकि वे प्राकृत धर्मों से ऊपर उठे थे। उन्होने जो वर्णन किया वह श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ ही किया। भगवान् ने प्रथम ही क्षीरसागर पर ब्रह्माजी के द्वारा देवताओ को यह आदेश दिलाया था, कि "मेरी प्रसन्नता के लिये समस्त देवाङ्गनाएं भी मर्त्यलोक मे जाकर जन्म लें।" तो जो एकमात्र श्रीकृष्ण को ही प्रसन्न करने का उपक्रम कर रही हो, उनकी शोभा का जितना भी वर्णन किया जाय उतना ही न्यून है। इसीलिये गोकुल की ग्वालिनियो की शोभा का वर्णन करके अब समस्त व्रज की व्रजाङ्गनाओ की छटा की झाँकी कराते है।'

सूतजी कहते हैं— मुनियो! श्रीकृष्ण के जन्म का समाचार सुनकर केवल गोकुल की ग्वालिनियो को ही उनके दर्शनो की चटपटी लगी हो सो बात नही। समस्त व्रज मण्डल की वारी, बूढी तथा युवती समस्त स्त्रियो के मन मे भगवान् को देखने की उत्सुकता हो गयी। गाँव गाँव मे घर घर मे स्त्रियाँ नन्द-भवन को गमन करने के लिये तैयारियाँ करने लगीं। वे मेवा मिठाई आदि टीके की वस्तुओ को लेकर अपने-अपने घरो से निकल पडी। उनमे सभी तरह की थी। कुछ बूढी टेढी भी थी कुछ युवती विमुग्धा थी कुछ मुग्धा बालिकाएँ भी थी। बुढियो के मन मे आज नवयौवन का सचार हो गया था इसलिये आज वे दौड रही थी। युवतियो मे कई प्रकार की थी, कुछ तो पतली छरहरी शीघ्रगामिनी थी, कुछ मोटल्ली थमथल्ली भारी शरीर की थी। शरीर पर अधिक मास चढ जाने से उन्हे चलने में कष्ट होता था। वे पिछड जाती और कहती—'अरी वीर आनन्दी! पहिले तुम जाकर खीर न खा लोगी, हमे भी साथ लिये चलो।'

दूसरी हँसती हुई कहती—"अरी तुमने तो अपने भर्तार

की भी मुटाई अपने शरीर मे ले ली है। वे कितने दुबले पतले है तू कितनी धमधल्लो हो गयी है। लोभ का फल तो यही होता है। यह सुनकर सब हँस जाती।

जितना बुढी टेढी डुकरियाँ थी वे कहती—'अरे, छोरियो! तुम तो उड रही हो, मानो पङ्ख लग रहे हो। हमे भी साथ लेती चलो।"

उनमे से कोई हँसती हुई कहता— दादो कभी तुम भी ऐसे उडी होगो। सबका समय होता है। बुढिया को तो घर मे ही बैठकर माला सरकानी चाहिये, ऐसे अवसरो पर जाना ही न चाहिये।"

यह सुनकर एक बुढिया कहती—"बुढियाओ के मन नही होता क्या ? तुम सदा ऐसी ही छैलछबैली नवेलो बनी रहोगी। तुम भी तो कभी बुढिया होगी।"

इस पर एक छोटी सी—ठिगनी सी—गोल मुखवाली युवती घूँघट को उठाकर कहती—"बुढिया हो हमारी बैरिन, हम तो सब देसी हो नित्य किशोरी बनी रहेगी। व्रज मे रहकर भी जो स्त्री बुढिया हो अब उसके लिये मैं क्या कहूँ "

यह सुनकर सब हँस पडतीं। इस प्रकार हँसी-विनोद करती हुइ जा रही थीं। अधिकाश गोपिकाएँ पैदल ही आ रही थी। उनके चरणों को धूलि से आकाश मण्डल भरा हुआ सा दीखता था, मानों उस परम पावन रज को देवगण अलक्षित भाव से स्वर्गादि लोको के लिये ले जाते हो। जो अत्यन्त ही बूढी डुकरियाँ थी उनको भी श्रीकृष्ण दर्शन को अति उत्कण्ठ बढी। वे भी गाडियो में बैठ-बैठकर नन्दभवन की ओर जा रही थी। चारो दिशाओं के पथ गोप और गोपियों से भर रहे थे। मार्ग मे गोपियो के झुण्ड मिलते, किसी गाँव के युवक देखते इस गाँव

की लडकी हमारे गाँव के गोप से विवाही है, तो ससुराल का नाता मानकर वह कोई सरसता की बात कह देता। युवतियाँ भी उससे ऐसी ही बातें कह देती, इससे रस की वृद्धि होती।"

उन आने वाली व्रजाङ्गनाओं के प्रत्यक्ष दो-दो गोल दिखाई देते। जो युवती थी, चलने मे शक्तिशालिनी थी, वे तो आगे-आगे हरिनियो की भाँति चकित दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई बढ जाती थीं, बुढियाएँ थी अथवा बालिकाएँ थी, वे पीछे के गोल मे रह जाती। वे भला युवतियो की बराबर कैसे कर सकती थीं।"

व्रज मे पुष्पो की तो कुछ कमी ही नहीं थी। जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ कमी का क्या काम है, व्रज तो रमा रा क्रीडास्थल ही बन गया था। ऋतु के बिना ऋतु के सभी फूल खिल गये थे। प्रकृति के नियामक का प्रसन्नता के निमित्त ही जब व्रजाङ्गनाओं का अवतरण है, तब प्रकृति को तो उनके अनुकूल होना ही होगा। मालती, माधवी, मल्लिका, यूथिका, चम्पा, पाटल, गन्धराज तथा पारिजात आदि के पुष्पो से उन युवतियो की चोटियाँ गुथीं हुई थी किसी-किसी की ऐडी तक लटकती चोटी मे छोटे-छोटे पुष्पो की मालाएँ गूँथी गयी थी, किन्ही-किन्ही के जूडो मे स्थान-स्थान पर फूल खुरसे हुये थे। वेग स चलने के कारण उनकी चोटियो मे से पुष्प गिर रहे थे, मानो देव-गण आकाश से पुष्प बरसाकर गोपाङ्गनाओ के पथ को पुष्पमय बनाने का प्रयास कर रहे हो। उनके कानो के कमनीय कनक कुडल हिल-हिलकर अव्यक्त शब्द कर रह थे, मानो गोपियो को शीघ्र चलने को उत्साहित कर रहे हो। उनके कोमल कपोलो का स्पर्श करके सकेत कर रहे हों। कुण्डल हिल-हिलकर आगे बढ जाते, मानो कह रहे हो, कि हमे कान से पृथक् कर दो, तो हम छिन में दौरकर श्रीकृष्ण क दर्शन कर लें। यद्यपि उन्होंने अपने पीन पयोधरो को

कंचुकियों से कस रखा था, फिर भी वे हिल - हिलकर श्रेष्ठ के अङ्ग स्पर्श के लिये व्यग्रता प्रकट कर रहे थे। हार हिल-हिल कर उनको निषेध कर रहे थे, किन्तु वे उनका शासन मानने को तैयार नही थे. वे उन्हे धक्का देकर दूर हटा देते थे, किन्तु जैसे नायक क्रोधित हुई मानिनी नायिका के पाद-प्रहार को सहकर भी उसकी ही ओर दौड़ता है, उसी प्रकार ढकेले जाने पर भी हार पुनः पुनः उन्ही का स्पर्श करते। इस प्रकार उन दोनो का सम्पूर्ण पथ मे सघर्षण होता आ रहा था। करो के जड़ाऊ कङ्कण चूडियो की झनकार मे अपना सहयोग प्रकट कर रहे थे। जिस प्रकार टिड्डीदल एक साथ उडता है, उसी प्रकार वे सब व्रजाङ्गनाएँ मानो उड रही हो। नन्द-भवन की ओर उसी प्रकार तीव्र गति से जा रही थी, जिस प्रकार वर्षा काल की सरिताएँ समुद्र की ओर वेग से जाती हैं। वे गाती, बजाती, हंसती, खेलती किलोलें करती और एक दूसरी को ठेलती हुई जा रही थी। उनके अङ्ग प्रयत्ङ्ग फड़क रहे थे हृदय मे एक प्रकार की विचित्र मीठी-मीठी उत्सुकता उत्पन्न हो रही थी। वे अपने इष्ट की ओर अभिसार तो कर रही थी किन्तु यह अभिसार गुप्त न होकर प्रकट था, इसमे छिपाव नही, दुराव नहीं, संकोच नही, छल नही कपट नही, इर्ष्या नही, डाह नही। यह सम्मिलित गमन था।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! झुण्ड की झुण्ड लाल, पीली, हरी, नीली, वेंजयन्ती तथा पचरङ्गी चूनरियो को ओढे गोपियो को अपने घर की ओर आते देखकर नन्दजी का हृदय बांसो उछलने लगा। उनकी आंखो मे प्रेम के अश्रु छल छलाने लगे। वे सोचने लगे—"धन्य मेरा भाग्य जो आज सभी गाँवो की गोपिकाएं मेरे लाला को आशीर्वाद देने [illegible] रही हैं [illegible]
कहाँ थे, जो मै लाला का मुंह [illegible] नहीं [illegible]

लग गया है। ये सब कब से आशा लगाये बैठी थी। आज सभी अपनी निधि को देखने आ रही हैं। इस प्रकार सोचकर वे मारे हर्ष के अङ्गों मे नहीं समाते थे। बार-बार रोहिणी जी के पास जाते थे और कहते थे —"भाभी! देखना, किसी के आदर सत्कार मे कोई कमी न हो। जिसका जैसा सत्कार होना चाहिये, उससे सौगुना करो। नारायण की कृपा से तुम्हारे घर मे किसी वस्तु की कमी तो है ही नहीं।'

रोहिणीजी कहतीं—'लाला! तुम चिन्ता मत करो। मुझे सबका ध्यान है, फिर सुनन्दा बीबी भी हैं। बड़ी बीबी और हम सब ही तो है।" इस प्रकार आगत गोपियों को देखकर गोप हट जाते और वे भीतर महलों मे बिना रोक टोक के उसी प्रकार भीड मे विलीन हो जातीं, जिस प्रकार नदियाँ समुद्र मे जाकर विलीन हो जाती हैं।

छप्पय

ब्रजरजमहँ पदकमल परहिँ पृथिवी हरपावें।
जा रजकूँ अज शम्भु चहें परि ते नहिँ पावें॥
प्रकटे ब्रजमहँ नन्द लला हम सबके भरता।
मिलन चलीं जिमि जाहिँ उदधितें मिलिवे सरिता॥
यह अभिसार विचित्र अति, जामें नहि ईर्ष्या कपट।
छोड़ि सौतिया डाह सब, जाहिँ हँसति खेलति प्रकट॥

नंद-भवन में गोपियों का आनन्दोल्लास

[८४६]

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥*
(श्री भाग० १० स्क० ५ अ० १२ श्लोक)

छप्पय

यों सब मिलिकें नन्द भवनमहँ पहुँची बाला।
जहँ गुल गुल-से परे मुनमुना जसुमति लाला॥
बाँधे मुट्ठी नयन मूँदि कछु ध्यान लगावत।
चरननि रहे हिलाय मनहूँ जग-सार बतावत॥
बोलीं बुढ़ियाँ वत्स ! तुम, चिरजीवो सुखतें रहो।
वेगि बढ़ो बेटा ! बिहँसि, जसुमतितें मैयो कहो॥

वृद्धा को आशीर्वाद देने का जन्मसिद्धि अधिकार है। किसी के भी छोटे बच्चे बच्चो हों, बूढे नर नारी उन्हें निःसकोच बेटा-बेटी कहेंगे। लडके भी बूढे बुढियो को देखकर बाबा, दादो, माताजी कहन लगत हैं। वृद्धो को इस ब त का अभिमान रहता है, कि हम बड़े हैं, बच्चे हमारे लाल्य है। कोई लडका कुछ बढ-बढकर बातें

---

* श्री शुकदेवजी कहते है—"राजन्! नन्दभवन म पहुँचकर गोपिकायें नन्दलाल को आशीर्वाद देती हुई कहने लगी—"बालक चिरञ्जीवी हो" फिर गोपो पर रिसी हल्दी मे जल और तैल मिलाकर उनके ऊपर फेंकती और उच्च स्वर से गीत गाती।"

करता है, तो बूढ़े लोग कहते हैं—"अरे भैया। हमने तुझे गोद मे लेकर खिलाया है, हमारे सामने तू नङ्गा घूमता था।" बूढ़े के लिये लडके कितने भी बढ जायँ, कितने भी उन्नत हो जायँ, वे बच्चे ही हैं। उसी पुरान नाम से पुकारेंगे, और की तो बात ही क्या भगवान् भी यदि बच्चा बनकर बूढ़ों के बीच मे आ जायँ तो वे उन्हे भी आशीर्वाद देंगे, और चञ्चलता करने पर चपत भी लगा देंगे। वह तो उनका जन्मजात अधिकार है कोई भी क्यो न हो अपना अधिकार सरलता से नही छोड सकता।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो। नन्दभवन मे आज आनन्द का सागर उमड रहा है किसी को कुछ पता नही हम कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, सभी एक अपूर्व आनन्द सुधासागर मे निमग्न है। नद-जी के छोटे बडे भाइयों की बहुओं को आज न खाने की स्मृति है न पीने की। व्रज की जो स्त्रियाँ आती हैं, उन्हे दौडकर आसन देती हैं। पान, बीरी, इलायची, लौंग आदि से उनका स्वागत सत्कार करती हैं। उनसे मीठी मीठी बातें करती हैं। लालजी को दिखाती हैं। गोपिकाएँ आकर लालजी की आरती उतारती हैं भेंट की साम-ग्रियाँ रखती हैं। सबसे पहिला टीका उपनदजी की पत्नी लालजी की बडी ताई के घर से आया। लालजी को सर्व प्रथम वही ताई की लायी रोली झंगुली पहिराई गयी। यशोदा मया एक तो मोटी थी, दूसरे उन्होने प्रसव किया था, तीसरे, आनन्द मे विभोर बनी हुई थी, लालजी के श्रीअङ्गको देखते ही उनके नेत्रो से स्नेह का नीर बहने लगता, अत वे शैया पर सुख-पूर्वक पडी थी। बडी-बडी बूढी गोपियाँ आती तो नदरानी हाथ जोड देती और रो पडती। कोई आकर कहती—'यशोदा बधाई है। तैने लाला क्या जाया है, जगत् का उजियाला है। बस इतना सुनते ही उनका कंठ रुद्ध हो जाता, नेत्रों से टप-टप करके आँसू बहने लगते, शरीर

में रोमाञ्च हो जाते और सतृष्ण नेत्रों से इधर-उधर निहारने लगती। कुछ धैर्य धारण करके कहती—"मेरा काहे का है, आप सबका है। आप सबके आशीर्वाद से यह जी जाय बडा हो जाय।"

बुढियाँ कहती—"अजी, नंदरानी लाला को लाखा वष की आयु हो सदा हमारी राजा बनकर रक्षा करता रहे। ब्याह हो जाय, बहू आवे, बेटा होयँ। अब तो नारायण ने कृपा की है। हमारी रानी की गोद भरी है। यह कहकर गोपियाँ लालजी की बलैया लेती, टोका चढाती, आरती करके उन पर राई नौन उतारती।"

लालजी सुनन्दा बूआ की गोदी मे थे। दाई ने देखा, यहाँ अधिकार तो मेरा है यह बीबी ! मानती ही नहीं, अतः बोली—"सुनन्दा बीबी ! लालजी को मुझे दे दो, तुम तनिक देख भाल करो देखो, महरान से चाव आयो है।"

सुनन्दा ने कहा—' तू क्या करेगी।"

गरजकर बुढिया बोली—"मैं करूंगी अपनी आमदनी ! यही तो मेरी दान दक्षिणा का समय है।"

हँसकर सुनन्दा बूआ बोली—'ले, तू सोने का सुमेरु बनवा-लेना बुढिया का पेट ही नही भरता डोकरे से कह देना वह भी अब लोठरा हो जाय।"

यह कहकर लालजी को दाई को देकर सुनन्दा बूआ वहाँ से बाहर चली गयी और गोपियो का आगत स्वागत करने लगी। दाई ने एक अत्यन्त महीन पोला रेशमी वस्त्र लालजी के श्रीमुख के ऊपर डाल रखा था, कि लालजी के मुख पर मक्खियाँ न बैठने पावें, इसलिय वस्त्र डाल दिया है, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य यह था, कि लाला को नजर न लग जाय। जिसे दर्शन कराने हो,

पहिले अपनी गहरी दक्षिणा रखा लूं, नेग जोग ले लूं, तब दर्शन कराऊँ।"

जो भी गोपियाँ आती वे ही कहती—'दाई दादी! तनिक लालजी का कमल मुख तो दिखा दो। तुमने तो नई बहू को तरह उसका मुख हो ढक रखा है?'

दाई कहती—"अरी, मुख ऐसे ही दिखाया जाता है। लालजी के लिये तो कुर्ता, टोपी, कठुला, कौंधनी सब कुछ ले आयी, मेरे लिये कुछ भी नही लायी।"

गोपी बल देकर कहती—'लायी कैसे नही, दाई दादी! तेरे लिये तो हम तीहर लायी है, तुझे बुढिया से बहू बनाना है।"

यह सुनकर बुढिया खीजकर कहती—'जो आती हैं, वही मुझे बुढिया बुढिया कहकर खिजाती है, बनाने की बात कहकर चिढाती हैं। मै कभी बनी नही क्या? ये ही नई बहू बनी है, इन्ही पर नया यौवन आया है। मानो हमारी कभी ऐसी अवस्था हुई हो नही। ये बाल मैंने धूप मे पका लिये है? कभी मेरे भी काले बाल थे। मेरा मन नही चलता, तीहर पहिनने, हार पहिनने को। हमे जो बुढिया बतावे, वे स्वय बुढिया, उनकी माँ बुढिया, दादी बुढिया, नानी बुढिया।"

इस पर कोई कहती—'अरी, दादी, बुढिया काहे को है, तू तो युवतियो के भी कान काटती है। नई तीहर पहिनकर तो तुझ पर नया यौवन आ जायगा। आजकल तरी ही पाँचो अगुली घी मे है। तेरी ही दुकान तो चेत रही है। लाला के पीछे चाहे जितना धन कमा ले।"

बुढिया कहती—कितने दिनो से तो मेरी आशा लग रही थी। अब मै किसी की सोभरि का काम करने थोडे ही जाऊंगी।'

इस पर कोई कहती—"अब तो तेरी सब कामो से मुक्ति हो

जायगी। पान चवाती रहना और उसके रस को निगलती रहना। जब लाला तेरी गोद मे आ गया, तब तुझे किस वस्तु की कमी है।"

इस प्रकार सब दाई को खरी, खोटो, टेढो, उलटी सीधी व्यङ्ग की बाते सुनाती, वह सबकी सुनकर कुछ न कुछ उत्तर देती और

जो निछावर दक्षिणा मिलती उसे चुपके मे पोछे रख लेती। उसके समीप वस्तुओं का ढेर लग गया। इतने टीके के थाल आये, कि सुनन्दा बूआ लालजी को ताई चाची सभी थक गयो।

इतने में ही बाहर अथाई पर महराने के गोप आ गये। सब ने कहा—"हम तो लाला को देखेंगे।"

नन्द जी ने कहा—"भैया, भीतर तो लुगाइयाँ ही लुगाइयाँ भर रहीं हैं। वहाँ कैसे जाना हो सकता है?"

वे गोप बोले—"लुगाइयाँ रही आवें, वे क्या हमारे सिर पर चढ़े गो। लाला को लुगाइयो ने ही मोल ले लिया है क्या? वे देख सकती हैं, तो हम नहीं देख सकते।"

नन्द जी बोले—"हाँ, भैया! तुम्हारी तो चूल्हे मे जड़ हैं। तुम्हारे लिये अथाई चौपाल से बढ़कर तो घर है। अच्छा चलो। यह कह कर वे गोपो के साथ चल दिये। लाल जी के दर्शनो की लालसा किस अभागे के हृदय मे न होगी, अतः और भी गोप पीछे लग लिये। नन्द जी मना कैसे करें। खाँसते मठारते भीतर चले, किन्तु आज उनके खाँसने मठारने को कौन सुनता है। नगाड़खाने मे तूती की ध्वनि कहाँ सुनाई देती है? जैसे-तैसे वे महराने वाले गोपो को आगे करके आँगन मे पहुँचे। महराने वालो को ता किसी का सकोच है ही नही, उनकी कोई बहिन है, न कोई बूआ है। हमारे यहाँ की जो सुनन्दा आदि बूआ है, उनसे उनका हँसी विनोद का सम्बन्ध है, अतः वे बिना रोक-टोक भीतर घुस गये। नन्द जी को देख कर बहुएँ चिको मे छिप गयी! महराने वाले तन्मय हुए लाल जी की छबि को देख रहे थे। इतने मे ही एक हँसमुख बुढ़िया-सी बोली—"छोरियो! ये नौसाल वाले आये हैं ऐसे ही सूखे ही चले जायंगे क्या?"

बस,! फिर क्या था। हल्दी, चूना, तेल, नारियल का जल तो भरा हुआ रखा ही था, लड़कियो ने महराने वालो के ऊपर डाला, बहुओ ने नन्दबाबा तथा दूसरे गोपो के ऊपर डाला। अब तो नन्द जी को उमङ्ग-चढ़ आयी। उन्होने भी बस पर फेंटा …

पिचकारी निकाली। रङ्ग कुण्डा मे भरा ही हुआ था, वे मारने लगे तक तक कर पिचकारी, स्त्रियाँ आपे से बाहर हो रही थीं। दाई ने सूतिका गृह की किवाड बन्द कर दी थी, फिर भी लालजी पर कुछ छोटे पड ही गये जंगले मे से नंदरानी निहार रही थी और मन ही मन सिहा रही थी बार बार इच्छा होती मैं भी इस महोत्सव मे सम्मिलित हो जाऊँ, किंतु वे तो उठ नही सकती थी बडी देर तक स्त्रियाँ पुरुषो पर रङ्ग डालती रही, पुरुष भी उनके वस्त्रो को रङ्ग मे सराबोर करने लगे, तदनन्तर सभी गोप निकल कर बाहर आये। बाहर सहस्रो लक्षो गोप हाथ मे दही, दूध तथा अन्यान्य गोपो को रङ्ग मे सराबोर देख कर उन सबके मन मे भी सरसता की उमंगे उठने लगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कृष्णरङ्ग मे रँगी गोपियाँ मुक्त कण्ठ से सरसतापूर्ण गीतो को गाने लगी। आँगन मे तो रङ्ग की कीच हो रही थी, और वायुमण्डल मे उनके सरसतापूर्ण गीतो से रस की कीच व्याप्त हो रही थी। उस समय व्रज मे मूर्तिमान सरसता, साकार उल्लास और प्रत्यक्ष आह्लाद दिखाई देता था। यह तो गोपियो के आनन्द के सम्बन्ध मे कहा। अब गोपो ने मिलकर श्री कृष्णजन्मोत्सव के उपलक्ष मे जैसे दधिकाँदो किया। उसका वर्णन मे आगे करूँगा, उसे भी आप सब सावधान होकर श्रवण करे।"

छप्पय

महरानेतैं गोप लालकूँ देखन आये।
भीतर आदर सहित नन्दबाबा जब लाये॥
गोपिनि तुरतहिं अधिक तेल में हरदी घोरी।
छिरकैं रसमहँ पगी मची आदोंमहँ होरी॥
लै पिचकारी गोपहू, फेंट बाँधि ठाढ़े भये।
रँग रस बरसे सबई, सब रस रँगमहँ रँगि गये॥

दधिकाँदों

[८५०]

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥
गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० १३, १४ श्लोक)

छप्पय

भेरी, तुरही, चंग, मजीरा मधुर मधुर स्वर।
ढोल, खोल, करताल, बजैं वशी वीना वर॥
कृष्ण जन्म की मची धूम जड़ चेतन हरषें।
कल्पवृक्ष के सुमन गगन फुलझरियाँ वरषें॥
व्रजमंडल के गोप गन, सब मिलि दधिकाँदौं करें।
दूध, दही, घृत उलचि घट, खाली करि पुनि-पुनि भरें॥

उत्सव मे एक के उत्साह को देखकर दूसरे को उत्साह आता है। एक को प्रसन्न होते देखकर दूसरे प्रसन्न होते हैं। परस्पर में सब एक ही रग मे रँग जायं, एक ही भाव मे भावित हो जायँ,

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! विश्वेश्वर अनन्त श्रीकृष्ण के व्रज मे आने पर उनके जन्म महोत्सव मे विचित्र बाजे बजने लगे। गोपगण हृष्ट मन से परस्पर म एक दूसरे पर दूध, दही तथा जल उलीचने लगे। मक्खन को एक दूसरे पर फेंककर उनके वदनो पर मलन लगे।"

तभी उत्सव की श्रीवृद्धि होती है तभी उसमे आनन्द आता है। कुछ का भाव और हो, कुछ दूसरा ही राग अलापें, तो उसमे पूर्ण रस नही आता। सभी अपनी प्रसन्नता को निर्मुक्त भाव से प्रकट करें सभी हृदय खोलकर खेलें, कृपणता का परित्याग करके उदारता के साथ आनन्दोल्लास मनावें, तभी उत्सव पूरा होता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! नन्दजी जब भीतर अन्तः-पुर से रग मे रगे हुए आये तथा अन्य गोप भी उसी प्रकार थे तो गोपो ने कहा— अरे, भाई! भीतर स्त्रियाँ तो बडा उत्सव मना रही हैं, हम सब इस प्रकार गुम्म-सुम्म क्यो बैठे हैं, हमे भी कुछ करना चाहिये।" यही सब सोचकर कुछ लडको ने जाकर नन्द बाबा को पकड लिया और कहा—"बाबा! हम तो तुम्हे नचावेगे।"

भीतर ही भीतर प्रसन्नता प्रकट करते हुए नन्दजी ने कहा—'अरे, बेटाओ! तुम नाचो। मैं बूढा हो गया, मैं क्या नाचूँगा।" यह सुनकर कोई नन्दजी की ही अवस्था के गोप कहते—"बूढो के कही बच्चे होते है, जिसके बच्चा हो, वह बूढा काहे का? हाँ भैया नचाओ-नचाओ।"

अब क्या था, अब तो लडको ने नन्दजी को पकड़ लिया। नन्दजी के भीतर तो उत्साह भर ही रहा था, उन पर तो मानो नया योवन ही आ गया हो। उन्होने कसकर फेंटा बांधा और नाचने लगे। उनके पीछे और भी गोप नाचने लगे। बाजे बजाने-वाले ताल स्वर से बाजे बजाने लगे। लडके उछलकर नाचते हुए गाने लगे—

नन्द के आनन्द भयो, जय कन्हैयालाल की।
हाथी दीन्हे घोडा दीन्हे और दीन्ही पालकी॥ नन्द...

रत्न दीन्हे हार दीन्हे गऊ ब्याही हालकी।
कठा दीये कठुला दीये दीन्ही मुक्तामालकी ॥ नन्द •
कडे दीये छडे दीय विन्दी दीन्ही भालकी।
सुरमा दान्हा दर्पण दीन्हो दीन्ही कंघी बालकी ॥ नन्द •
बोलो जय बोलो जय जय बोलो गोपालकी।
रोहिणीनदन बल जय-जय दाऊ ग्वालकी ॥ नन्द—

सबको नाचत देखकर बूढे बूढे गोप भी नाचने लगे। कोई किसी का हाथ पकडकर नाचता कोई किसी के कधे पर हाथ रख कर नाचता, बहुत से गलबैंयां डालकर नाचते। बडी देर तक यह नृत्य होता रहा। अत मे किसी ने एक हडी दूध लाकर नद जी के सिर पर उडेल दिया। मानो "दूधनि न्हाय पूतनि फलौ" यह कहावत चरितार्थ करदी। नन्दजी को दूध मे भीगा देखकर सब हसने लगे। तब तक किसी ने लाकर दूसरे पर दूध उडेल दिया। अब तो नाच वद हो गया, यही दधिकाँदो की लीला चल पडी। दूसरा आया उसने नन्दजी के मुखपर दही लेप दिया। दही मे सनी उनकी दाढी मूँछे विचित्र दिखाई देने लगी। अब तो सभी के मुख दही से लेपे गये। वह झपटकर उसके मुख को पोत देता, वह उसके सिर से उडेल देता। किसी ने लाकर गरम किया हुआ घी ही अन्य गोपो पर उडेल दिया। अब तो गोप घरो मे घुस जाते। जो भी हाथ लगता उसे ही उठा लाते। अब अपने पराये का भेदभाव नही रहा। ये तो लघु चित्त वाले पुरुषो के विचार हैं जहाँ विश्वम्भर जगत् के एक मात्र स्वामी का जन्म हो, वहाँ भेदभाव कैसे रह सकता है। गोप घरो से जिन हडियो मे मक्खन के लौदे रखे हैं उन्हे उठा लाते और इस प्रकार तक कर मुख पर मारते, कि दातो मे मक्खन चिपक जाय। जब वे लोग

जीभ से दाँतों के मक्खन को छुड़ाते, तो सब हँस पड़ते। बूढ़े बूढ़े गोपों के पोपले मुखों में सीधे नवनीत के गोले चले जाते। उनका कंठ रुद्ध हो जाता वे बार-बार अपने पोपले मुख को चलाते और माखन के लौंदे को निगल जाते, इस पर बड़ी हँसी होती। कोई पूरे लौंदे को मुख पर ही पोत देता, जिससे आँखे भौंहें दाढ़ी मूँछ सभी शुभ्र रंग के हो जाते सभी देखकर ताली पीटते, हँसते और उनका हाथ पकड़ कर इधर से उधर घुमाते। इस प्रकार वहाँ दधिकार्दों नवनीतकार्दों तथा गोरसकार्दों मच गयी छोटे-छोटे बच्चे दूध दही की हँडियों को ही एक दूसरे को गले में पहिनाने लगे। परस्पर में एक दूसरे के देखकर हँसने लगे।

फिर बूढ़ों में से एक बूढ़े ने कहा—"भाई, ऐसे नहीं, सब बूढ़े-बूढ़े एक ओर हो जाओ, युवक-युवक एक ओर और बच्चे सब एक ओर देखें कौन अच्छा नाचता है, कौन सुंदर गाता है।"

फिर क्या था, सभी को एक नवीन उत्साह आ गया। सबके पृथक्-पृथक् यूथ बन गये। लड़कों ने बड़े-बड़े विचित्र स्वाँग बना लिये। किसी ने काला मुख करके उस पर लाल पीली बिंदकियाँ लगा ली। किसी ने बड़ी सफेद दाढ़ी लगाली। किसी ने अपने पेट में बहुत से वस्त्र बाँधकर बड़ी तोंद बनाली और उस तोंद को हिलाते हुए लाठी के सहारे चलने लगे। बहुत से नट बनकर कलाएँ दिखाने लगे। बहुत से बंदर बन गये कोई मदारी बन गया, इस प्रकार बन्दरों को नचाने लगे। कोई काला कंबल ओढ़ कर शरीर पर काले बाल चिपका कर रीछ बन गया और हू हू करके सबकी ओर दौड़ने लगा। एक रीछ नचाने वाला बन गया। वह पूछता—"कहो रीछ बाबू ससुराल कैसे जाओगे?" तो वह अपने कंधे पर लाठी रखकर मचल-मचल कर चलने का अभिनय करता। फिर पूछता—कहो रीछ बाबू! बहू को कैसे

मनाओगे ? चरखा कैसे कातोगे ? ससुराल मे कैसे बैठोगे ? इन सब बातो को रीछ बने गोप इस ढग से दिखाते, कि अन्य सब गोप हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। फिर युवक गाते नाचते विविध प्रकार बाजो को बजाकर उनकी कलाओ को प्रदर्शित करते।

सूतजी कहते हैं—' मुनियो ! उस समय गोपो के रोम–रोम से आनन्द और उल्लास के स्रोत बह रहे थे। सभी आत्मविस्मृत से बने प्रेम मे उन्मत्त से हो रहे थे। उस समय विविध प्रकार की चेष्टाएं दिखाकर वे हँस रहे थे, हँसा रहे थे, गा रहे थे, दूसरो से गवा रहे थे, नाच रहे थे औरो को नचा रहे थे। सब एक मन एक प्राण होकर श्रीकृष्ण जन्मरूप आनन्द सुधा का समान रूप से पान कर रहे थे। उस समय वे जगत् के सभी व्यवहारो को भूले हुए थे।"

छप्पय

मुखमहँ मक्खन मारि गोप कोई भगि जावें।
कोई चुपके आइ दही मुख में लपटावें॥
कोई दूध उड़ेलि हरपमहँ नाचैं गावें।
कोई पटकें पकरि पिछौरा पाग भिगावें॥
यों खेलत लोटत हंसत, नाचत गावत गोप सब।
घड़ी काल की सुधि न कछु, उदित भये रवि अस्त कब॥

प्रभुप्रीत्यर्थ महोत्सव

[८५१]

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥*

(श्री० भा० १० स्क० ५ अ० १५, १६ श्लो०)

छप्पय

प्रेम पुलकि व्रजराज आज सर्वस्व लुटावें।
जो माँगे जो वस्तु ताहि सो तुरत दिवावें॥
राय, भाट अरु कथक सूत सब पढ़िवेवारे।
नर्तक, नट अरु भाँड़ विविध विधि बाजेवारे॥
देत सिहावत अति मुदित, पुनि पुनि देवें पुनि कहें।
और लेउ सकोच नहिँ, बिनु लीये कोउ न रहें॥

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! महमना न दजी गोपों को वस्त्र, अलङ्कार तथा गौओं को दते तथा सूत, मागध बन्दी और दूसरे भी विद्योपजीवी जो वहाँ आये थे सबको उनकी इच्छित वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट करते। यह सब इतना दान आदि उन्होंने भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये तथा अपने पुत्र के अभ्युदय के निमित्त किया।"

जो जिस भाव मे भवित हो जाता है उसमे उसकी लालसा अधिकाधिक बढती ही जाती है। जैसे विषयी पुरुष विषयो का सेवन करते-करते तृप्त नही होते, वैसे ही भगवद् भक्त भगवान् के चरित्रो को सुनते-सुनते उनकी रूप माधुरी का पान करते-करते कभी तृप्त नही होते। प्रगतिशील प्राणी का स्वभाव है, वह उत्तरोत्तर बढता ही जाता है। हृदय मे एक दुर्गुण आ जाय, तो वह शनैः शनैः और दुर्गुणो को आमन्त्रित करता रहेगा। जब मनुष्यो को अपना एक दुर्गुण दिखाई दे जाय, और उसे मिटाने का प्रयत्न करे, तो फिर एक के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा इस प्रकार अवगुण ही अवगुण दीखने लगते है, अन्त मे वह चिल्ला उठता है ' मोसम कौन कुटिल खल कामी।" जिन्हे देने का व्यसन हो जाता हैं, उनको दान देते-देते तृप्ति नही होती। जितना मिले उतना ही वे देने को लालायित बने रहते हैं। जिसकी तृप्ति हो गयी, उसकी प्रगति रुक गयी। नही तो चाहे सद्गुण हो अथवा दुर्गुण इहलौकिक भोग हो या पारलौकिक उनमे तृप्ति नही तुष्टि नही सन्तोष नही 'अलम्' नही जो भी आगे आ जाय वही स्वाहा है, पुन आगे बढो। बढने की कोई सीमा नही, अन्त नही पार नही। अनन्त, असीम और अपार पथ है। जो गया सो गया "जो आवत इहि ढिंग बहुरि, जात नही रसखानि" तृप्त ही हो जाय तो रस ही समाप्त हो जाय। अतृप्ति ही तो रसोत्पादिनी है।

सूतजी कहते—' मुनियो ! आप आश्चर्य न करें, कि नन्द के घर छोरा उत्पन्न होने पर इतना अपूर्व उत्साह सबके हृदय मे एक साथ जाग्रत कैसे हो गया। स्त्री पुरुष सभी एक दूसरे से नाचने गाने और आनन्द मनाने मे परस्पर इतनी प्रतिस्पर्धा क्यो करने लगे। बात यह है प्रतिक्षा ही आनन्दोत्साह की अधि-

कता में मुख्य कारण है। इष्ट वस्तु की जितनी ही अधिक प्रतीक्षा होगी, उतनी ही अधिक उत्सुकता बढेगी जितनी अधिक उत्सुकता के अनन्तर, उसकी प्राप्ति होगी, उतनी ही अधिक प्रसन्नता होगी। ये गोप-गण अधिकांश मे देवगण हैं, गोपाङ्गनाएँ अधिकांश में देवाङ्गनाएँ है। असुरों के क्लेशों से क्लेशित देवगण चिरकाल से प्रभु के प्राकट्य की प्रतीक्षा कर रहे थे। देव-गण तो सौन्दर्योपासक तथा ललित कला प्रिय होते ही हैं। यद्यपि यहां सब वेप बदले हुए हैं, फिर भी उत्सव प्रिय प्रकृति थोड़े ही बदल सकती है। भगवान् तो सबकी आत्मा हैं जीव मात्र के वे ही एक मात्र इष्ट हैं। वे किसी एक के अपने नही पराये नही। वे तो सबसे समान रूप से सम्बन्धित हैं। सबके सुहृद हैं, प्रेष्ठ हैं। उनकी प्राप्ति पर सबको समान रूप से सुख होना स्वाभाविक ही है। सभी बूढी-बूढ़ी गोपियों के स्तनो मे दूध आ गया। सभी चाहती थी, हम ही इन्हे छाती से चिपटाकर दूध पिला दें। सभी को ऐसा प्रतीत होता था, मानों हमारे ही लाला हुआ है। सबकी दृष्टि समान रूप से लाला के अनिर्वचनीय अद्भुत अनुपम आनन पर लगी हुई थी, सभी उस घनीभूत मूर्तिमान् रूप सुधाराशि के दर्शनों से अघाती नही थी। मोद मे भरी गोपिकायें गा रही थी, नाच रही थीं। वृषभानुजी की पत्नी रानी कीर्तिदेवी भी आयी। सबने उनका अत्यधिक आदर सत्कार किया। उनकी गोद मे भी एक गोरी-गोरी छोरी थी। सब गोपिकाओं ने कहा—"रानी! तुम भी नाचो।"

कीर्तिरानी बोली—"अब मैं क्या नाचूँगी। तुमही नाच लो।"

सुनन्दा बूआ बोली—"नही रानीजी! आज तो नाचने का नेग होता है, कोई बात नही चार पैर फिरा दो, सबका मन भी रह जायगा नेग भी हो जायगा। लाओ लल्ली को मुझे देदो।"

अब कीर्तिरानी क्या करती। सचमुच आज नाचने का नेग ही होता है। जब मेरे छोरी हुई थी तब नन्दरानी कितनी देर जाकर मेरे आँगन में नाचीं थी। वे तो मुझसे बडी ही हैं। मै तो उनसे सब प्रकार से छोटो ही हूँ। उनके यहाँ तो मुझे नाचना ही चाहिए।"

यही सब सोचकर उन्होने अपनी भोरी-सी छोरी को सुनन्दा बीबी की गोदी मे दे दिया। और स्वय नाचने लगीं। रावल की गोपिकाएँ ढोलक मजीरा आदि बाजे बजाने लगी। कीर्ति रानी झुक-झुककर कमर को लचा-लचाकर नाचने लगी। सभी प्रेम मे विभोर हो गयी। रानी के ऐसे अपूर्व नृत्य को देखकर सब चकित-चकित दृष्टि से स्नेह और संभ्रम के साथ उनकी ओर निहारने लगी। इधर किसी काम से दाई ने सुनन्दा बूआ को पुकारा। तुरंत कीर्तिरानी को लल्ली को लिये हुए ही सोहरि के घर में गयी। लालजो दाई की गोदी मे नेत्र बद किये पड़े थे। सहसा बुआ के पैरों की छम्म-छम्म सुनकर उन्होने अपन नेत्र खोल दिये। मानों दो मुकलित कमल खिल गये हो। जैसा कि बालको का स्वभाव होता है, छोटे बालक को देखकर बडा बालक उसे पकड़ने का प्रयत्न करता है। बूआ की गोद मे से कीर्तिकुमारी खिसक्ने लगी। वे बार-बार बालक की ओर भोरी चितवन से निहारने लगी। बूआ ने समझा लाली को भूख लग रही है। चलूँ इसे माँ के हो पास ले चलूँ। यह सोचकर लाली को पुनः सम्हाल कर वे बाहर आयीं। अभी तक कीर्तिरानो नाच हो रहीं थीं। सुनन्दा ने हँसकर कहा—"रानी अब बहुत हो गया, थक जाओगे, लाली रोती है अब वह मेरी गोद में रहना नहीं चाहती। अब इसे दूध पिलाओ, यह भूखी है।"

यह सुनकर कीर्तिरानी ने नाच बद किया। उनका सम्पूर्ण

शरीर पसीने से भीग रहा था। वूमा ने अपने अंचल से उनके मुख का पसीना पोंछा और कहा—"हाय! रानी कबसे नाच रही हो।" लाली अब वूमा की गोद में किसी प्रकार रहती ही नहीं थी, रोती थी और पीछे की ओर देखती थी। तुरंत माता ने गोद में लेकर उन्हे दूध पिलाया।

इस प्रकार भीतर निरंतर गोपियाँ नाच रही थीं, बाहर गोप नाच रहे थे। नचकैया के जन्म होते ही सब पर अपने आप नाचना आ गया था। सबको नचाने वाला नटराज ही जो ठहरा। नट-नटी, सूत, मागध, वन्दी तथा और भी गाने वजाने तथा कला क्रीडा दिखाने वाले आ आकर अपने-अपने कला कौशल दिखाने लगे। नन्द सबको उदारता पूर्वक धन, अन्न, वस्त्र, आभूषण, गौ, घोड़े हाथी तथा और भी वे जो वस्तु, माँगते वही देते। नन्द जी बड़े उदार चित्त के थे; फिर पुत्र पैदा होने से तो उनकी उदारता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। आज तो वे दोनो हाथो से लुटा रहे थे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! नन्दजी इतना द्रव्य इसीलिए लुटा रहे होगें, सर्वत्र मेरी कीर्ति फैले। सब मेरे यश का गान करें।"

हँसकर सूतजी ने कहा—'नहीं, महाराज! ऐसी बात नहीं है। उन्हें यश और कीर्ति से क्या लेना। वे तो जो भी कुछ करते थे, श्रीमन्नारायण की प्रीति के ही लिये करते थे। दान, धर्म, पूजा, अनुष्ठान, देव, पितृ तथा अतिथि-पूजन करते समय वे कहते थे—"मेरे इस कर्म से सर्वान्तर्यामी श्रीविष्णु प्रसन्न हों।" वे विष्णु प्रीत्यर्थ ही सब कार्य करते थे। ये जो भी दान कर रहे थे, तो उपकार की भावना से, यहाँ यश की इच्छा से नहीं कर

रहे थे, अपना कर्तव्य समझकर श्री हरि की आराधना समझकर कर रहे थे।"

शौनक जी ने कहा—"सूतजी ! भगवान् की प्रसन्नता के लिए कर रहे थे, तो वह तो नित्य ही करते थे, आज इतनी विशेषता, ऐसी अधिक उदारता क्यों ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! कर्म दो प्रकार के होते हैं, एक तो नित्य कर्म, दूसरे किसी कामना विशेष से जो किये जाते हैं, वे काम्यकर्म कहाते हैं। नित्य कर्मों को करना तो कर्तव्य ही है। जैसा सन्ध्या वन्दनादि कर्म। नैमित्तकर्म किसी पर्व महोत्सव या विशेष अवसर के निमित्त से किये जाने वाले कर्म, जैसे ग्रहण लगने पर विशेष स्नान दान आदि। नंदजी का यह कर्म नैमित्तक कर्म ही था। इसमें भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के साथ ही साथ अपने पुत्र के अभ्युदय की भी इच्छा निहित थी।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"तब तो सूतजी ! यह सकाम दान हुआ।"

सूतजी बोले—"महाराज ! भगवान् के निमित्त जो भी कुछ किया जाता है, वह सकाम नहीं होता। वे तो श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ ही कार्य कर रहे थे। श्रीकृष्ण का ही तो उत्सव मना रहे थे।

शौनक जी ने कहा—"नन्दजी कुछ भगवान् थोड़े ही मानते थे वे तो पुत्र मान कर उत्सव कर रहे थे।"

सूतजी ने कहा—"नन्द जी चाहे जो समझें भगवान् तो सब समझते हैं। उन्हें कोई पुत्र मान कर पूजता है, तो सगे पुत्र बन जाते है, पति मान कर भजता है, पति बन जाते है। और सखा मान कर भजने वालों के घोड़े बन जाते हैं, उन्हें पीठ पर चढ़ा कर ढोते हैं। इसलिए भगवान् के लिये उत्सव दान, पुत्र, सत्कर्म जान में अनजान में कैसे भी किया जाय उससे उनकी ही प्राप्ति

होती है; अतः नन्दजी के सब कर्म भगवान् की भक्ति के ही निमित्त थे।"

शौनक जी ने कहा—"हाँ, सूतजी! समझ गये अब आगे की कथा कहो।"

सूतजी बोले—"महाराज! क्या बताऊँ नन्दोत्सव के वर्णन करने को तो मेरे सहस्र मुख होते तब कहीं वर्णन करने मे सुविधा होती। मेरा एक तो मुख उसमे भी एक जिह्वा वह भी मानवीय जिह्वा कहते-कहते सूख जाती है, तनिक आचमन कर लूँ, तब आगे की कथा कहूँ।"

छप्पय

नंदराय सब करत धरत बिसरत नहिँ श्रीपति।
अद्भुत सुत तनु निरखि भई चित की चंचल गति॥
दान धर्मतैं होहिँ सुखी सुत सोचत मनमहँ।
तनय अभ्युदय सुमिरि रही आसक्ति न धनमहँ॥
याचक याचक रहे नहिँ, नंद भवनतैं लेत हैं।
पावें जो गो, रतन, धन, पुनि बनि दाता देत हैं॥

नन्दोत्सव का उपसंहार तथा लालजी की छठी

[८५२]

रोहणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।
व्यचरद् दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥
तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥*

(श्री भग० १० स्क० ५ अ० १७, १८ श्लो०)

छप्पय

नन्द-भवनमहँ रहें रोहणी पतितें न्यारी ।
मलिन वसन परिधान न बेनी माँग सम्हारी ॥
किन्तु कृष्णको जन्म सुनत सजि बजिकें विधिवत ।
आज करत सत्कार सबनिको इत उत विहरत ॥
कहें स्वामिनी नारि नर, करि आदर आयसु चहहिँ ।
समाधान सबको करहिँ, मधुर वचन सबतैं कहहिँ ॥

एक भूपति के कुमार होने पर उसके राज्य मे कितनी प्रसन्नता मनाई जाती है, यदि जगत्पति ही स्वयं कुमार बनकर अवतीर्ण

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! महाभाग्यवती रोहणीजी दिव्य वस्त्र माला और कण्ठा आदि आभूषणो से विभूषित होकर तथा

हुआ हो, तो जगत् में कितनी प्रसन्नता मनाई जायगी, इसका अनुमान कौन कर सकता है। इसका अनुमान वह भले ही कर सकेगा, जो जगत् के बाहर हो जगत् मे रहने वाले तो यही कह सकते हैं, बहुत आनन्द हुआ, अत्यन्त आनन्द हुआ, सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी। जो जितना ही उदार मना और सम्पन्न होगा, वह उतना ही बड़ा उत्सव मनावेगा।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! इस श्रीकृष्ण जन्म महोत्सव मे सबसे बड़ी विशेषता यह थी, कि इसमे आज रोहणी जी की शोभा देखने योग्य थी। वे एक प्रकार से प्रोषितभर्तृका है, अपने पति से पृथक् हैं, अतः वे एक वेणी धारण करके घर के भीतर मलिन वसन धारण किये हुए रहती थी। जैसा कि पतिव्रता का धर्म है, पति से पृथक् रहकर नाच गान न करे उत्सवों मे सम्मिलित न हो, शृंगार न करे तथा हँसी विनोद की बातें न करे इत्यादि-इत्यादि। उन सबका वे विधिवत् पालन करती थी। किन्तु आज जब उन्होंने श्रीकृष्ण जन्म की बात सुनी तब से उनके नियम छूट गये। उन्होंने विधिवत् शृंगार किया। नन्दजी के दिये हुए बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों को धारण किया और घर की स्वामिनी की भाँति इधर से उधर छम्म छम्म करके घूम रहीं थी। दास दासी पूछते—"स्वामिनी जी! यह काम कैसे करें?"

नदजी द्वारा सत्कृत होकर विचर रही थी भगवान् के जन्म ग्रहण करते ही उसी दिन से नन्दजी का व्रजमडल सम्पूर्ण सम्पत्तियों से सम्पन्न हो गया। व्रज वैसे ही समृद्धिशाली है, फिर श्रीहरि का भी निवास-स्थान हो गया, इन सभी गुणों के कारण वह लक्ष्मी जी का क्रीडास्थल बन गया।"

तो वे तुरन्त बताती और कहती—"तुमसे यह काम न होगा, अमुक को भेजो।" किसी से कहती—"उसे बुला लाओ, उसके बैठने का प्रबन्ध करो, वहाँ से अमुक वस्तु उठा लाओ। व्रजराज से यह बात तुरन्त कह आओ।" सेवक सेविकाएँ उनकी समस्त आज्ञाओं का तुरन्त पालन करती। उपनन्द जी की पत्नी तथा सुनन्दा आदि सभी घर की स्त्रियाँ बात-बात के लिए पूछती—'अमुक के यहाँ से यह वस्तु आयी है, इसे कहाँ रक्खें। उनके लिये अपन यहाँ से क्या जायगा, उसे क्या दिया जाय।"

रोहणी देवी सबका यथोचित उत्तर देती, सब का समाधान करतीं, सब वस्तुओं को यथा स्थान सम्हाल कर रखती वे तन्मय होकर कार्य मे जुटी हुई थी। इधर रोहणी जी मुक्त हस्त से लुटा रही थी उधर चौपाल पर नन्द जी लुटा रहे थे।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! इस दान दक्षिणा की कहीं सीमा भी है?"

हँस कर सूतजी बोले—'महाराज! जब सच्चिदानन्द घन आनंद कंद श्रीकृष्णचन्द्र ही स्वय उत्पन्न हुए और वे असीम है, तो उनके उत्सव के दान की सीमा कैसे हो सकती है। व्रज तो रमा के क्रीडा का स्थान हो बन गया। इस प्रकार पाँच दिनो तक इसी प्रकार निरन्तर दान और महोत्सव होता रहा।"

इधर गोपियो ने बालक की रक्षा के लिए प्रसूति-गृह मे अनेक कार्य किये। यशोदा मया के भी विविध प्रकार के उपचार किये गये। सूतिका-गृह मे बालक को कोई भूत बाधा या बाल ग्रह पीडा न होने पावे इसके लिए खैर, बेर, पीलू तथा फालसे आदि की शाखाएँ गृह के द्वार पर लटका दी गयी। प्रसूति-गृह मे सफेद सरसो अरसी तथा चावल के दाने बखेरे जाते थे। प्रातः साय चावलो का बलिदान तथा मगल कर्म आदि किये जाते थे।

सुन्दर सुगंधित द्रव्यो की धूप जलायी जाती थी। रक्षा करने वाले अथर्ववेद के मन्त्रो का पाठ ब्राह्मण आकर करते थे, प्रथम द्वार मे लोहे का एक मूसल टेढा करके लटका दिया गया था। वच, कूट, अजवाइन, हीग, सफेद सरसो, अलसी, लहसुन, तथा चावल आदि की पोटलियाँ बना-बना कर उन्हे सुन्दरता के साथ सी कर वन्दनवार की भाँति घर के उत्तर द्वार पर लटकायी गयी थीं। तनिक तनिक मे तावीजो की भाँति रग विरगे वस्त्रो मे ये चीजें भर कर उन्हे विधिवत् सी कर, लालजी के कठ मे भी ये वस्तुएँ पहिनायी गयी थी। माता के हाथ मे भी ये वस्तुएँ बाँधी गयी। जल का भरा घडा माता की शैया के नीचे सदा रखा रहता था। तेंदु की लकडी से सदा अग्नि प्रज्वलित रहती थी। बहुत-सी सुहागिनी स्त्रियाँ सदा उनकी सेवा मे तत्पर रहतीं। मीठी-मीठी प्रसन्नता की बातें सुना-सुना कर उनके मन को प्रसन्न रखती। नित्य मगल कर्म होते। झुण्ड के झुण्ड स्त्री पुरुष निरन्तर बच्चे को आशीर्वाद देने के लिए आते रहते। नित्य गोपिकाएँ सोहरि के गीत गाती बाजे बजते, वेद ध्वनि होती।

दाई यशोदा मैया के भोजनो का बडा ध्यान रखती। बात-बात पर कहती— यह वस्तु उन्हे भोजन को मत दो। उदर पर घी और तेल मिलाकर चुपडती उसे रेशमी सुन्दर कपड़े से बांध देती। जिसमे वायु विकृत न होने पावे। पतली दलिया या खिचडी मे घी मिलाकर उसमे पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक डालकर और सोठ का चूर्ण मिला कर खाने को देती। दूध मे भी पीपल औटवाती। फिर उसने सुनन्दा बूआ से कहा— "बीबी! सुठीपुटपाक के लड्डू बनवा लिये जायं, तो महारानी के लिये बहुत लाभदायक होंगे।

बूआ ने पूछा—"सुठीपुटपाक के लड्डू कैसे बनते हैं?"

दाई ने कहा—एक नर सुन्दर सोंठ का चूर्ण बना लिया जाय। फिर उस चूर्ण के दो भाग करके उन्हें एरंड के पत्तों में रख ले। आधा सेर गेहूँ का आटा ले। उसकी दो रोटी-सी बनावे। उसमें एरंड के पत्ते में बंधा सोंठ को इस प्रकार भर दे जैसे कचौडी में पिट्ठी भरते हैं। उनके आगे से बना ले। उन्हें जंगली गौ के कंडों में भली प्रकार सेंक, सेंकते सेंकते जब वे लाल सुर्ख हो जाय, तब उनमें से सोंठ को एक प्याले में निकाल ले। पुटमें पकने से इस सुंठ को पुटपाक कहते हैं चार बडे हरडों को पावभर घी में भूनकर उनके ऊपर के छिकुल का चूर्ण करके सोंठ में मिला दे, उसमें घी का भी मिला दे पावभर मरोडफली को कूट पीसकर उसे भी सोंठ में डाल दे। ढाई सेर घी तीन सेर बूरा ढाई सेर सूजी भूनकर सबको मिला दे। फिर इसमें किसमिस, गोला, पिस्ता, छुआर बादाम आदि मेवा मिलाकर पाव-पाव या आध-आध पाव के लड्डू बना दे। एक लड्डू नित्य खाना चाहिये। इससे पेट में दर्द हो, आंव हो, वायु हो सब शुद्ध हो जाती है। प्रसूतिका को ऐसे लड्डू खाने चाहिये।"

यह सुनकर सुनन्दा बूआ ने तुरन्त ऐसे लड्डू बनवाये और नन्दरानी को दिये जाने लगे, फिर स्नान के अनन्तर छठी बडी धूम-धाम से की गयी। गोबर के सांतिये द्वार पर रखे गये। कुल के पितर पूजे गये। नाना प्रकार के पकवान् बनाकर षष्ठी माता की पूजा की गयी, जिससे वह बालक के भाग्य में अच्छी-अच्छी बात लिख दे। समस्त परिवार के गोपों को बुलाकर भोजन कराया गया, सबको सिरोपा दिया गया, फूलों की मालाएँ पहिनाई गयी, पान बीडी दी। इस प्रकार बडे ही उत्साह से लालाजी की छठी के पश्चात् अब नन्दरानी उठने बैठने इधर-उधर लाला को गोद में लेकर घर में ही ८६०

वे बालक को पलभर भी अपने से पृथक् करना नहीं चाहती थी। कंगाल के धन की भाँति वे निरन्तर लालजी की रक्षा करती रहती। नंदजी भी बार-बार महलों में लालजी को देखने आते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अब तक तो नन्दजी अपने राजा कंस के कर की उपेक्षा करते रहते थे। कभी भेज दिया, कभी नहीं भेजा। इधर कई वर्ष से उन्होंने वार्षिक कर नहीं भेजा था। अब लालजी हो गये हैं, अतः उन्हें कंस के करकी चिन्ता हुई। कंस दुष्ट है ऐसा न हो वह कुपित होकर कुछ अनर्थ करे, अतः वे अब वार्षिक कर देने की बात सोचने लगे।"

छप्पय

उत्सव व्रजमहँ नये नारि नर नित्य मनावें।
गावत गोपी गीत ग्वाल गोधन सँग आवें॥
दूध दही की बहें नदी घृत कोउ न खाई।
मंदिर मंदिर भरीं मनोहर मनों मिठाई॥
केसरि कीच भरी सकल, गोकुल गाँव गलीनिमहँ।
मणि मुक्ता बिखरे फिरैं, कोउ न पूछे सेंतिमहँ॥

कंस को कर देने नंदजी का मथुरा गमन

[८५३]

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० १९ श्लोक)

छप्पय

भई लाल की छठी राज-कर चिन्ता व्यापी।
सोचें श्रीव्रजराज—कंस नृप अति ई पापी॥
वार्षिक कर नहिं जाइ करे उत्पात न दुरजन।
छकरनिमहँ भरि दूध दही घृत चले गोप-गन॥
गोकुल रक्षाको सकल, करि प्रबन्ध मथुरा गये।
पुण्य पुरी शोभा लखी, गोप परम हरषित भये॥

जब तक किसी एक मे आसक्ति नही होती, तब तक तन्मयता नही होती। किसो भी वस्तु मे किसी भी व्यक्ति मे मन सर्वात्मभाव से फँसता नही तब तक सद् असत् का यथार्थ विवेक होता नही। लोग कहते हैं—"यह दृश्य प्रपञ्च कुछ नही है। असत् है, इसमे से सत् बुद्धि हटा लो। मोह का क्षय कर दो इसमे से

---

* श्री शुकदेवजी कहते है—"हे कुरुकुल-तिलक राजन् ! नन्दजी गोकुल की रक्षा का भार गोपो का सौंपकर कंस का वार्षिक कर चुकाने के लिए मथुराजी गये।"

चित्त को हटालो ससार मिथ्या प्रतीत होने लगेगा। बात तो सत्य है, मन तो किसी मे फँसे बिना रहेगा नही। जब मन किसी मे पूर्ण रूप से फंस जाता है। तो उसके अतिरिक्त सभी वस्तुएँ उसे तुच्छ दिखायी देने लगती हैं। परमार्थ की बात छोड दो, लोक मे भी देखा गया है, जो जिसमे अत्यन्त आसक्त हो जाते हैं, वे घर द्वार, धन, ऐश्वर्य, कुटुम्ब परिवार यहाँ तक कि शरीर को भी तुच्छ समझते है और अपने इष्ट के लिए हँसते हँसते प्राणो का परित्याग कर देते हैं। तभी तो वैष्णवो का सिद्धान्त है भगवान् से कोई सम्बन्ध जोड़ लो, क्योकि बिना सम्बन्ध के आसक्ति होती नही। किसी भी सम्बन्ध से जब भगवान् मे आसक्ति हो जायगी तो, उन्हें ही हम अपना सर्वस्व समझने लगगे, तो चाहे घर मे रहे या वन मे, विरक्त बनके रहे अथवा गृहस्थ बनके। सब दशाओ मे हमारे सब काय उन्हा के निमित्त होगे। चिन्ता भी करगे, ता उन्ही के सम्बन्ध की, कोई वस्तु चाहेगे तो उन्ही के लिये। भगवान् के निमित्त किया हुआ काय बन्धन का हेतु नही।

श्रीसूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजी के कोई सन्तान नही थी, इसलिये वे कस के राज-करकी भी चिन्ता नही करते। जब आदमी फक्कड होता है, उसे उतनी चिन्ता नही होती। सोचता है—"अकेला शरीर है, कही भी हाथ पैर से परिश्रम करके पेट भर लेंगे। जिस गृहस्थ के बाल बच्चा नही वह वास्तव मे गृहस्थ भी नही। लोग स्त्री के सम्बन्ध मे नही पूछते। यही पूछते हैं—"आपके बाल बच्चे कहाँ है? बाल गोपाल तो प्रसन्न हैं न?" स्त्री के फल बच्चे ही हैं। घर मे लड़की लडके होते हैं तो उनके आगे पीछे की सहस्रों चिन्ताएँ सिर पर लद जाती हैं। लडकी हुई, तो उसके विवाह की चिन्ता दान दहेज, छोछक,

भात और न जाने किस-किस की चिन्ता। लडका हुआ; तो उसकी पढाई लिखाई विवाह, तथा अन्यान्य सस्कारो की चिन्ता आगे के लिये उसके योग क्षेम की चिन्ता। सब चिन्ता ही चिन्ता हैं। पिता जब तक जीता है, सतान के ही लिये सोचता रहता है। सन्तान न होने पर जीवत अकर्मण्य उत्साह हीन तथा नीरस बन जाता है। नन्दजी भी सोचते थे—"हमारे आगे पीछे तो कोई है ही नही। कस बहुत करेगा, हमसे अधिकार छीन लेगा, सो छीन ले। दो हैं, किसी न किसी प्रकार गौओ की कृपा से पेट भर ही लेंगे। किन्तु अब यह बात नही है। अब तो घर मे लाना हो गया है। उसे व्रज का राजा बनाना है, किसी धनिक गोप की सुदर सी कन्या के साथ उसका विवाह करना है। उसे ऐश्वर्य शाली बनाना है। हम कोई स्वतन्त्र राजा तो हैं ही नही। कस के अधीन हैं वह जब हमारे पुत्र को युवराज स्वीकार कर लेगा, तभी वह राजा बन सकेगा। यदि वह किसी कारण से अप्रसन्न हो गया, तो हमारे पुत्र मे सैकडो त्रुटियाँ बताकर युवराज मानने से अस्वीकार भी कर सकता है। यदि मेरा इतना सुन्दर सुकुमार कुमार राजकुमार न हुआ तो मेरा जीवन वृथा है। यह सब कस की कृपा पर निर्भर है, उसे प्रसन्न रखना हमारा प्रथम कर्तव्य है। यद्यपि वह दुष्ट स्वभाव का है, फिर भी अनुनय विनय और नम्रता से प्रसन्न हो ही जायगा। यह शुभ सम्वाद स्वय जाकर उसे सुनाना चाहिये। बहुत दिनो से उसका वार्षिक कर भी नही दिया गया है, इससे भी अति शीघ्र चलना चाहिये।" यही सब सोचकर उन्होने गोपो को मथुरा चलने की आज्ञा दी।

आज्ञा पाते ही गोपों ने बहुत छकड़े निकाले उनमे सुन्दर-सुन्दर नागौड़ा बैल जोते। प्राचीन काल मे यह प्रथा थी, जो

जिस वस्तु का उत्पादन करता था, उसी को राजकर में देता था अन्नादि उत्पादन करने वाले कृषक उत्पन्न हुए अन्न का षष्ठांश राजा को देते थे। इसी प्रकार गोप ग्वाल आभीर भी घृत-दूध दही के रूप में राजकर देते थे। दूध दही तो उपहार रूप में देते क्योंकि ये वस्तुएँ अधिक दिन तक नहीं टिकती। कर के रूप में वे घृत ही देते थे। अतः गोपो ने ऊँटों के चर्म के बने बड़े-बड़े कुप्पों में घृत को भरा और छकड़ों पर लादा। दूध, दही तथा मक्खन के भी भरे पात्र छकडो मे भरे। नन्दजी को अपने पुत्र की रक्षा की बड़ी चिन्ता थी। धनुष वाण धारण करने वाले सहस्रों गोप उन्होने गोकुल की रक्षा में नियुक्त किये। उपनन्दजी के ऊपर अन्तःपुर की रक्षा का भार था। इस प्रकार सभी रक्षा के प्रवन्ध करके सबको भली-भाँति समझा बुझाकर वे गोपों के सहित श्रीमथुरा पुरी की ओर चल दिये। घाट पर पहुँचकर बड़ी-बड़ी नौकाओं मे बैल और छकड़ों को पार पहुँचाया। इस प्रकार सब छकडो को उतारते-उतारते उन्हें तीसरा पहर हो गया। सबके पार होने पर नन्दजी स्वय पार हुए। फिर छकड़ों को जोतकर मथुरा की ओर चल दिये। यह भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी की बात है। मथुरा के समीप एक सुन्दर म उपवन में जल का सुपास देखकर यमुना जी के तट से कुछ हटकर उन्होंने अपने डेरे डाले। सायंकालीन कृत्य किये। भोजन तो सब गोकुल से ही साथ लाये थे भोजन करके सब सुख पूर्वक सो गये। दिन भर के थके थे, पड़ते ही नीद आ गयी। एक ही करवट में अरुणोदय हो गया, सभी ने उठकर प्रातः कालीन कृत्य किये फिर छकड़ों का साथ लिये हुए वे कंस की राज सभा के द्वार पर पहुँचे। प्रहरी द्वारा उन्होंने अपने आने की सूचना कंस राय को दिलायी।

कंस ने जब गोपराज व्रजेन्द्रराज जी का आगमन सुना, तो उसने बड़े आदर के साथ उन्हें बुलवाया। नन्दजी राजकीय शिष्टाचारों का पालन करते हुए अपनी समस्त भेंटों को लेकर मथुरेश के सम्मुख उपस्थित हुए। आज भेंटों में घृत, दूध, दही, के अतिरिक्त बहुत से मणि माणिक्य भी थे। इतनी धनराशि को

देखकर कस ने आश्चय चकित होकर पूछा—"इतनी बहुमूल्य भेंट किस कारण लाये हो गोपराज?"

विनीत भाव से नन्दजी ने कहा—"महाराजाधिराज ! इस वृद्धावस्था में मुझे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है।"

चौंककर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कंस ने कहा—"अच्छा, आपके पुत्र हुआ है ? बड़े मङ्गल की बात है आपका पुत्र चिरंजीवी हो, अपने बन्धु बान्धवों तथा सभी प्राणियों को सुख देने वाला हो। अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, अपने प्रतिपक्षियों को परास्त करे।"

सिर झुकाकर नन्दजी ने कहा—"महाराज ! आपका आशीर्वाद सत्य हो। आपकी इसी प्रकार कृपा दृष्टि बनी रहे।"

इस प्रकार बहुत सी शिष्टाचार की बातें होती रहीं। कंस ने गौओं की कुशलता पूछी पशु सम्बन्धी रोग तो व्रज मे नहीं है ? घास तो यथेष्ट है न ? गौएँ यथेष्ट दूध तो देती है, जगली हिंसक पशुओ का उत्पात तो नही है ? इस प्रकार की बहुत-सी बातें पूछी। नन्दजी ने उन सबका नम्रता के साथ उत्तर दिया और व्रज की कुशलता बतायी।

इन सब बातों मे मध्याह्न काल हो गया। मध्याह्न कृत्य मे विलम्ब होते देखकर कंस से अनुमति लेकर तथा भेंट उपहार और वार्षिक कर की वस्तुओं को देकर नन्दजी अपने डेरे में लौट आये। वहाँ आकर उन्होने मध्याह्न कृत्य किये। यमुना जी की रेती में सुन्दर दाल वाटी बनी। धुली हुई उड़द की गाढ़ी-गाढ दाल बनाई गयी, सुन्दर खस्ता बाटियाँ बनीं। कुछ बाटियो को मीजकर उनका चूरमा बनाया। आधा घी मिलाकर मुठियादार लड्डू बने। उड़द की गाढी दाल में आधा घी डालकर पतली बनायी। तुलसी छोड़कर नारायण का भोग लगाया। फिर आनन्द से सबने प्रसाद पाया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मथुरा की शोभा देखकर गोप मुग्ध हो गये थे। उनकी इच्छा थी दो चार दिन और रहकर यहाँ का आनन्द लूटें। इसी उद्देश्य से वे डेरा डालकर विश्राम करने लगे।"

छप्पय

दई भेंट, कर सहित रतन अगनित घृत पय धन।
पाइ अमोलक वस्तु कंस पूछत प्रसन्न मन॥
व्रजमहँ सब जन कुशल बहुत दिनमहँ कर आयो।
सकुचि कहें—व्रजराज महरि घर लाला जायो॥
कंस कहे जुग जुग जिये, पालन सब व्रजको करे।
विजयी होवे सुत सतत, सब प्रानिनिको दुःख हरे॥

नंदजी और वसुदेवजी की भेंट

[८५४]

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥*
(श्रीभाग० १० स्क० ५ अ० ३१ श्लोक)

छप्पय

नंद दयो कर कंस लौटि डेरापै आये।
समाचार वसुदेव सुनत तुरतहिँ उठि धाये॥
सजल नयन तनु पुलकि ललकि हिय नन्द लगाये।
दोनों सुधि बुधि भूलि गहकि हिय उभय सटाये॥
दई बधाई नन्दकूँ, कुशल प्रश्न पुनि पुनि करें।
सुमिरि सुमिरि बल कृष्णकूँ, नीर नयन नीरज भरें॥

इस ससार मे सब कुछ सुलभ है, किन्तु सुहृदा का द॰ दुर्लभ है। विधाता ने इस जगत् की रचना विचित्र की है। सस॰ की रचना अपूर्णता से की गयी है। पति-पत्नी दोनो सुन्दर दो॰ सरल दोना एक मन एक प्राण मिले तो गृहस्थ धर्म यही स॰ बन जाय, फिर मरकर स्वर्ग जाने की आवश्यकता ही न॰ किन्तु ससार को रचना तो विचित्र ढङ्ग से ब्रह्माजी ने की॰

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! नन्दजी से मिल भेंटकर व॰ देवजी कहने लगे—"आप राजा का वार्षिक कर दे ही चुके और ह॰ भी साक्षात्कार हो चुका, अब आपको अधिक दिन यहाँ न ठह॰ चाहिए। क्योकि आजकल गोकुल मे बहुत से उत्पात हो सकते हैं।"

पति सुदर है, तो पत्नी कुरूप है। पत्नी रूपवती है तो पति भौंडा है, दोना सुंदर हैं तो वे संतानहीन हैं। सतान भी है, तो द्रव्य का प्रभाव है, प्रटूट द्रव्य है तो उसे उपभोग करने वाला नही, किसी की बुद्धि प्रत्यन्त तीक्ष्ण है, तो घन के लिये उसे बुद्धिहीनो का प्राश्रय लेना पडता है। जिनके पास प्रटूट धन है तो बुद्धि नही। जिनके धन बुद्धि दोनों हैं वे प्रत्यन्त कृपण हैं। धन व्यय करने मे उनके प्राण निकलते हैं, जो उदार है, वे पैसे-पैसे का प्रभाव प्रनुभव करते हैं। कोई खाने के लिए मर रहा है तो किसी पर इतना प्रधिक भोजन है, कि उसे खाने की रुचि ही नहीं। तोले भर भी नही पचता। किन्ही का हृदय ऐसा पत्थर का बना दिया है, कि लोग उनसे प्रेम करना चाहते हैं, वे किसी से सीधे बातें भी नही करते। कोई प्रेम के लिय तरसते है, हमसे कोई प्रेम करे, दो मीठी बातें करे, किन्तु लोग उनसे बालते तक नही, सभी उनकी उपेक्षा करते हैं। जिनके साथ हम रहना नही चाहते, विवश होकर उनके साथ हमे रहना पडता है। जिन्हे हम पल भर के लिये पृथक करना नही चाहते। वे हमसे इतने दूर फक दिये जाते हैं, कि जीवन मे कभी उनसे भेंट ही नही होती। इस प्रकार न जाने ब्रह्माजी की खोपडी मे यह क्या विपरीत भावना भर गयी, कि उन्होन सभी गडवड घुटाला कर दिया। मनुष्यो मे ऐसी विपरीतता कर दी हो सो बात नही। सर्वत्र उनकी ऐसी ही बडी-बडी भूल दिखाई देती है। मनुष्यो के पूंछ नही बनायी कितनी भारी भूल है। नेत्रा को माथे मे बना दिया। जीभ मे नेत्र होने चाहिय थे। कानो को व्यर्थ इतना लम्बा बना दिया गले मे ही छेद कर देते प्रौर देखिये वट, पीपल पाकर कितने बडे-बडे वृक्ष बनाये इनमे फल लगत हैं तनिक-तनिक से। मनुष्यो के काम भी नही प्राते, बड़े स्वादिष्ट प्राम की भांति मीठे फल होते तो क्या पूछना

है। नीम पर फल भी लगाये तो कडवे। बबूर पर व्यर्थ में काँटे लगा दिये, ईख की लकडी कितनी मीठी होती है, उस पर यदि फल लगता तो कितना मीठा होता, उसमे फल नही। चन्दन की लकडी कितनी सुगन्धि वाली होती है, उस पर यदि फूल लगता तो कितना सुगन्धित होता, उसमे फूल का अभाव है। सुवर्ण कितना सुदर है उसमे सुगधि और होती तो कितना आनन्द आता। उसे गन्धहीन बना दिया। इन सब बातो को स्मरण करके किसी नीतिकार ने कहा है, ब्रह्माजी को भाग्यवश कोई बुद्धिमान मन्त्री नही मिला। शीघ्रता मे बूढे बाबा को जो कुछ सूझा वही बना दिया। अब जो एक बार अपने हाथ से उलटा सीधा बन गया, उसे मिटाने मे मोह होता है। अच्छा और सब त्रुटियाँ तो सही भी जा सकती हैं। क्षम्य भी मानी जा सकती है, किन्तु सुहृद् जनो को पृथक् करके जो वियोग की रचना ब्रह्माजी ने की है, वह तो असह्य है। जिस प्रेम मे वियोगजन्य दुख नहीं ऐसा प्रेम देखने मे नही आता। दो प्रेमियो को दूर फेंककर जो बूढे बाबा अपने चारो मुखो से हँसते रहते हैं वह जघन्य व्यापार है। जब दो प्रेमी मिलत हैं तो कैसा सुख होता है। ब्रह्माजी ने प्रेमियो का नित्य मिलन क्यो नही बनाया। संभव है वियोग से प्रेम निखरकर चमक उठता होगा। चिरकाल की प्रतीक्षा के पश्चात् के मिलन मे अत्यधिक सुख होता होगा, मिलन की मिठास को बढाने के लिय सभव है ऐसा किया हो। नहीं तो जिनके एक नही चार-चार मुख हैं। परम पुरातन अनुभवी अज ऐसी बेतुकी भूल क्यो करते। जितनी ही अधिक प्रतीक्षा के पश्चात् प्रिय का मिलन होगा उसमे उतना ही अधिक आनन्द आवेगा। दूर रहने पर जितनी उत्कंठा बढती है, समीप रहने पर उतनी अनुभव नही होती।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो व्रजराज नन्दजी अपने डेरे पर आकर भोजन करके विश्राम करने लगे। इधर नन्दजी के आगमन का शुभ समाचार आनक दुदुभि श्रीवसुदेव जी ने श्रवण किया। सुनते ही उनके रोम-राम खिल उठे। प्रिय दर्शन का अवसर प्राप्त होने की आशा से किस सहृदय पुरुष का मुख कमल न खिल उठेगा। वसुदेव जी अपनी उत्सुकता को रोक न सके। उन्हें क्षण-क्षण पल-पल भारी हो गया। वे नन्दजी से मिलने को व्याकुल हो उठे। नन्दजी के दर्शन होगे मदन लाल के कुशल समाचार प्राप्त होगे। इन बातों को स्मरण करते ही उनके रोमाञ्च हो गये। वे चुपके-से अकेले ही अलक्षित भाव से किसी गली से चल दिये। नन्द जी एक उपवन मे छकड़े के नीचे आसन बिछाये लेट रहे थे। पहरे पर हाथ मे धनुष बाण धारण किये हुये गोप खड़े थे। वसुदेव जी को देखकर एक गोप दौड़ा-दौड़ा व्रजराज के समीप गया और शीघ्रता से बोला—'बाबा ! वसुदेव जी पधारे हैं।"

वसुदेव जी का नाम सुनते हो नन्दजी घबड़ा कर उठ पड़े। इतने मे ही वसुदेव जी आ गये। दोनो हृदय से हृदय सटाकर प्रेम पूर्वक मिले। दोनों के ही शरीरो में रोमाञ्च हो रहे थे, दोनो के ही नेत्रो से झर-झर प्रेमाश्रु झर रहे थे, दोनो के ही कंठ रुद्ध हो रहे थे। बड़ी देर तक शरीर की सुधि भूले हुए एक दूसरे को हृदय से सटाये रहे।

कुछ काल के पश्चात् उन्हे अपनी शरीर की सुधि आयी। नंदजी ने बड़े आदर से वसुदेव जी को अपने समीप बिठाया। मृतक शरीर मे प्राण आने पर प्राणियो को जितनी प्रसन्नता होती है उससे सहस्रगुणी प्रसन्नता वसुदेव जी के दर्शनो से नंदजी को हुई और इसी प्रकार वसुदेव जी को भी। दोनों के कुछ काल कंठ रुद्ध

होने के कारण स्तब्ध ही बैठे रहे। वसुदेव जी को अपनी सन्तान की कुशलता जानने की उत्सुकता थी, अतः उन्होंने धैर्य धारण करके रुक-रुक कर कहना प्रारंभ किया।

वसुदेव जी सर्व प्रथम पुत्र पैदा होने के उपलक्ष में बधाई देते हुए बोले—"नन्द जी ! जब से मैंने सुना है, कि आपको इस वृद्धावस्था में पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है, तब से मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा है। भगवान् की यह परम कृपा है, नहीं तो इस अवस्था में आपके सन्तान होगी ऐसी किसी को भी आशा नहीं थी। आप दोनों ही पति-पत्नी वृद्ध हो चले थे। अब तक आपके कोई सन्तान भी नहीं थी, इस समय पुत्र प्राप्त होने पर मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ।"

यह सुनकर विनीत भाव से नन्दजी ने कहा—"मेरे तो ऐसे कोई पुण्य दीखते नहीं थे। यह सब आप सबकी कृपा का फल है। मेरा काहे का है। आपका ही बच्चा है। आप सबके आशीर्वाद से जी जायगा तो व्रज का नाम चलावेगा। इधर बहुत दिन से आपके दर्शन नहीं हुए थे। सोचा था—'एक पन्थ दो काज' चलकर कंस का कर भी दे आवें और आपके दर्शन भी कर आवें। हम सब आपके घर जाने की बात सोच ही रहे थे, कि स्वयं आपने ही कृपा की, दर्शन हो गये। आपके दर्शनों की उत्कंठा थी, आज आपको देखकर चित्त कितना प्रसन्न हुआ, इसे शब्दों द्वारा व्यक्त करने की मुझमें सामर्थ नहीं है।"

वसुदेव जी बोले—"भाईजी ! संसार में सुहृद् जनों का मिलना यही अत्यन्त कठिन है। सभी वस्तुएँ प्रयत्न करने से सरलता-पूर्वक प्राप्त हो सकती है, किन्तु पृथक् हुए प्रेमियों का सम्मिलन बड़े सौभाग्य की बात है। सुहृदयों का एक दूसरे से पृथक् होना मरण के समान है। सम्भव है अब भेंट हो न हो। यदि सौभाग्य

से बिछुरे बन्धु पुनः मिल गये। तो समझो मानों पुनर्जन्म हो गया।"

नन्दजी ने कहा—"क्या बतावें भाईजी! इच्छा तो बड़ी होती है, सदा आपके समीप ही रहे, किन्तु परिस्थितियो से विवश होने के कारण मन की बात मन मे ही रह जाती है। सदा साथ रहने की बात दूर रही, दर्शन भी नही कर पाते।"

आह भरकर वसुदेवजी ने कहा—"भाईजी! इस ससार का चक्र ही ऐसा है। मैं कब चाहता हूँ आपसे पृथक् रहकर जीवन बिताऊँ, किन्तु हमारे चाहने से होता ही क्या है। ब्रह्मा बाबा ने सबके भाग्य भिन्न-भिन्न बनाये हैं। प्रेम भी सबसे नही होता, यह भी सस्कारो पर निर्भर है, बहुत से व्यक्ति जीवन भर साथ रहते हैं, प्रेम नही होता है। बहुतो को एक बार देखने से ही प्रेम हो जाता है, हृदय बलपूर्वक उनकी ओर खिच जाता है। जीवन मे एक बार भाग्य से मिल जाते है, क्योकि सब वस्तुओ पर सबका नाम लिखा है। अन्न के दाने-दाने पर जल के कण-कण पर प्रत्येक की छाप लगी है। जब एक स्थान के अन्न जल पर एक ही समय भोगने की छाप का सयोग होता है, जो अनेक व्यक्ति मिल जाते हैं। जब वह सयोग समाप्त हो जाता है, तो इच्छा न रहने पर भी बिछुडना पडता है। दो तिनके नदी के प्रवाह मे बहते-बहते मिल जाते हैं, कुछ दूर साथ चलते हैं, फिर कोई लहर आती है दोनो को पृथक् कर देती है। कभी फिर सयोग होता है तो फिर मिल जाते हैं, कभी नही भी मिलते। नौका में बहुत से साथ हो जाते है, पार होने पर सब अपने-अपने स्थानो पर चले जाते हैं। प्याऊ पर बहुत से एक साथ मिलकर पानी पीते हैं, हँसते खेलते हैं दोपहरी ढली, कि सब अपना-अपना मार्ग पकड लेते हैं। वायु मे उडकर बहुत से पेडो की पत्तियाँ

मिल जाती हैं, पुनः आंधी आयी पृथक् हो जाती हैं। उत्सव, मेले ठेले, विवाह पव, सस्कार प्रोति भोज तथा अन्यान्य समारोहों पर मनुष्य एकत्रित होते हैं, फिर सब विछुड़ जाते है। कोई चाहे हम सदा साथ ही बने रहे, तो यह असम्भव है, क्योंकि सभी के प्रारब्ध कर्मों मे कुछ न कुछ भिन्नता होती है। प्राय देखा गया है, सभी प्रेमो साथ नही रहते, उन्हे वियोग मे तड़प-तड़पकर ही जोवन विताना पड़ता है।

नन्दजी बोले—' वसुदेवजी! आप सत्य कहते हैं। यह ससार ऐसा ही है। हम कब चाहते हैं, कस के अधोन रहे, किन्तु रहना पड़ता है। आपको हम अपनो आंखो मे रखना चाहते हैं, किन्तु साथ रहना तो पृथक् रहा खुलकर बातें भी नही कर सकते। इन सब बातो से हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे, कि यह जीव अवश है, किसी के नचाने पर नाचता है, किसी के सकेत पर कार्य करता है।"

वसुदेव जी ने कहा—"छोड़ो इन बातों को प्रारब्ध पुरुषार्थ का पुराना झगड़ा है। अच्छा, यह बताइये आज-कल आप अपने बन्धु-बान्धव तथा अन्यान्य गोपों के सहित जिस विशाल वन में रहते हैं उसमे जल का तो सुपास है न? मनुष्यों तथा पशुओं के लिये जल पर्याप्त है न? गौओं के चरने के लिये जगल पर्याप्त है न? उसमे यथेष्ट बड़ो-बड़ी घास तो है। 'वृक्ष लता पत्रों का बाहुल्य है? क्योकि वृक्ष पुरुषों के लिए अत्यन्त उपयोगो है। वे जीवन की समस्त वस्तुओ को देते हैं। तुम्हारी गौएँ तथा अन्यान्य पशु तो निरोग है न? पशु सम्बन्धी रोग तो नही है?"

वसुदेव जी के इतने प्रश्नों को एक साथ सुनकर नन्दजी सरलता के साथ कहने लगे—"सब आपकी कृपा है। हम बिना

महावन गोकुल मे रहते हैं, उसमें पर्याप्त घास है। यमुना जी तो हमारे निकट ही वहती हैं। तट पर ही हमारे गोष्ठ है, अतः जल की तो कुछ कमी ही नहीं। पशु सब अच्छी प्रकार है, गोप-गण आनन्द से चैन की वन्शी वजाते हैं' किलोलें करते हैं।"

वसुदेव जी ने पूछा—"और आपके वड़े भाई छोटे भाई उनके वच्चे सव कुशल से तो हैं ? हां, एक हमारा भी पुत्र अपनी माता के सहित आपके यहां रहता है। अब तक न मैंने उसे देखा न उसने मुझे देखा। आपने तथा नन्दरानी ने ही उसका पालन-पोषण किया है। वह तो आप दोनों को ही अपना माता-पिता मानता होगा।"

नन्दजी बोले—"हां, भाईजी ! भाभी रोहिणी अच्छी प्रकार हैं उनका वच्चा भी अच्छा है। अब तक तो वह कुछ अन्यमनस्क सा रहता था, जवसे उसका एक जोटिया आ गया है, तबसे हँसता है, खेलता है, किलकारियां मारता है। आप किसी प्रकार को उसके सम्वन्ध मे चिन्ता न करें, जैसा वह आपका पुत्र है, वैसा ही मेरा है।"

वसुदेव जी ने अत्यन्त ही स्नेह भरित हृदय से मार्मिक वाणी मे कहा—"हाँ, भाईजी ! यह कुछ कहने की वात थोड़े ही है। आपका ही तो वह पुत्र है। आपका ही धर्म और धन तो सफल है, जिन शास्त्र विहित धर्म, अर्थ और काम के द्वारा अपने आत्मीयो को सुहृद सम्बन्धियो को सुख मिले, तो सफल है नही जो धन केवल भूमि मे ही गाडने को हो, अधर्म से उपार्जित किया गया हो, न तो उसके द्वारा दान पुण्य किया गया हो, और न अपने तथा कुटुम्बियो के सुखोपभोग में व्यय किया गया, तो वह धन धर्म विरुद्ध है। इसी प्रकार जिस धर्म से लोक कल्याण हो, देवता पितर प्रसन्न होते हों, वह धर्म तो यथार्थ धर्म है इसके

विपरीति विना विधि के केवल यश प्राप्ति और नाम के लिये जो धम किया हो, वह धर्म न होकर धर्माभास है, दम्भ है, दिखावट है। जो कामभोग–परलोक को भूलकर-केवल इन्द्रिय तृप्ति के लिये ही किया गया हो वह अधर्म है। आपके तो तीनों ही सार्थक है। आप समस्त धर्म भी आत्मीयों के सुख के निमित करते हैं। आपका धन भी दान पुण्य मे ही व्यय होता है। आप काम का भी धर्मानुकूल ही सेवन करते है, अत' आप धन्य हैं। हम तो इस कस के अधीन होकर अपने त्रिवर्ग नष्ट कर चूके, न तो अपने बन्धु बान्धवो को सुख पहुँचा सकते हैं, न स्वय ही खुल कर धर्म-कार्य कर सकते हैं। जिस त्रिवर्ग से अपने बन्धुजनो को क्लेश हो वह व्यथ है, उससे कोई लाभ नहीं।"

आह भरकर नन्दजी ने कहा—"क्या बतावें वसुदेव जी! परिस्थिति विवश कर देती है, नही आप तो उदार बडे हैं, धर्म प्राण हैं। इस दुष्ट कस ने सब गुड गोबर कर दिया। यह कितना पापी है, इसके पाप का घडा भरता भी तो नही। इतने जघन्य पाप करके फल फूल रहा है। देखिये, दुष्ट ने देवकी के गर्भ से उत्पन हुए तुम्हारे कितने नन्हें नन्हे भोले भाले सद्य.जात शिशुओ का जन्म होते ही निर्दयता-पूर्वक मार डाला। सुना है अन्त मे एक सबसे छोटी कन्या बची थी। उस पर भी दुष्ट ने दया नही की। स्त्री जाति पर तो क्रूर क्रूर से भी कृपा करते हैं। स्त्रियो को तो सभी अवध्या मानते हैं, इस खल ने इसका भी विचार नही किया, उसे भी मारकर स्वर्ग पठा दिया।"

वसुदेव जी ने सरलता के साथ कहा—'व्रजराज! अब किसे दोष दें। कौन किसे सुख-दुख दे सकता है, सभी स्वकर्म सूत्र में आबद्ध हैं। बेचारा कस क्या कर सकता है, यह तो सब हमारे भाग्य का ही दोष है।"

नन्दजी ने कहा—"हाँ भैयाजी ! बात तो ऐसी ही है, नि:सदेह मनुष्यो का सुख दुख भाग्य पर ही अवलम्बित है। मनुष्य जो अनेको आश्रय खोजता है, असख्यो दु ख निवृत्ति के उपाय करता है, वे एक भी काम नही आते उसका एक मात्र सच्चा आश्रय तो भाग्य ही है। "भाग्य फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम् ।" मनुष्यो को मोह तभी होता है जब वह दूसरो को अपने सुख दुख का कारण समझता है, इसने मुझे बडा सुख दिया, मेरा बडा भारी काम कर दिया, यह मेरा मित्र है, इसने मेरा अमुक कार्य बिगाड दिया, मुझे अमुक-अमुक क्लेश दिये, यह मेरा शत्रु है, इन विचारो मे ही मन के अनुकूल प्रतीत होने वाले के प्रति राग, प्रतिकूल प्रतीत होने वाले के प्रति द्वेष होना स्वाभाविक है। राग और द्वेष ही ससार-बन्धन को दृढ करने वाले हैं। जो प्रत्येक कर्म को अपने भाग्य का ही कारण मानता है, ऐसा विवेकी पुरुष कभी मोहग्रस्त नहीं होता। आप विवेकी हैं तभी तो इतने कष्टो को बडे धैर्य के साथ सहते रहे और दु ख देने वाले कस के प्रति भी द्वेष रहित बने रहे। उसे दोषी न मान कर आप अपने भाग्य को ही दोष देते हैं। यह उचित ही है, आप जैसे ज्ञानीविवेकी के अनुरूप ही ये भाव हैं।"

वसुदेव जी ने कहा—'अच्छा ये बातें तो हो चुकी। यह बताइए आप राजा को अपना कर दे आये ? अब तो वहाँ कोई कार्य शेष नही है।"

नन्दजी ने कहा—"हाँ, वार्षिक कर हम दे चुके। कोषाध्यक्ष स लिखा पढ़ी भी करा ली। वहाँ तो अब कोई कार्य शेष नहीं रहा।"

वसुदेवजी ने कहा—"ये गोप जिस प्रकार निश्चिन्त हुए इधर

उधर घूम रहे हैं, इससे तो अभी ऐसा प्रतीत होता है, आप अभी कुछ दिन यहाँ और रहना चाहते हैं ?"

नन्दजी ने कहा—"मुझे आपसे मिलना तो अत्यावश्यक था। सोचा था, एक दो दिन रहकर आपसे भी भेंट कर लूं। इनमे बहुत-से गोप ऐमे है, जो पहिले ही पहिले मथुरा आये हैं। इनकी इच्छा थी, दो चार दिन रहकर यहाँ के सब घाट, बाट, मन्दिर तथा सुन्दर-सुन्दर स्थान देखें।"

वसुदेव जी ने कहा—"देखिये यह समय हाट-बाट देखने भालने तथा मनोविनोद का नही है। आपके मुख्य काम दो ही थे, राजा को कर देना और मुझसे भेंट करना। सो दोनो ही काम हो चुके, अब आपका यहाँ अधिक दिन रहना उचित नही, क्योंकि गोकुल मे आज-कल बहुत उत्पात होने की सभावना है।"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! नन्द बाबा की तो स्वयं अपने लाला को छोडकर मथुरा मे रहने की इच्छा नही थी किन्तु गोपो के आग्रह से तथा वसुदेव जी से भेंट करने के लोभ से उन्होने दो एक दिन रहना स्वीकार कर लिया था, किन्तु जब वसुदेव जी ने गोकुल मे उत्पात होने की बात कही, तब तो उनका हृदय घडकन लगा। उन्होंने गोपो से कहा—"अभी तुरन्त छकडो को जोड़ो, हम अभी गोकुल चलेंगे।"

यह सुन कर शौनक जी बोले—"सूतजी ! वसुदेव जी को क्या पता था, कि व्रज मे उपद्रव होने वाले हैं, क्या वे ज्योतिषी थे ?"

हंसकर सूतजी बोले—"अजी महाराज ज्योतिषी न भी हो, तो भी प्रेम मे सदा अनिष्ट की शका लगी ही रहती है। फिर चोर का हृदय सदा शकित हो बना रहता है, ऐसा न हो हमारी चोरी खुल जाय। जबसे वसुदेव जी अपने पुत्र को नन्दजी के

गोकुल मे छोड़ आये हैं, तब से वे अपनी किसी भी चेष्टा से यह प्रकट होने देना नही चाहते, कि हमारा नन्दजी से कोई प्रेम का सम्बन्ध है। वे दिखाना चाहते है, कि नन्दजी से हमारा कोई सम्बन्ध हो नही, इसीलिये वे छिपकर अकेले मिलने आये।

आजकल उनको कस सभा मे जाने पर कोई रोक-टोक भी नही थी। वे सभा मे चले जाते और इसी बात की टोह लगाते रहते, कि मेरे विरुद्ध कोई षडयन्त्र तो नही हो रहा है, किसी प्रकार मेरी बात तो नही खुल गयी है। वैसे तो वे कस के सभी असुर प्रकृति के मन्त्रियो से डरते रहते थे, किन्तु पूतना से उन्हे बड़ा डर था। यह बडी भयकर प्रकृति की थी। उन्हे यह बात विदित हो गयी थी, कि आज कल छोटे-छोटे बच्चो के वध का कार्यक्रम कार्यान्वित हो रहा है। यह दुष्टा पूतना घर-घर मे जा जाकर छोटे-छोटे बच्चो को विष मिश्रित पय पिलाकर परलोक पठाती है। नित्य व इस बात का गुप्त रूप से पता लगाते रहते, कि आज यह किधर जाने वाली है। किसी के द्वारा रात्रि मे ही उन्होने सुन रखा था, कि कल यह व्रज के बालको को मारने नन्दजी के गोष्ठ मे जायगी। वे गुप्त रीति से किसी सेवक को नन्दजी के यहाँ भेजने ही वाले थे, उसी समय सुना नन्दजी वार्षिक कर देने आये हैं।" वे सब के सम्मुख तो उनसे मिलना नही चाहते थे। टोह लगाते रहे कर देकर ये कब अपने डेरे पर लौटते हैं। जब वे लौट गये, तो तुरन्त वसुदेव जी उनसे गुप्त मार्ग से जाकर मिले। जब वसुदेव जी ने व्रज मे उत्पात वाली बात कही तब तो नन्दजी अपने सभी साथी गोपो को साथ लेकर तुरन्त गोकुल की ओर चलने को प्रस्तुत हुए। चलते समय दोनो के नेत्र सजल थे, हृदय से हृदय सटाकर दोनो मिले। अन्य गोपो ने वसुदेव जी को प्रणाम किया। इस प्रकार उनकी आज्ञा लेकर

गोप बैलों से जुते छकड़ों पर चढ़कर गोकुल की ओर चल दिये और वसुदेवजी उदास मन से अपने घर लौट आये।"

छप्पय

बोले श्रीवसुदेव दयो कर भेंट भई अब।
अधिक रहें नहिँ यहाँ काज सम्पन्न भये सब॥
ब्रजमहँ नव उत्पात कौन-से कब का आवें।
तातैं अब अविलम्ब आप गोकुलकूँ जावें॥
राम-कृष्णमहँ मन फस्यो, नन्द-हृदय शंका भई।
तुरतहिँ गोकुल गमनकी, गोपनिकूँ आज्ञा दई॥

गोकुल में पूतना मौसी का आगमन

[८५५]

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥
सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम्।
योषित्वा माययात्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥*

(श्री भाग० १० स्क० ६ अ० २, ३ श्लोक)

छप्पय

छकरनि जोरे बैल नन्द वसुदेव मिले पुनि।
गोकुलकूँ चलि दये कथा अब एक कहूँ मुनि॥
निज रिपु हनिवे हेतु पूतना कंस पठाई।
सब थल मारत शिशुनि खेचरी गोकुल आई॥
पीन पयोधर भारतैं, नमित चलति छैलिनि बनी।
केश-पाशमहँ मल्लिका, गुँथी कुसुममाला घनी॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! कंस के द्वारा भेजी हुई घोर रूपा, बालकों को मारने वाली पूतना राक्षसी नगरों, ग्रामो तथा गौओं के गोष्ठ आदि मे सद्यःजात शिशुओं को मार रही थी। एक दिन वह कामचारिणी खेचरी पूतना नन्दजी के गोकुल मे आयी और अपनी आसुरी माया से अत्यन्त सुन्दरी युवती का वेष बनाकर अन्तःपुर मे घुस गयी।"

कभी-कभी संकोचवश ऐसी-ऐसी घटना घटित हो जाती है, कि जिनका परिणाम कुछ से कुछ हो जाता है। भ्रमवश कोई कुछ समझ लेता है कोई कुछ। एक चोर ने गुरु के सम्मुख प्रतिज्ञा की, कि मैं झूठ न बोलूँगा। राजा के यहाँ चोरी करने गया बड़े ठाठ-बाट से। सुन्दर वस्त्राभूषणों को पहिने निर्भय होकर चला गया। प्रहरी ने पूछा "आप कौन है, उसने निर्भय होकर कहा—"हम चोर है ?" सयोग की बात उन्ही दिनो महाराज का साला आया था। प्रहरी ने सोचा—"चोर तो इस प्रकार निर्भय होकर जा नहीं सकता। फिर चोर अपने मुँह से कैसे कहेगा। निश्चय ही यह रानी के भाई हैं।" इसी संकोच में पड़कर उसे रोका नही। वह निर्भय होकर घुस गया और सुन्दर-सा घोड़ा चुराकर उसी प्रकार निकल गया। ऐसी ही अनेकों भ्रमवश भूलें हो जाती हैं। परिस्थिति ऐसी हो जाती हैं कि न तो पूछते ही बनता है और सहसा अविश्वास ही किया जाता है। ऐसी परिस्थिति मे दुस्साहसी पुरुषो को अपना स्वार्थ सिद्ध करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

सूतजो कहते हैं—"मुनियो। नन्दजी को वसुदेवजी की बात सुनकर शका हो गयी। प्रेम मे पग-पग पर अनिष्ट की शका बनी ही रहती है। मेरे लाला का कुछ अनिष्ट न हो, वसुदेवजी ने क्या सोचकर यह बात कही। मैं तो व्रज मे सब कुशल छोड़कर आया था। मेरे यहाँ तो ६ दिन से निरन्तर उत्सव की धूम मची थी, अब सहसा गोकुल मे क्या उत्पात हो सकता है। वसुदेवजी साधारण आदमी नही हैं, उन्हे कुछ न कुछ आभास तो मिल ही गया होगा। मै तो यहाँ मार्ग मे हूँ, क्या कर सकता हूँ। इसी प्रकार की बातें सोचते-सोचते नन्दजी मार्ग मे चले जा रहे थे जब उन्हें कुछ नहीं सूझा तब वे श्रीहरि की शरण गये। जो

विश्व का पालन करते हैं, चराचर प्राणियो की रक्षा करते हैं वे मेरे लालजी की भी उत्पातो से रक्षा करेंगे। इस प्रकार मन को समझाते हुए वे शीघ्रता के साथ गोकुल की ओर बढ रहे थे।

इधर कस मामा की मन्त्राणी जिसे वे बहिन जी कहते थे, उसने यह बीडा उठाया था कि मै व्रज भर मे दश दिन के पैदा हुए बालको को दश दिन मे मार डालूंगी। कस मामा ने पूछा—"बहिन जी! तुम्हारे लिये किस रथ का उडनखटोले का प्रबन्ध करदें क्योकि व्रज ८४ कोस का है पैदल तुम कहाँ-कहाँ जाओगी।"

पूतना मौसी ने कहा—"ना, भैया! मुझे जलयान थलयान, वायुयान किसी की आवश्यकता नहीं। जैसे तुम पूर्व जन्म में कालनेमि असुर थे, वैसे ही मैं भी पूर्व-जन्म मे राक्षसी थी। यहाँ व्रज में मानवी योनि मे जन्म लेने पर भी मुझे राक्षसी विद्याएँ सब आती हैं। मैं कामचारिणी हूँ, स्वेच्छा से रूप बदल सकती हूँ, आकाश मे उड सक्ती हूँ, बडे मे बडा छोटे मे छोटा, सुन्दर से सुन्दर कुरूप से कुरूप रूप रख सक्ती हूँ। मै भोजनान्तर अपने कुचो मे कालकूट विष लपेट कर घर घर जाया करूंगी। जो बच्चे छोटे होगे, उन्हे वह विष मिश्रित दुग्ध पिलाकर मार दिया करूंगी। तुम्हारा शत्रु पैदा तो व्रज मे ही हुआ है, सब बच्चो के साथ वह भी मारा जायगा।"

कस ने कहा—"तब तुम्हारा कार्यक्रम क्या रहेगा?"

पूतना ने कहा—"मेरा कार्यक्रम अत्यन्त गुप्त रहेगा। मैं किस दिन किस दिशा मे जाऊँगी, यह बात मै किसी को भी न बताऊँगी।"

कस ने कहा—"यह उपाय सुन्दर है, हमारा शत्रु भी मर

विघ्न पडता है। फल फूलवाले वृक्षो को अन्य घास फूंस या काटें-दार वृक्ष हानि पहुँचाते हैं, उन्हे वह काट देता है। किसी को उत्पन्न होते ही काट देता है, किसी को बढने देता है, बडे होने पर काटता है, किसी की डालीको काट देता है। किसी को एक दूसरे से जोडकर कलम लगा देता है। इसी प्रकार विष्णु भगवान् का कार्य प्राणियो की रक्षा करना है। जगत् के प्रवाह को स्थिर रखना है, इसमें जो असुर राक्षस, मनुष्य पशु-पक्षी बाधा पहुँचाते हैं, उनका वे विनाश कर देते है, करा देते हैं, किसी को बढाकर मारते हैं, किसी को जन्मते ही मार डालते है। प्रतीत होता है, उन दिन कस के पक्ष को प्रबल बनाने के निमत्त असंख्यो असुर ब्रज मे पेदा हो रहे थे। भगवान् ने सोचा—"अब इन सद्यः जात शिशुओं पर मै क्या हाथ चलाऊं। मौसी के द्वारा ही इनकी इतिश्री कराद़ूं। जब मेरे पास यह पारितोषिक माँगने आवेंगी, तो मैं इसे मोक्ष का मार्ग दिखा दूंगा। संसार बन्धन से इसे विमुक्त बना दूंगा। मोक्ष ही सबसे उत्तम परम पुरुषार्थ है। यही मैं मौसी को दे दूंगा।" इसलिए भगवान् की प्रेरणा से ही यह असुर रूप में प्रकटे वालकों को मारती रही। गोकुल की इसे याद तक नही आयी। अब जब सब असुर बालक मर चुके, तब वह भगवान् के पास आयी। पूतना के विष मिश्रित पय को पीकर कैस पक्षीय असुर ही मारे गये। कृष्ण पक्षीय बालको की ओर तो पूतना ने आँखें उठाकर भी नही देखा।"

इस पर शौनकजी बोले—"हाँ, सूतजी! भगवान् की प्रत्येक लीला में अनन्त गूढ रहस्य भरे पड़े हैं। यह संसार भगवान् की क्रीडा भूमि है। भगवान् इसमें जो भी कर रहे हैं। शिव की कोई भी चेष्टा अशिव नही हो सकती। आनन्द स्वरूप की कोई भी लीला निरानन्द नही होती। मनुष्य अभिमान के वशीभूत होकर

यह कहता रहता है, यह नहीं हुआ वह नहीं हुआ। यह भगवान् ने अच्छा नहीं किया। भगवान् तो अच्छाई के अतिरिक्त दूसरी बात जानते ही नहीं। जैसे मिठाई बेचने वाले के पास मिठाई ही होगी। विष बेचने वाली दुकान पृथक् होती है। अच्छा, तो फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज सुनिए; पूतना उड़कर गोकुल के बाहर पहुँची। वहाँ उसने देखा पहरे पर बहुत से गोप खड़े हैं। अपने यथार्थ रूप से तो वह भीतर जा नहीं सकती थी। वह इच्छा के अनुरूप रूप बनाने में समर्थ थी, अतः उसने एक अत्यंत ही सुन्दरी सुकुमारी स्त्री का रूप धारण कर लिया। ऐड़ी तक उसकी वेणी लटक रही थी, उसमे मालती, माधवी मल्लिका, यूथिका आदि के सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की मालाएं गुंथी थीं। उसके रेशमी महीन वस्त्रों मे से उसका रूप यौवन छन-छनकर व्रज को गलियों में गिर रहा था। एक हाथ लम्बे घूंघट में से उसका मुख उसी प्रकार दीख रहा था, मानो चन्द्रमा के हलके आवरण से ढका हुआ हो। उसकी कमर इतनी पतली थी कि वह लता की भांति हिलती-सी दिखायी देती थी। नितम्बको का भाग स्थूल था। इस कारण चलते समय व्रज की वीथियों में उसकी ऐड़ियाँ घस जाती थी। कचुकी से आबद्ध उसके पीन पयोधर दो चचल मीनों के समान हिल रहे थे। उसके अग के लंहगा, फरिया, कचुकी आदि सभी वस्त्र सुन्दर चमकीले तथा बहुमूल्य थे। उसके कमलमुख पर विथुरे हुए काले-काले घुंघराले बाल ऐसे प्रतीत होते थे, मानो सुवर्ण पकज के ऊपर बडी-बडी काली सिवार वायु मे हिल रही हो। कानों के कमनीय कनक कुण्डल हिलते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो दो विचित्र व्यजन आनन की मक्खियों को उड़ा रहे हों और कपोलों को चमकाकर उनकी शोभा को बढ़ा

रहे हो। पहरे वाले गोप बडे सजग थे, नन्दबाबा जाते समय भाँति-भाँति से समझा गये थे, अत वे शक्ति भर किसी भी अपरचित को भीतर भवन मे नहीं जाने देते थे। किन्तु अन्त पुर में स्त्रियो को कौन रोक सकता है। कोई साधारण स्त्री होती तो उससे पूछ भी लेते—'तू कौन है कहाँ जाती है, कहाँ से आयी है क्या काम है?" किन्तु यह तो अत्यन्त बनी ठनी थी इसके प्रभाव से ही सबके सब प्रभावित हो गये। किसी ने कुछ पूछने का साहस भी किया, तो इसने घूँघट की आट म से कजरारे नैनो की जो चोट मारी, कि गोप लोट पोट हा जाते। अपनी मन्द मन्द मनोहर मुस्कान से, कुटिल कँटीले कटाक्ष से युक्त चित्त को चुराने वाली चितवन से चतुरो के भी चित्त को चुराती हुई, सबको अपने रूप जाल के जादू मे फँसाती हुई यौवन के मद मे मदमाती इठलाती हुई इत-उत अपने चचल नेत्रो से देखती हुई, छम्म-छम्म का ध्वनि से व्रज पथ को मुखरित करती हुई, पूतना मौसी अन्त पुर में पहुँच ही तो गयी।

ऐसी परम सुन्दरी, रूपवती, नागरी युवती को देखकर गोष्ठ की रहन वाली गोपियाँ सम्भ्रम मे पड गयी। वे सहसा उठकर खडी हो गयी। रोहिणीजी भी वहाँ थी। वे समझी लालाकी ननसालकी महराने की कोई रानी होगी। यशोदा मैया समझी कोई रोहणीजी की सखी होगी मथुरा से आयी होगी। अत दोनो ने ही उसका अत्यधिक आदर किया। बैठने को पीढा दिया।

लालजी कुछ दूर पलकिया पर पौड रहे थे। उन्होने टेढी याख स उस छैल चिकनियाँ बनी सुन्दरी युवती को निहारा।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् ने टेढी आँख से क्यो देखा?'

हँसकर सूतजी बोले—"अजी महाराज! इनके मनके यथार्थ

भाव को कौन जान सकता है। सब ऊपर ही ऊपर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अनुमान लगाते हैं। कोई कहता है—"क्योंकि यह टेढ़ी बनकर गयी थी, भगवान् की तो प्रतिज्ञा है, जो मुझे जिस भाव से भजता है, मैं भी उसे उसी भाव से भजता हूँ। "इसलिये टेढ़ी दृष्टि से देखा।" कोई कहते हैं, भगवान् ने सोचा "बनकर तो यह माँ आयी है काम माता के विपरीत करना चाहती है" इसलिए टेढ़ी दृष्टि से देखा। कोई कहते हैं— "भगवान् यदि सीधी दृष्टि से देखते, तो यह यही साधी हो जाती, इसलिए टेढ़े देखकर उसे टेढ़ी ही बनी रहने को बाध्य किया।" किन्तु हमारा तो मत है, "इस टेढ़ी टाँगवाले की सभी बातें टेढ़ी ही हैं। इसलिए इसकी चितवन भी सदा टेढ़ी ही होती है। कहीं घुसकर सीधी हो जाती है, कही टेढ़ी ही बनी रहती है। हाँ, तो फिर एक बार देखकर तुरन्त उन्होंने नेत्र बन्दकर लिये और और झपकियाँ लेने लगे।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् ने दूध पिलाने के लिए आने वाली मौसी को देखकर नेत्र क्यों बन्द कर लिये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज इस कारे की करतूतो के सम्बन्ध में कोई भी 'इदमित्थं' ऐसा ही है यह साधिकार नहीं कह सकता। अपने-अपने अनुमान लगाते हैं। कोई कहते हैं—"नन्द-नन्दन को लाज आ गयी, कि यह तो इतनी बन ठनकर दूध पिलाने आयी है, मैं इसके प्राण लेने वाला हूँ।" कोई कहते हैं—"भगवान् ने संकोचवश नहीं देखा कि मुझे अभयदाता कहते हैं, इसे मुझसे भय होगा।" कोई कहते है—"भगवान् नेत्र बन्द करके ध्यान कर रहे हैं, कि यह तो मुझे दूध पिलावेगी, मैं इसे इसके बदले मे कौन-सी वस्तु दूँगा।" बहुत से कहते हैं—"भग-वान् ने सोचा—"यदि इस राक्षसी से मेरी चार आँख हुई और

इसने मुझे नेत्र भरकर देख लिया, तो फिर यह अपने आपे में न रहेगी; शरीर की सुधि-बुधि भूल जायगी। उसी समय इसका मायावी रूप नष्ट हो जायगा। गोपिकाएं तथा दोनों माताएँ डर जायेंगी। व्रजभर में कोलाहल हो जायगा। धनुष बाण लेकर गोप आ जायँगे। रग मे भंग हो जायगी। गोपों द्वारा मरकर इसकी वह गति न होगी, जो मैं इसे देना चाहता हूँ।"

कोई कहते हैं—"भगवान् ने घृणा से नेत्र बन्द कर लिये, कि यह कसी बुरी लुगाई है, भीतर दुर्वासना भरी है ऊपर से चिकनी चुपड़ी सुन्दरी बन रही है। विष रस से भरी कनक के गगरी के समान इसे क्या देखें।" कोई कहते है, "भगवान् के उदर में असख्यों ब्रह्माण्ड भरे ये वे सब डर गये, कि भगवान् इसके पयके साथ विषको पी गये, तो हम सब स्वाहा हो जायँगे। इस पर भगवान् ने नेत्र बन्द करके भीतर की ओर देखा। अपनी दृष्टि को अन्तर्मुख करके सबको धैर्य बँधाया, कि कोई चिन्ता की बात नही विषका मैं प्रभाव न होने दूँगा।"

कोई कहते हैं—"भगवान् को तो विष पीने का अभ्यास नहीं सदा दूध पिया है। अब यह विष पिलाने आयी है। विष पीना शंकरजी पर आता है। मानो नेत्र बन्द करके शंकरजी का ध्यान कर रहे हैं।" कोई कहते हैं—"नेत्र बन्द करके भगवान् पूतना की उत्सुकता को बढा रहे हैं। बच्चा हाथ फैलाते ही गोदी में आ जाय, तो उसमें उतना आनन्द नही आता। कुछ दिन खिल- वाड करे मान करे, उपेक्षा दिखावे, तब लेने की उत्कण्ठा बढ़ती है, इसलिए उत्कण्ठा-वृद्धि के निमित्त झपकियाँ लेने लगे।"

कोई कहते हैं—"भगवान् ने सोचा, यह तो बनकर आयी है है माँ, यह कहती है मेरे पूत-ना, पूत-ना। मैं कहता हूँ मैं तेरा पूत हूँ मैं तेरा पूत हूँ। पुत्र वही है जो पुंनामक नरक से

को पार करे। अब सोचते हैं बड़ा होकर मैं इसे पार करूँ, तब तक तो मेरी माँ मुझमें भूत का आवेश समझकर डर जायगी। इसकी इच्छा मुझे दूध पिलाने का भी है। यह इच्छा इसकी शेष रह गयी, तो इसे पुनर्जन्म धारण करना होगा। अतः इसे दूध पीते ही पीते चुपके म प्राणों को पी जाऊँगा। मुझ पर भी कोई शका न करेगा और इसकी भी सद्गति हो जायगी यही सब सोचते-सोचते श्यामसुन्दर को शेष शंया की याद आ गयी और योगनिद्रा में झपकियाँ लेने लगे।"

कोई कहते हैं—"भगवान् ने सोचा यदि मैं नेत्र खोले रहूँगा, तो यह अपने भाव छिपाने को मेरी ओर न देखकर इधर-उधर देखने लगेगी। कही सकर्षण बलरामजी की इस पर दृष्टि पड गयी और उन्होने इसे क्रोध में भरकर चूस लिया तो जगम विष से स्थावर विष उतर जाता है। यह विषहीना हो जायगी। इस सुन्दरी को देखकर गोप झगड़ने लगेंगे—"मैं इसे अपनी घर वाली बनाऊँगा; मैं इसे अपनी घर वालो बनाऊँगा।" तब गोप-वंश में यह वर्णशंकरता उत्पन्न करेगी; अतः इसकी इति श्री कर दो।"

हँसकर शौनकजी ने कहा—"अब सूतजी कहते ही जाओगे, कहीं इसका अन्त भी करोगे? कोई कुछ कहता हो, तुम क्या कहते हो; तुम्हारा क्या मत है। भगवान् ने पूतना को देखकर क्यों नेत्र बन्द कर लिये।"

सूतजी बोले—'महाराज! मेरी बुद्धि मे तो कोई विशेष कारण दीखता नहीं। बाल सुलभ भंगी हैं। छोटे बच्चे प्रायः तनिक देखते हैं, पुनः नेत्र बन्द कर लेते हैं। इसी प्रकार यशोदा नन्दन ने शिशु सुलभ ललित लीला का अनुकरण किया।"

शौनकजी ने कहा--"सूतजी ! यही भाव सुन्दर हैं। हाँ तो उस बालघातिनी के भाव को किसी ने समझा क्यो नहीं।

सूतजी बोले—"अब महाराज ! समझने का वहाँ किसे अवकाश था, सभी लाला के जन्म के उल्लास मे अपने आपे को भूले हुए थे। नित्य ही सहस्रो स्त्री पुरुष बधाई देने लाला को देखने आते। गाँव की गोपियो ने ऐसी सुन्दरी स्त्री देखी ही नही थी। वह तो हाथ मे क्रीडा कमल लिए हुए साक्षात् लक्ष्मी-सी ही दिखायी देती थी, मानो अपने खोये हुए पति को घर-घर खोजती-फिरती हो। फिर कोई उस पर सन्देह क्यो करने लगा।"

उसने मद-मद मुसकराते हुए यशोदा मैया तथा अन्य गोपिकाओ से कहना आरम्भ किया—"आप तो मुझे क्यो जानती होगी। मेरा घर मथुरा मे हैं। मै एक वेदपाठी विप्र की बडी बहू हूँ। मैंने सुना नन्दरानी के वृद्धावस्था मे बेटा हुआ है, वे सबको मनमानी वस्तु बाँट रही है। नारायण की दया से मेरे यहाँ किसी बात की कमी तो है नही, मुझे कुछ लेना तो है नही हाँ बालक को आशीर्वाद देना था, इसीलिए मैं दौडो-दौडो चली आयी।"

यशोदा मैया ने कहा— पण्डितानीजो, आपने बडी कृपा की; आपके ही आशीर्वाद से यह बच्चा जी जाय, बडा हो जाय।"

सैन चलाकर हाथ मटकाकर पूतना बोली—"तुम्हारा बच्चा जुग जुग जीवेगा। इसके बहुत से ब्याह हो, लाखो नाती बेटा हो। हाँ एक बात तो मैंने कहा ही नही। तुम देखती हो मेरी छाती मे कितना दूध भरा है। लाला मेरे दूध को पीले, तो फिर यह अजर अमर हो जायगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यशोदा मैया तथा रोहिणी मैया किसी को भी यह बात अभीष्ट नही थी, कि हमारे लाला को कोई अपरिचिता महिला दूध पिलावे, किन्तु वह एक अत्यन्त बनी

ठनी, सजी वजी, वडे घराने की भद्र महिला प्रतीत होती थी। वह अपने रूप के प्रकाश से नंद-भवन को प्रकाशित कर रही थी। उसके तेज से प्रभावित होकर इच्छा न रहने पर भी यशोदा जी तथा रोहिणीजीने दूध पिलाने मे अपनी स्पष्ट असम्मति प्रकट न की। दोनो माताओ की मौन-स्वीकृति समझकर उस मायाविनी महिला ने शैया पर सोये हुए श्यामसुन्दर को रहस्यमयी दृष्टि से देखा। वह नही जानती थी, कि ये दुष्ट जनो के काल हैं। शिशु रूप मे उसी प्रकार छिपे हैं, जैसे राख मे अग्निदेव छिपे हुए हों, रेशमी वस्त्र की कचुकी मे ढँके हलाहल विष से लिपटे उसने अपने वडे-वडे लम्बे और पुष्ट स्तन बाहर किये और झपटकर पलकिया पर से लालजी का उठा ही तो लिया। लालजी ऐसे भोरे बन गये, कि उन्होने ऐसा भाव प्रदर्शित किया, मानो मेरी माता ने ही उठाया हो। न तो रोय और न गोद मे आने मे आनाकानी की। उन्हे जो लेना चाहता है, उसकी गोद मे तुरत चले जाते हैं। पूतना की गोद मे लालजी लेट गये; या उसने लिटा लिया।"

छप्पय

मायातैं अति सुघर नारिको रूप बनायो।
मधुर मधुर मुसकाइ सबनिको चित्त चुरायो॥
महराने की समुझ रोहिणी विहसि बिठाई।
यशुमति समझीं नई बहू मथुरातैं आई॥
गगरी सोने की सुघर, भरि विष ढकितैंकें धरी।
त्यों ठगिनी गोरी बनी, कारेके पल्ले परी॥

—:⁎:—

पूतना-पयपान

[८५६]

तस्मिन् स्तनं दुजरवीर्यमुल्बणम्,
घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ ।
गाढ़ कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत्,
प्राणैः सम रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥*

(श्री भाग० १० स्क० ६ अ० १० श्लोक)

छप्पय

बनि अति सुन्दर नारि महलमहँ बैठी लुच्ची ।
गरल लपेटी दई लालके मुखमहँ चुच्ची ॥
हरिकूँ आयो रोष पकरिकर बोबो लीन्हीं ।
कचकचाइकें चढ़े घुटुमुनि मुखमहँ दीन्हीं ॥
पीवें पय प्रभु प्रान सग, अति अद्भुत छवि लालकी ।
मातु निहारति चकित चित्त, बनी अकबकी सी-बकी ॥

भक्तो की भेंट के लिये भक्तवत्सल भगवान् सदा भूखे प्यासे बने रहते हैं। भगवान् को वस्तुओं की चाह नही। उनके यहाँ मुल्यवान् अथवा साधारण इसका कोई अर्थ ही नही।

---

* श्रीशुकदेव जी कहते हैं—' राजन् ! व्रज म उस क्रूर स्वभाव वाली बकी ने शिशु रूप श्रीकृष्ण के मुख मे अपना दुजर विषयुक्त स्तन दे दिया। भगवान् भी उसे अपने दोनो हाथो से कसकर दबाते हुए रोष मे भर कर प्राणों के सहित उसके पय का पान करने लगे।'

उनकी दृष्टि मे या तो सभी मूल्यवान् हैं अथवा सभी साधारण। उन्हे चाहें छप्पन भोग लगाओ या एक तुलसी पत्र ही अर्पण कर दो। दोनो ही वस्तुओं मे से भाव ग्रहण कर लेंगे। वास्तव मे वे भाव के भूखे है। जो सात्त्विक भाव से उन्हे अर्पण करते हैं, सात्त्विक होकर पाते है। राजस् अथवा तामस् भाव से अर्पित करते हैं, तो राजसी तामसी बनकर पाते हैं। उन्हें जो जिस प्रकार भजता है, वे भी उसे उसी प्रकार भजते हैं। जो रोप से कपट से उनके सम्मुख उपहार लेकर आता है, उसके उपहार को कपट वेप रखकर रोप के साथ ग्रहण करते हैं, किन्तु परिणाम सभी का सुन्दर ही होता है। किसी भी भाव से भगवान् के समीप कोई क्यो न आवे, उसका मङ्गल ही होता है, उसकी दुर्गति न होकर सुगति ही होती है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! आँखे बन्द किये पड़े हुए लाल-जी को देखकर पूतना को भ्रम हो गया, कि यह भी साधारण सद्यःजात गोप बालक है, जैसे अपने स्तन का दुर्जर विप युक्त पय पिलाकर अन्य बालको को मार डाला है, उसी प्रकार इसे भी मार डालूँगी। यही सोचकर उसने श्रीकृष्ण को उसी प्रकार गोद मे उठा लिया, जिस प्रकार किसी सोये हुए सर्प को रस्सी समझकर कोई उठा ले, अथवा गुडमुड़ी मारे विच्छू को कोई बहुमूल्य मणि समझ कर उठा ले, अथवा पत्तेवालो के द्वारा डारे गये बनावटी सुवर्ण को सच्चा सुवर्ण समझकर कोई मार्ग मे से उठा ले, अथवा विप मिश्रित मोदको को कोई स्वादिष्ट मिठाई समझ कर उठा ले। अथवा विच्छू के पेड़ों को कोई सुदर साग समझकर हाथो से तोड ले। लालाजी का तो स्वभाव है, जो उन्हे बुलाता है, उसके पास जाते हैं, जो उन्हें प्यार करता है उससे सहस्र गुना प्यार करते हैं, जो उनसे छल करता है, तो उसे छल

स्वभाव है तमोगुणी, पहिले पहिल ओठो से विष का ही स्पर्श हुआ इसलिये तमोगुणी रोष हो आया। यदि ऊपर दूध होता नीचे विष होता तो पहिले पहिल हँस जाते। अथवा रोष का कारण

यह भी हो सकता है, कि भगवान् ने सोचा—"देखो, यह कैसी दुष्टा राक्षसी है। सर्पिणी को छोडकर या अत्यन्त व्यभिचारिणी को छोडकर कोई भी माता अपने बच्चे को मारना नहीं चाहती। यह स्तन पिलाकर मातृपद को कलंकित कर रही है, मैं इसे इसका

फल चखा दूँ।" अथवा रोष का कारण यह भी हो सकता है, कि स्तन पिलाने का अधिकार तो मेरी माँ को ही है या धातृ को है। मेरी माँ ने इसे धातृपद पर नियुक्त भी नहीं किया यह अपने आप धातृ बन गयी है तो जैसा देवता हो वैसी उसकी पूजा भी करनी चाहिये, इसने बल-पूर्वक मुझे छाती से चिपटाया है, मैं भी इसे बल-पूर्वक दबाकर इसका पारितोषिक दे दूँ, अथवा मेरे विचार से तो यही उचित जान पडता है कि दूध के भरे स्तनो को देखकर बालकृष्ण उनमे बछडे की भाँति हुड्ड मारने लगे। और उस पर कुपित हुए, कि इतने दूध को तुम ही भरे रहोगी ? मुझे न पीने दोगी। बालक जब स्तन को पान करता है तो कसकर माता के स्तन को पकड लेता है, इसलिए बडे-बडे स्तनो को अपने कोमल पल्लव सदृश करो से पकड पकड कर चुसुर-चुसुर करते हुए लालजी अपनी बनी ठनी धाय के दूध को उमग के साथ पीने लगे। पय के साथ उसके प्राणो को भी पीने लगे।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! पूतना तो भगवान् को विष और दूध दो वस्तु पिलाने आयी थी, भगवान् उसके प्राणो को भी क्यो पीने लगे। क्या यह अधर्म या लोभ नहीं हुआ। भगवान् ने बिना दी हुई वस्तु पर बल पूर्वक अधिकार क्या जमा लिया।"

सूतजी बोले— महाराज ! इन भगवान् मे यही तो विशेषता है। जो तनिक देने को बढता है, उसका सवस्व ल लेते हैं। बलि ने तीन पग पृथ्वी ही देने का तो सकल्प किया था, उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया। ये तनिक से सन्तुष्ट नहीं होत, जिसे अपनाते हैं उसका सर्वस्व हथिया लेते हैं। फिर दान के साथ कुछ सागता भी तो चाहिए। साग वाले से साग लेने के अनन्तर कुछ रूँगधोक भी तो माँगते हैं। दूध विष उसने स्वेच्छा से दिया, प्राण भगवान् ने रूँग मे ले लिये।

शौनकजी ने कहा—"हाँ, तो सूतजी भगवान् जब पय के साथ उसके प्राणो को भी पीने लगे, तो उसने कुछ कहा नहीं ?"

सूतजी बोले—"क्यो, महाराज! कहती क्यो नहीं। अब बताइए, बिना इच्छा के कोई किसी के प्राणो को पीने लगे, तो वह चिल्लायेगा नही। जिस समय भगवान् समुद्र को विष के लिए मदराचल से मथ रहे थे, उस समय समुद्र उछल रहा था अपनी तरगो द्वारा अहर-अहर शब्द करता हुआ अजित भगवान् को मनाकर रहा था, किन्तु भगवान् ने उसके करुण क्रन्दन की ओर ध्यान ही न दिया। मथकर विष निकाल ही लिया। आज भी मानो वे समुद्र के स्थान मे पूतना के स्तनरूपी सुमेरु शिखर को अपने मुख रूपी रई द्वारा ओठो की रज्जु से मथ रहे हों। प्राणो के पान करने से पूतना के सम्पूर्ण मर्म स्थानो मे पीडा होने लगी। वह मोटी भैंस के समान अपने स्तनो को हिलाती हुई, हाथ पैरो को फट फटाती हुई इधर से उधर दौडने लगी और बारबार कहती-' अरे छोड दे, अरे छोड दे।" उस समय बालकृष्ण उसके स्तनो से लटके ऐसे प्रतीत होते थे मानो—बडे भारी कटहल के तने मे लम्बा-सा फल लटक रहा हो। जब उसकी पीडा अत्यन्त बढ गयी, तो बोझ से थकी घोडो की भाँति वह विवश होकर गिर गयी और चिल्लाने लगी—"छोड दे, छोड दे।"

बालकृष्ण तो सात ही दिन के थे, उत्तर कैसे देते ? चूची को मुख मे दबाय ही दबाये उसकी ओर देखने लगे; मानो संकेत से कह रहे हो—"मौसी जी ! पहिले तो मै किसी को पकडता ही नहीं; पकडता हूँ, तो फिर छोड़ता नही। पकडकर छोड़ना तो मैंने अपने गुरु से सीखा ही नही।"

अब राक्षसी क्या करती, वह बार-बार हाथ पैर पटकने लगी, रोने चिल्लाने लगी, उसके नेत्र फट गये, सम्पूर्ण शरीर पसीने से लथपथ हो गया। उसके मुख से चीत्कार के सहित भयङ्कर शब्द निकलने लगा। उस अत्यन्त भयावह शब्द से पर्वतो सहित पृथ्वी डगमगाने लगी। अन्तरिक्ष में ग्रह, नक्षत्र और तारे अपने अपने स्थान से हटने लगे। साता पाताल खलबलाने लगे। दशा दिशाएँ गूँजने लगीं। लोगा ने समझा अवश्य ही कही वज्र-पात हुआ है, आशका से अनको लोग मूर्ति होकर भूमि पर गिर गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अत्यन्त व्याकुलता मे वह राक्षसी अपने मायावी रूप की रक्षा न कर सकी। हडबडाहट मे उसकी माया नष्ट हो गयी, वह अपने यथाथ राक्षसी रूप मे प्रकट हो गयी। उस समय उसकी आकृति अत्यन्त ही भयावह थी। पर्वत की कदरा के समान उसका मुख था। हलकी फार के समान उसकी तीक्ष्ण दाढें थो, खूँटे के समान उसके आगे के दाँत थे। सूप के समान उसके दोनो कान थे। पहाड के विवर के समान उसकी दोनो आँखें थीं। लप-लप करती हुई उसकी जीभ लप-लपा रही थी। सिर के कठोर बाल अस्तव्यस्त भाव से इधर-उधर बिखर रहे थे। हाथो और पैरो को छटपटा रही थी, अत्यन्त पीडा होने से वह टूटी पर्वत की चट्टान के समान धड़ाम से धरती पर गिर पडी। गोष्ठ मे गिरते ही वह उसी प्रकार मर गयी, जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से वृत्तासुर मर गया था।"

छप्पय

अरे, छोड़ दे लाल ! छोड़ दे बकी पुकारे।
किन्तु लालकी बानि पकरिकें अवसि उबारे॥
हाथनि पाँइनि पटकि पटकि के हा हा खावे।
दैया बप्पा मरी राँड़ कहि कहि डकरावे॥
चूची में पीड़ा अधिक, माया वाकी खुलि गई।
मुँह फाट्यो निरजीव ह्वै, बाल बखेरें गिरि गई॥

मरी पूतना की भयंकरता

[८५७]

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र ! महदासीत्तदद्भुतम् ॥*
(श्री० भा० १० स्क० ६ अ० १४ श्लो०)

छप्पय

गिरी पूतना तुरत नाश सब व्रज को कीन्हों।
कंस बाग छै कोस ताहि चौपट करि दीन्हों॥
मुख मानो–गिरि गुहा दाढ़ि खूँटा सम ताकी।
चूची पर्वत शिखर आँखि कूआ सम वाकी॥
सूखे सर सम उदर अति, थूल देह पग सेतु सम।
डरपे गोपी गोप गन वज्र गिर्‌यो अस भयो भ्रम॥

सत्य और माया दोनो देखने मे तो एक मे प्रतीत होते हैं, किन्तु अन्तर इतना ही है, सत्य तो सनातन है, वह सदा बना रहता है, माया अधिक समय तक टिकती नही। आपत्ति विपत्ति तथा सकट आने पर सत्य अधिकाधिक खरा सिद्ध होता है, किन्तु माया तनिक-सा सकट आते ही खुल जाती है, बनावट के पैर भी

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! पूतना के मृतक शरीर ने गिरते-गिरते भी छः कोश के वृक्षो को कुचल डाला। देखो, यह कैसी अति अद्भुत घटना हुई।"

बनावटी होते हैं, वे तनिक-सी ठेस मे ही उखड जाते हैं ! इसीलिए माया का प्रभाव क्षणिक होता है । असत्य का प्रभाव स्थाई नहीं होता है । अधिक दिन तक नहीं चलता । बनावट जब खुलती है, तो भली भांति खुल जाती है, तब लोगों को उसकी भयकरता प्रतीत होती है, कि किस प्रकार यह विष से भरा कनक का घट था । ऊपर से चमक रहा था, भीतर भयावह था, भगवान् तो माया के पति हैं उनके सम्मुख कोई माया करके भी जाता है, तो उसका भी कल्याण कर देते हैं । एक कथा है, कोई राजकुमारी थी, भगवान् की पूजा करती थी । कोई अन्य राजकुमार उसे वश मे करना चाहता था । उसने अनेक उपाय किये किन्तु राजकुमारी ने उसकी ओर देखा तक नहीं । तब उसने माया का आश्रय लिया । उसने एक बनावटी गरुड बनाया, अपने बनावटी दो हाथ लगाये किरीट मुकुट पहिनकर विष्णु का वेष रखकर वह किसी प्रकार राजकुमारी के पास जाने लगा । राजकुमारी को बडी प्रसन्नता हुई । वह उसकी पूजा करने लगी । ऐसे कई दिन हो गये । किसी ने राजा को समाचार दिया, राजकुमारी किसी से बात करती है । छिपकर राजा ने देखा । वे हाथ में नग्न खड्ग लेकर गये । जब उन्होने देखा अवश्य कोई है, तो वे क्रोध मे भरकर गये । राजकुमार डर के कारण कांपने लगा । वह सर्वात्मभाव से भय के कारण भव-भयहारी भगवान् की विनय करने लगा । उसका ऐसा चित्त एकाग्र हुआ कि वह निर्जीव गरुड सजीव होकर उसे लेकर उड गया । वेष तो उसका बनावटी ही था, किन्तु भगवान् का वेष था, उसके साथ भगवान् का साम्य सम्बन्ध था, अतः अपने वेष की लाज रखने को भगवान् ने उसकी रक्षा की । दैत्य भगवान् को शत्रु समझकर क्रोध-पूर्वक उनका स्मरण करते हैं, उनसे युद्ध करते हैं । किसी भाव से सही, कैसे भी

सही, उनका सम्बन्ध तो भगवान् से है। भगवान् उसी सम्बन्ध से उन्हें तार देते हैं, उनके क्रोध, दुर्गुण तथा माया की ओर ध्यान नहीं देते।

सूतजी कहते है—"मुनियो! पूतना जीवितावस्था में तो बड़ी सुन्दरी बहू बनकर आयी थी। मरने पर वह बडी विकराल हो गयी। उसका शरीर भूत की भाँति, कामवासना की भाँति, लोभी-की धन इच्छा की भाँति तथा रुई में लगी अग्नि की भाँति बढ़ने लगा। जीवितावस्था में तो उसने सहस्रों बालकों को मारा ही था, मरते समय गिरते-गिरते भी उसने लाखों वृक्षों को चकनाचूर कर डाला, उसका शरीर इतना बढ़ा कि छः कोश के जितने वृक्ष थे, सब चकनाचूर कर दिये। लोग देखकर परम आश्चर्य मे रह गये, कि राक्षसी का शरीर छै कोश लम्बा हो गया और उसके शरीर के नीचे जितने भी वृक्ष दबे, वे सब कुचल गये, टुकड़े-टुकड़े हो गये।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! गोकुलजी से मथुराजी तो दो कोश भी नहीं है, तब तो मथुरापुरी भी चकनाचूर हो हो गयी होगी यमुनाजी का प्रवाह भी रुक गया होगा?"

इस पर हँसकर सूतजी बोले— 'अजी, महाराज! भगवान् के द्वारा भला इतनी भूल कैसे हो सकती है। गोकुल से मथुरा है उत्तर की ओर, जिसका भगवान् ने दूध पिया, जिसे माता बनाया, मरते समय उसका मुख उत्तर को ओर कैसे करते? तब उसकी सद्गति कैसे होती। भगवान् ने उसे दक्षिण की ओर-दाऊजी की ओर-मुँह करके फेंका। उधर कंस का छः कोश का एक सुन्दर बगीचा था। उसी का लाठी उसी का सिर; उस बगीचे मे फेंका कि मामा का इतना घना बाग गुल्ली डंडा खेलने का स्वच्छ स्थान हो गया।"

शौनकजी ने कहा—"अच्छा जब वह मथुरा की ओर नहीं फेंकी गयी, तो मथुरा से लौटते समय नन्दादि गोपो को उसका मृतक शरीर मार्ग मे कैसे मिला।"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! सिर ही तो उसका दक्षिण पूर्व के बीच मे गिरा; पैर तो उत्तर की ही ओर गिरे थे। ज्यो ही नन्दादि गोप यमुनाजी को पार करके आये, कि पहाड सी पडी वह पूतना दिखायी दी।'

शौनकजी ने कहा—"अब सूतजी ! क्या कहे छ. कोश लम्बी लुगाई तो हमने कभी देखी नही। आप शास्त्रीय बात कह रहे हैं, उसे काट भी नही सकते।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! वह साधारण लुगाई थोडे ही थी, राक्षसी थी। माया से मेहरारू बन गयी थी। उसका मुख ऐसा था मानो पाताल का बडा भारी विवर हो। उसकी दाँढे ऐसी थी, मानो हलकी फालें हो। नासिका ऐसी थी मानो सुमेरु पर्वत के शिखिर मे दो बडी-बडी गुफाएँ हो। उसके दोनो स्तन ऐसे थे, मानो अजन पर्वत के दो टुकडे पडे हो। उसके कडे-कडे लाल-लाल, बिखरे हुए बाल ऐसे लगत थे, मानो मकई की भुट्टियो मे से बहुत-सा सूत निकालकर किसी ऊँचे पर्वत पर बिखेर दिया हो। उसकी आँख ऐसी लगती थी, मानो दो बिना जल के अधे कूएँ हो। तीन कोश लम्बी-लम्बी जघाएँ ऐसी लगती थी, मानो महानदी के दोनो शरद कालीन तट हो। उन जघाओ के नीचे के घुटने और पैर तथा उनके ऊपर पडे हुए दोनो हाथ ऐसे लगते थे, मानो नदी के ऊपर किसी ने पीपो का ऊँचा नीचा पुल बाँध दिया हो। बडा भारी लम्बा चौडा पेट जो मरने के कारण पिचक गया था, सूखे सरोवर के समान दिखायी देता था।"

पूतना के ऐसे भयकर शरीर को देखकर समस्त गोप गोपी-

गण भय के कारण थर-थर काँपने लगे। सब आश्चर्य चकित होकर इधर-उधर रहस्यभरी दृष्टि से परस्पर मे एक दूसरे को निहारने लगे। वे ऐसे डर गये थे, कि सहसा उनके मुखसे कोई शब्द नही निकलता था। जब भगवान् उसके प्राणो को पय के साथ मिलाकर पी रहे थे, तब उसने महान् चीत्कार किया। उसके उस कर्ण कटु अत्यन्त भयकर चीत्कार से समस्त व्रजवासियो के हृदय प्रथम ही व्यथित हो गये थे सबके कान सुन्न पड गये थे। मस्तिष्क मे चक्कर-से आने लगे थे, अब इसके अद्भुत भयकर रूप को देखकर तो उनका रहा सहा धय भी छूट गया।

और सब तो भयभीत हो रहे थे किन्तु बालकृष्ण उसके वक्ष स्थल पर निर्भय हुए पडे थे। उनका मुख उसकी चूची मे लगा था। वे हाथो को फटफटाकर ऐसे खेल रहे थे, मानो—मामा के भेजे खिलौने से खेल रहे हो। अपने पुत्र को विपत्ति के मुख मे देखकर कितनी भी भारी विपत्ति क्यो न हो, मातृ-हृदय नही मानता, उससे नही रहा जाता। विपत्ति के सिर पर पैर रखकर माता अपनी सन्तान की रक्षा करती है। यशोदा मैया ने जब देखा, यह दूध पिलाने वाली राँड तो कोई राक्षसी निकली, तब तो वे बालक को उठाने के लिए दौडी। रोहिणी मैया को भी तब तक चेत हो गया था, वे भी नंदरानी को दौडते देखकर राक्षसी की ओर दौडी। घर की दासियो से भी न रहा गया, वे दोनो माताओ से आगे दौडकर राक्षसी की छाती पर चढ गयीं और लालजी को उठाकर मुट्ठी बाँधकर उसी प्रकार भागी जैसे कोई जलती अग्नि मे से बच्चे को निकाल कर भागती है।

आकर गोपियो ने लालजी को माताजी की गोद मे दिया। लालजी को गोद मे सभी का भय जाता रहा, क्योकि प्रभु तो अभयदाता ठहरे। उन्हे अपना भय तो रहा नही, बालक के

विषय में उन्हे भय बना ही रहा। न जाने बच्चे को क्या हो गया ? इस राक्षसी ने न जाने क्या जादू टोना कर दिया ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जो विश्व ब्रह्माण्डों की रक्षा करते है, उन विश्वम्भर की गोकुल की गोपिकाएँ गोपुच्छादि से रक्षा करने लगीं।"

छप्पय

छातीपै प्रभु परे प्रेमतें करत किलोलें।
मामा भेज्यो बँध्यो खिलौना मानों खोलें॥
नहिँ भय नहिँ कछु रोप सरकि इततें उत आवें।
मैया हाहाकार करे गोपी घबरावे॥
भई रोहिणी विकल अति, गिरी लिये बलरामकूँ।
झपटि एक गोपी तुरत, ले आई घनश्यामकूँ॥

जगरत्तक की गोपियों द्वारा रत्ता

[दश्८]

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू,
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।
हृद् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठम्,
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥*
(श्री भाग० १० स्क० ६ अ० २२ श्लो०)

छप्पय

धरि धीरज गो-पूँछ लाल अँग-अँग घुमाई।
द्वादश गोबर तिलक करे गोरज लिपटाई॥
करिकर अङ्गन्यास नाम पढि मन्त्र उचारें।
पद अज रत्ता करें जानु मणिमान सम्हारें॥
यज्ञपुरुष उरु उभय की, कटि अच्युत केशव हृदय।
हयग्रीव प्रभु उदर की, ईश होहिं हियपै सदय॥

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! गोपिकाएँ बालकृष्ण की रक्षा करती हुई कह रही हैं—'अज भगवान् तेरे चरणों की रक्षा करें, मणिमान् जानुओं की यज्ञ पुरुष ऊरुओं की, अच्युत कटि की, हयग्रीव उदर की, केशव हृदय की, ईश वक्षःस्थल की, सूर्य कण्ठ की, विष्णु भुजाओं की, उरुक्रम मुख की और ईश्वर तेरे सिर की रक्षा करें।'

एक संत थे; उनके पास एक जिज्ञासु गया, उसने पूछा—"संतजी ! भगवान् को कैसे पावें ?" संतजी ईख की पौध को एक ओर से उठा-उठाकर दूसरे खेत में लगा रहे थे; उन्होंने सरलता से कहा—"भगवान् को पाने में क्या प्रयास ? मन को इधर से पट्ट करके उधर रखो, जो मन अब तक स्त्री, पुत्र, पति, मित्र, सखा, स्वामी आदि में लगा, उसे ज्यों का त्यों उठाकर भगवान् में लगा दो ।"

बात बड़ी सुन्दर है किन्तु संतजी को जितनी सरल दिखायी देती है, उतनी हम साधारण जीवों के लिए सरल है नहीं। भगवान् का रूप तो हमने देखा नहीं, भगवान् के स्पर्श का तो हमने अनुभव किया नहीं । संसारी रूप को हमने देखा है, उसमें हमारा मन फँस गया है, स्त्री, पुत्र के स्पर्श सुख का हमने अनुभव किया है । मन उसमें इतना आसक्त हो गया है, कि वह भगवान् की कल्पना ही नही कर सकता । ठीक जितना हम अपने पुत्र से प्यार करते हैं, उतना ही भगवान् से करने लगें, तो बेड़ा पार है । संसार सौन्दर्य में तो हमारे नेत्र गड़ जाते हैं, किन्तु भगवद्-विग्रहों के दर्शन करके हृदय द्रवित नहीं होता । किसी प्रकार जैसे तैसे भगवान् में किसी सम्बन्ध से उनके किसी रूप में संसार की ही भाँति आसक्ति हो जाय तो भगवान् वैसे ही बन जाते हैं। ज्ञानी लोग योगी-गण कहते हैं, भगवान् सर्वगत हैं, सर्वव्यापक हैं, ईश्वर हैं, किन्तु सर्वव्यापक के दर्शन इन चर्मचक्षुओं से होते नहीं, उनके लिए दिव्य चक्षु चाहिए । दिव्य देह चाहिए । इस प्राकृत देह मे उसके प्रति प्रेम हो जाय, यह ऐश्वर्य से नहीं हो सकता। माधुर्य के द्वारा ही इसका अनुभव होता है । ऐश्वर्य में निर्मुक्त प्रेम होता नहीं, उसमें भय बना रहता है । हृदय खोलकर प्रेम नहीं कर सकते । छाती से छाती सटाकर अपने प्रेमास्पद से

नही मिल सकते। माधुर्य मे सब कुछ हो सकता है। रागानुगा जो भक्ति है, जो भगवान् से कोई सम्बन्ध स्थापित करके की जाती है, उसमें ऐश्वर्य का अभाव रहता है। कृष्ण हमारे सम्बन्धी हैं। उनमे हमारा यह सम्बन्ध है, इस सुख की कल्पना वही कर सकता है जिसका उस रस मे प्रवेश हो। वहाँ ऐश्वर्य की गन्ध भी नही, कि ये सर्वेश्वर हैं, लक्ष्मी के पति हैं, इन्हे हम क्या दे सकते हैं। नही, माधुर्य मे वे लाल्य होते है वात्सल्य रस मे श्रीकृष्ण की सब प्रकार से रक्षा करनी पडती है। एक कथा है—एक बुढिया का गोपालजी मे वात्सल्य भाव था। वह गोपालजी को अपना बच्चा मानती थी, कुछ दिनो मे साधना करते-करते गोपाल जी उससे बातें करने लगे, और इधर-उधर आँगन मे घुटुओ चलने लगे। बुढिया दिन भर उन्ही की देख-रेख मे लगी रहती। मेरा लाला बडा चञ्चल है कही बरोसी की आग मे हाथ न देदे कही इधर-उधर न चला जाय। वह गौ भी दुहती तो लाला के लिये, जो भी करती लाला के निमित्त ही करती। एक दिन उसने सुना—"गाँव मे भेडिया आ गया है।" बुढिया बडी भयभीत हुई, उसने सोचा—'ऐसा न हो, भेडिया मेरे लाला को उठा ले जाय। वह अत्यन्त निर्धन थी, घर टूटा-फूटा था, उसे भय लगा कही मेरी फूटी दीवाल से भेडिया न आ जाय। इसलिये रात्रि भर न सोती। डन्डा लिये बैठी रहती।

भगवान् ने सोचा—'यह तो बुढिया पर बडी विपत्ति आयी।" रात्रि में वे चतुर्भुज रूप बनाकर आये और किवाडें खटखटायी और बोले—"बुढिया! माँ! किवाड खोल।"

बुढिया ने कहा—"तू कौन है?"

भगवान् ने कहा—"मैं विष्णु हूँ, तुझे वर देने आया हूँ।"

बुढिया ने कहा—"मुझे विष्णु फिष्णु से क्या लेना। सम्भव है तू भेडिया ही हो, मेरे लाला को ही उठा ले जाय। मैं किवाड नहीं खोलती।"

भगवान् ने बहुत समझाया बुझाया, बुढिया ने किवाड खोली। चतुर्भुज रूप से भगवान् ने दर्शन दिये और वर माँगने को कहा।

बुढिया ने कहा—"यदि तुममे सचमुच वर देने की सामर्थ्य है, तो यही वर द, कि मेरे लाला को भेडिया न उठा ले जाय।" यह सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और बोले, "अरी, माँ भेडिया अब कहाँ है, वह तो भाग गया।" तब बुढिया को सन्तोष हुआ। यही शुद्ध माधुर्य भाव की उपासना है। जो विश्व की रक्षा करने वाला है, उसकी कुत्ता बिल्ली से, भूत प्रेत से रक्षा करने के लिये व्यग्र रहना यही वात्सल्य भाव की पराकाष्ठा है, व्रज के अतिरिक्त इस भाव की उपलब्धि अन्यत्र कठिन है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब पूतना मरकर धडाम से धरती पर गिर गयी, तो उसके शब्द से ही गोप गोपी-गण मूर्छित से हो गये। माता रोहणी बालक को पकडने के लिये दौडी, किन्तु वे प्रेम मे विह्वल होकर मार्ग मे ही गिर गयी। यशोदा जी भी दौड़ी, तब तक ही किसी गोपी ने दौडकर लालजी को उठा कर यशोदा मैया की गोद मे दे दिया। लालजी नेत्र बन्द किये हुए थे। दोनो हाथो की मुट्ठी बाँधे हुए थे, मानो वे पूतना मौसी से कुछ दान दक्षिणा अपनी मुट्ठी मे दबा लाये हो। अब तो पूतना को तो सब भूल गयी। मिलकर सब यशोदाजी के चारो ओर घिर आयी। यशोदा मैया रोहिणी जी, के समीप लालजी को लेकर पहुँची। लालजी का स्पर्श पाते ही, वे उठकर खड़ी हो गयी। लालजी को देखकर उनके हर्ष का ठिकाना नही रहा।

गोपियाँ वात्सल्य भावो मे भोगी हुई बालकृष्ण की रक्षा करने के विषय मे भाँति-भाँति की चर्चा कर रही थी। कोई कहती--'यह चुडैल है चुडैल। कोई भूतनी बताती, कोई डाँकिनी, साकिनी, राक्षसी, यातुधानी तथा अन्यान्य बालघातनी ग्रहो के नाम लेती। कोई कहती—'मोर पख का झाडा दो, कोई नीम के पत्तो का झाडा बताती। कोई स्याना बुलाने को कहती कोई भूत प्रेत उतारने वाले को बुलवाने पर बल देती। इतने मे ही एक बूढी-सी गोपी ने कहा—"हमारे यहाँ भूत प्रेत का उपद्रव कैसे हो सकता है। हम सब तो वैष्णव हैं, श्रीमन्नारायण के उपासक हैं, गौएँ ही हमारी परम देवता है। जहाँ लोग अपने नित्य कर्मों मे भक्तो के भर्ता भगवान् के सुमधुर नामो का कीर्तन नही करते, उनके त्रैलोक्य पावन यश का गान नही करते, वही ऐसी राक्षसियो का बल बढता है। भगवान् का नाम गुण कीर्तन तथा श्रवण तो सभी प्रकार के भयो को दूर करने वाला है। उनके सम्मुख ये राक्षस राक्षसी क्या कर सकती हैं। गो की पूँछ का झारा दो, गोबर का तिलक लगाओ, माथे पर गोरज लगाओ। अगो मे भगवान् के नाम मन्त्रो को पढो सब ठीक हो जायगा।"

अत्यन्त दीनता के स्वर मे आँसू बहाते हुए यशोदा मैया ने उसी बुढिया गोपी से कहा—"चाचीजी! तुम ही बडी बूढी हो, मत्र तत्र झाड फूंक सब जानती हो। मेरे बच्चे का जैसा उचित समझो उपचार कर दो। तुम सब का बच्चा है, किसी प्रकार यह अच्छा हो जाय।"

बुढिया ने अपनी बात पर बल देकर कहा—"लाओ सब मिलकर करें। चलो, सब गौओ के गोष्ठ मे।" यह कहकर झुड की झुड गोपियाँ गोष्ठ मे पहुची। वहाँ उन्होने प्रथम सबसे

सीधी भाग्यवती श्यामा गौ की पूंछ से लालजी को झाड़ा। कई वार गौ-पूंछ को लालजी के समस्त अंगों पर घुमाया। फिर सुदर सुगंधित गोवर लेकर अगो पर लगाया, फिर गोमूत्र से स्नान कराया। फिर सब अग मे गौओ के खुर को रज लगायी। तदनन्तर ललाट मे कण्ठ मे, नाभि मे, हृदय मे, वाम और दक्षिण पार्श्व मे, मूर्धा मे, पीठ मे, दाये और बाये कान मे तथा दानो भुजाओ मे इन बारह स्थानो मे गोवर के तिलक लगाये। फिर सबने शुद्ध यमुनाजल से आचमन किया। फिर भगवान् के अज, मणिमान्, यज्ञपुरुष, अच्युत, हयग्रीव, केशव, ईश, सूय, विष्णु, उरुक्रम और ईश्वर इन ग्यारह वाज मन्त्रा से अपन अङ्गो में अङ्गन्यास तथा करन्यास किया। क्योकि स्वयं देवता बनकर ही देवता का पूजन करना चाहिए। लालजी के अङ्गो मे भी इसी प्रकार बीजन्यास किया। फिर भगवान् का नाम लेकर उनके सब अङ्गो की रक्षा करने की प्रार्थना करने लगी। गोपियाँ भगवान् के नाम मत्रो को पढती हुई प्रत्येक अङ्ग पर हाथ रखकर प्रार्थना करने लगी। मेरे लालजी, तुम्हारे लाल-लाल कोमल-कोमल छोटे-छोटे चरणो की रक्षा अज भगवान् करें। तुम्हारे सुन्दर जानुओ की रक्षा मणिमान् भगवान् करें, उरुओ की यज्ञपुरुष करें, केहरि के सदृश कमनीय कटि की रक्षा अच्युत भगवान् करें, पीपर के पत्ते के सदृश सुन्दर उदर की रक्षा हयग्रीव भगवान् करें। तुम्हारे हृदय की रक्षा क्लेशहारी केशव प्रभु करें। वक्षःस्थल की देख-भाल ईश करें और कण्ठ की भगवान् सूर्यनारायण देव। भुजाओ को विष्णु भगवान् सुरक्षित रखें, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे छोटे से बटुआ-से मुख की रक्षा करें, सिर की रक्षा ईश्वर करें, वे सिर मे पीडा न होने दें। लालजी! तुम्हारे आगे-आगे चक्र लेकर चलने वाले चक्री भगवान् रक्षा-

करते रहे। पीछे गदा को धारण किये हुए गदाधर भगवान् देख-भाल किया करें। कोई जगली जीव पीछे से मारने आवे तो गदा से उसका सिर तोड दे। तुम्हारे बायें पख बाडो की रक्षा धनुष धारण करने वाले भगवान् मधुसूदन करें तथा दायें पख वाड़े की रक्षा खड्ग धारण करने वाले अजन भगवान् करते रहें। चारो कोनो में शंखधारी उरुगाय भगवान् रक्षा करें।

मेरे प्यारे लालजी ऊपर से उपेन्द्र भगवान् तुम्हारी रक्षा करें, नीचे से अपने पखो को फटफटाते हुए गरुड़जी तुम्हारी सार सम्हार करते रहे। पृथ्वी पर हल को धारण करने वाले हलधर भगवान् तुम्हारी रक्षा करें और सब ओर से परम पुरुष तुम्हारी पूर्णरीत्या सब संकटो से रक्षा करें। लालजी! तुम्हारी इन्द्रियो की रक्षा हृषीकेश भगवान् करते रहे, प्राणो का पालन नारायण भगवान् करें, चित्त की सार सम्हार श्वेतद्वीपपति भगवान् करे। मन की रेख-देख सदा योगेश्वर भगवान् करें। बुद्धि की रक्षा पृश्निगर्भ भगवान् करें और अहङ्कार पर अपना अधिकार षडैश्वर्य सम्पन्न परमात्मा किय रहें। लालजी! जब तुम व्रज की वीथियो मे हम सब को सुख देते हुए कमनीय क्रीडाएं करो, तब तुम्हारी रक्षा गोविन्द भगवान् करे। जब मया थपकियाँ दे देकर तुम्हे "आजा री, नीदरियाँ काल कटे तेरी मूडरिया" कह कहकर लोरी दे देकर सुलावें, तब सोते समय नीद मे तुम्हारी रक्षा माधव भगवान् करें। जब तुम "पाँ पाँ पैया, गुर की डलियाँ।" कहकर पाँ पाँ पैयाँ चलो, तो उस समय चलने के काल मे वैकुण्ठ भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। जब तुम वैठो तव तुम्हारी रक्षा श्रीपति भगवान् करें। जब तुम मैया के हाथ से मम्मा करो—भोजन पाओ—तब समस्त क्रूरग्रहो को भयभीत

करने वाले यज्ञभुक भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। यदि तुम पर किसी डाकिनी, साकिनी, यातुधानी, तथा कूष्माण्डा आदि बाल-घातिनी ग्रह चढ आयी हो अथवा कोई भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना आदि क्रूरग्रह चिपट गयी हो अथवा शरीर, इन्द्रिय और प्राणों का नाश करने वाले उन्माद, अपस्मार आदि कोई रोग तुम्हारे शरीर मे घुस गये हो, अथवा जो उत्पात स्वप्न मे दिखाई देते हैं, उनमे से किसी उत्पात ने तुम्हे घर दबाया हो या कोई वृद्ध-गण की ग्रह या बाल-गण की ग्रह कही से भागती हुई तुम्हारे शरीर मे चिपट गयी हो, तो वे सब भगवान् विष्णु का नाम उच्चारण करत ही तुरन्त नष्ट हो जायँ, तुम्हारे सुन्दर शरीर को छोडकर ये सभी ग्रह, उत्पात, रोग, शोक आदि यहाँ से चले जाय "विष्णवे नम, विष्णवे नम., विष्णवे नमः!" यह कहकर गोपियो ने तालियाँ बजायी और लालजी के मुख की ओर देखने लगीं।

अपने ही नाम से अपनी रक्षा करते देखकर लालजी को हँसी आ गयी। वे अपने सुन्दर से बालचन्द्र मुख को फैलाकर हँस पडे। लालजी की हँसी को देखकर सभी के हृदय खिल उठे।

उसी बूढी गोपी ने यशोदा मैया से कहा— 'नंदरानी तुम लाला को अपना आँचल तो पिलाओ। बच्चा डर गया हो और फिर यदि दूध पीने लगे, तो समझना चाहिए, उसका डर भाग गया है। बच्चे क्षण भर मे डर जाते हैं, फिर क्षण भर मे उस बात को भूल जाते है।'

यह सुनकर माता ने शीघ्रता के साथ दूध से परिपूर्ण मातृ-स्नेह क भरे, अपने स्तन कंचुकी से निकालकर लालजी के मुख मे दिया। स्तन पाते ही लालजी चुसुर चुसुर करके पीने लगे।

लालजी को दूध पीते देखकर गोपियों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। वे बड़े उल्लास के साथ मिलकर कीर्तन करने लगीं—

"श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब लालजी दूध पी चुके, तो माता ने जाकर गुदगुदी शया पर उन्हें सुला दिया और स्वयं उन्हें झुलाती हुई गीत गाने लगीं।"

छप्पय

सूर्य कण्ठ, भुज विष्णु, उरुक्रम मुख, सिर ईश्वर।
रच्छे चक्री अग्र, हलायुध बाहर भीतर॥
मधुसूदन अरु अजन करें रच्छा पार्श्वनिकी।
पृष्ठ गदाधर, परमपुरुष शं सबहिं दिशनिकी॥
कौंणनिमहं उरुगाय प्रभु, हृषीकेष इन्द्रिय सकल।
श्वेतद्वीप पति चित्तकूँ, योगेश्वर मनकूँ प्रबल॥

पूतना की सद्गति

[८५६]

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽपसद्गतिम् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ६ अ० ३५ श्लोक)

छप्पय

अहङ्कार भगवान् बुद्धिकूँ पृश्निगर्भ प्रभु।
क्रीड़ामहँ गोविन्द शयन रक्षें माधव विभु ॥
चलिवेमहँ वैकुण्ठ बैठिवेमहँ रक्ष श्रीपति।
करें यज्ञ भुक् अशन माँहिँ भयतें कमलापति ॥
सुनि रक्षा हरि हँसि गये, स्तन पीयो कीयो शयन।
इत गोपिनि मगमहँ लख्यो, पर्यो पूतना-भीम तन ॥

जो जिनका स्वभाव होता है वे उसे छोडना भी चाहे तो नही छोड सक्त। पारस का स्वभाव है, लोहे को सोना बनाना, इच्छा से, अनिच्छा से, दिन मे रात मे, नया हो, पुराना हो, शुद्ध हो, अशुद्ध हो, कैसा भी क्यो न हो ससर्ग होते ही वह लोहे को

---

* श्री शुकदेवजी कहत है—'राजन ! देखिए, पूतना लोक के बालकों को मारने वाली थी, रक्त पीती थी तथा राक्षसी थी। उसने भगवान् को दूध पिलाया था, सो भी प्रेम से नहीं मारने की इच्छा से, इतने पर भी उसे सद्गति प्राप्त हुई।"

सोना बना देगा। यदि बीच मे व्यधान हुआ, तो पारस के समीप रहने पर भी उससे सटा रहने पर भी लोहा सुवर्ण न होगा।

अनावृत भाव से व्यवधान शून्य होकर उन्मुक्त भाव से परस्पर मे सट जाना चाहिए। एक तो अपने साधन द्वारा भगवान् की ओर बढते हैं। एक को भगवान् बल-पूर्वक अपनी ओर खीच लेते हैं। कैसे भी हो भगवान् से, काम से, क्रोध से, द्वेष से, भक्ति-भाव तथा सम्बन्ध से मन लग जाय, उनके समीप चला जाय, तो भगवान् न भी चाहे, तो भी उन्हे पार करना ही होगा। घाटपर नौका लिये मल्लाह खडा है। एक तो शुल्क देकर नौका मे बैठ जाते है, जिन पर पैसा नही होता, वे अनुनय विनय करके दीनता दिखाकर केवट की कृपा पाकर बैठ जाते हैं। एक को कैवर्त बल-पूर्वक बाँधकर खेल के लिए नौका मे डाल देता है। उसका तो काम ही पार करना है। अब वह उस नौका मे बँधे पड़े हुए को न भी चाहे तो भी पार तो ले जाना ही होगा। बीच मे तो छोड नही सकता। इसी प्रकार जो जप, तप, यज्ञ, अनुष्ठान, समाधि आदि कठिन साधनो द्वारा भगवान् को प्रसन्न करते है, वे भी ससार-सागर से पार होते है जो विद्या, बुद्धि, धन तथा अन्य-साधन न होने से दीन हीन है, साधन विहीन है, वे रोकर उनका नाम पुकारकर उनकी कृपा लाभ करके पार हो जाते है। कुछ ऐसे हैं, उनसे लडने आते हैं, तो भगवान् उन्हे अपने अस्त्रा स मार कर पार कर देते हैं पार तो सभी हो ही जायँगे, किन्तु पार जाने मे भी अन्तर है, किसी से प्रेम हो गया उसे अपना बना लिया, किसी को तरन-तारन बना दिया; किसी को पार करके छोड दिया। साराश यह है कि भगवान् के पास कैसे भी पहुँच जाओ, कैसे भी मन उनकी ओर खिच जाय, फिर कल्याण मे कोई सदेह नही।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर तो लालजी माता के स्तनो

को पान करके सुख-पूर्वक पलकिया पर सो गये। उधर नन्दजी अत्यन्त शीघ्रता के साथ शकित चित्त से नारायण का स्मरण करते हुए व्रज की ओर आ रहे थे। उन्हे वसुदेवजी की बात एक क्षण के लिए भी नही भूलती थी। ज्योही वे पार हुए, कि उन्हे पूतना का बडा भारी शरीर मरा पडा हुआ दिखायी दिया। देख कर सभी गोप चकित रह गये। अरे, यह तो कोई राँड, चुडैल दिखाई देती है। नन्दजी अत्यन्त आश्चर्य विस्मय और भय की भंगी प्रदर्शित करते हुए गोपो से कहने लगे—"भैया! वसुदेवजी को हम नही जानते थे कि ये सिद्ध हैं। अब हमे विश्वास हो गया कि नि सदेह वसुदेवजी कोई साक्षात् ऋषि ही हैं। मनुष्य रूप रखकर भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए हैं। उन्होने मथुरा मे बैठे ही बैठे उत्पात की बात बता दी। देखो, कोई चुडैल मेरे लाला के ऊपर आयी होगी। गोपो ने इसे मार दिया होगा, किन्तु इसके शरीर मे बाणो के घाव तो हैं ही नही। किसी और कारण से मर गया होगा। अब इसे यही पडी रहने दें?"

व्रजवासी तो भोरे होते ही है उनमे से एक गोप बोला—'बाबा! देखो, सर्पणी मर भी जाती है, तो भी पश्चिम की वायु लगते ही जीवित हो जाती है। ऐसा न हो यह राक्षसी कही पुन. जीवित न हो जाय, मेरी सम्मति तो यह है, कि इस राँड के अङ्गो को काटकर जला दो। न रहे बाँस न बाजे बाँसुरी।"

नन्दजी ने कहा—'हाँ भैया! ऐसा ही करो। काष्ठ तो यह छ कोश मे टूटा पडा है, इसके अगो को काटो और चिताएँ चुन-चुनकर उन पर इसके अङ्गो को रख दो।'

गोपो ने तुरन्त अपने पेड काटने के सैकडो कुल्हाडे निकाल और काटने लगे। काटते समय सबको दिव्य चन्दन की सुगन्धि आने लगी। काटकर जब उसके अङ्गो को जलाया तो उसके जल

शरीर से जो धुँआ निकलता था, उसमें दिव्य अगुरु की-सी सुगंधि आती थी।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! उस पापिनी के पापमय शरीर से जिसने लाखों बालको को विष दिया है, असख्यों प्राणियों के रक्त का पान किया है, उसम अगुरु की दिव्य सुगन्धि कैसे निकली?"

सूतजी बोले—"महाराज! अब वह पापिनी कहाँ रही। पारस स स्पर्श होने पर भी लोहा फिर लोहा रह सकता है क्या? भगवन्! उसके जन्म जन्मान्तरों के समस्त पाप तो भगवान् के स्तन पान करने से ही तत्काल नष्ट हो गये। मरते समय हृदय मे भगवान् की मनोमयी मूर्ति हो आजाय, सम्पूर्ण मूर्ति न भी आवे केवल उनके चरण कमलो की छाया ही दिखायी दे जाय, तो प्राणी ससार सागर से पार हो जाता है। मानोमयी मूर्ति की बात तो कौन कहे, जिसने मरते समय भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन किये, उनके छोटे छोटे नन्हे-नन्हे चरणों को अपने हृदय पर धारण किया, जिसकी चूँची को भगवान् ने अपने मुख मे देकर पान किया, अपने अरुण पल्लव से भी कोमल करो से जिसके स्तन को पकडकर दवाया, उसकी सद्गति होने मे भी कुछ सन्देह किया जा सकता है क्या? मरते समय ही उसका देहाभिमानी जीव दिव्य चिन्मय सूक्ष्म शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसी समय एक परम दिव्यमय विमान आया, वह सभी प्रकार की सुन्दर-सुन्दर साज-सामग्रियो से सजा सजाया था। उसमें बहुत से भगवत् पार्षद बैठे थे, उन्होने बड़े आदर से पूतना को बिठाया और भगवद् धाम मे ले गये। उसका जो ~ष्पाप शरीर बचा रह गया, उसमे अगुरुकी सुगन्ध उठना स्वभाविक ही था।"

अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करते हुए शौनकजी ने पूछा—"सूतजी पूतना ने ऐसा कौन-सा पुण्य किया था, जिसके कारण देवताओ के भी पूजनीय, लोकवन्द्य, भक्तो के हृदय मे निरन्तर विराजमान् रहने वाले भगवान् के चरण कमल मरते समय हृदय पर अवस्थित रहे।"

हँसकर सूतजी ने कहा—किसी पुण्य से ऐसा सौभाग्य थोड़े ही प्राप्त होता है, भगवान् मे भावना होने से ही ऐसा सुयोग मिलता है, भगवान् मे जो जैसी भावना करता है, भगवान् उसे वैसी गति अवश्य देते है।"

शौनकजी ने कहा—'भगवान् की इसमे स्तन-पान कराने की भावना कैसे हुई। इसे भगवान् के दर्शन कहाँ हुए ?"

सूतजी बोले—' महाराज ! जव भगवान् वामन रूप रखकर बलि के छलने के निमित्त उसके यज्ञ मे गये थे, तव उनका छोटा-सा सुन्दर सुकुमार सुगठित सुहावना शरीर बडा ही मनमोहक था। जो स्त्री उसे देखती वही अपने पुत्र की भाँति छाती से चिपटाने को अधीर हो उठती। उसी यज्ञ-मडप मे बलि पत्नी विंध्यावली के उदर से उत्पन्न एक रत्नमाला नाम की उनको कन्या थी। छोटे से वोना वामन को देखकर उस युवती कन्या की इच्छा हुई, इन्हे मैं अपना स्तन पिलाऊँ। यद्यपि वह जानती नही थी, कि ये भगवान् है, वह तो उनके नन्हे-से सुकुमार रूप को ही देखकर रीझ गयी। मन मे जो सकल्प उठता है, वह कभी न कभी अवश्य पूर्ण होता है, फिर भगवान् के सम्बन्ध मे उठा सकल्प तो अवश्य ही पूरा होगा। भगवान् ने मन ही मन उसकी अभिलाषा जानकर उसके सकल्प को करने का निश्चय कर लिया।

जब वह छोटा-सा छोरा भूत की भाँति बढने लगा, तव तो वह बलि-कन्या रत्नमाला को बड़ा खोटा दिखायी दिया, उसे उस

पर बडा क्रोध आया, वह वामन वटु को मारने के लिए दौडी। असुर की पुत्री थी, बडी बलवती थी, उसे अभिमान था, मैं वामन को मारूंगी, किन्तु महाराज बलि तो बडे धर्मात्मा थे, उन्होने उसे डाँट दिया—'क्या करती है जिसको हमने देने का वचन दिया है, उसे अवश्य देंगे। चल, उधर बैठ।"

बेटी होकर बाप की बात कैसे टालती। वध से तो निवृत्त हो गयी किन्तु बालक को मारने का उनके ऊपर क्रोध करने का सकल्प तो उसका रह ही गया। चित्र खीचने वाले यन्त्र के सम्मुख तुम हँसते हुए खडे हो जाओ हँसता हुआ चित्र खिच जायगा। रोते हुए या क्रोध करते हुए खडे हो जाओ, वैसा खिच जायगा। भगवान् को बेटा बनाने का सकल्प करो, भगवान् बेटा बन जायँगे, शत्रु बनाने का सकल्प हो शत्रु बन जायँगे। रत्नमाला के इस सकल्प को भी श्रीहरि ने स्वीकार किया। यही बलिपुत्री रत्नमाला व्रज मे पूतना होकर प्रकट हुई। पूर्व जन्म की भावनाओ को पूरा करने के निमित्त भगवान् ने उसका स्तन भी पान किया और अपने मारने के लिये प्रयत्न भी कराया। अन्त मे सद्गति हो गयी।"

शौनकजी ने कहा—'सूतजी! हमने तो सुना है, भगवान् के दर्शन होने पर फिर जन्म नही होता, जब रत्नमाला ने जान मे अनजान मे भगवान् के दर्शन कर लिये तो फिर उसे ऐसी भयकर राक्षसी योनि क्यों प्राप्त हुई?"

सूतजी बोले—'हाँ, महाराज भगवान् के दर्शन होने पर फिर संसार चक्र नही रहता। फिर भी अवतार रूप मे साकार होकर जब भगवान् प्रकट होते हैं तो जिन-जिन को उनके दर्शन हो जाते हैं उनके कर्म-बन्धन तो नष्ट हो जाते हैं, किन्तु भगवान् को देखकर जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावों की पूर्ति,

के लिये भगवान् एक दो या तीन शरीर देकर उन भावो की पूर्ति करते हैं उनकी मनोऽभिलाषाओ को पूर्ण करते हैं। उनके ये जन्म कर्म भागो को भोगने के लिये नही, किन्तु अपनी भावनानुसार भगवल्लीला आस्वादन के रस को भोगने के लिये होते है। बलि के सिर पर पैर रखकर उसे नापा था, किन्तु इन्द्र बनने की उनकी वासना थी, अगले मन्वन्तरो मे इन्द्र बनेंगे, फिर परम पद को प्राप्त होगे। दडकारण्य के ऋषियो न तो रघुनन्दन रूप मे श्री राघवेन्द्र को आशीर्वाद दिया, उनका आतिथ्य किया, फिर भो उनकी इच्छा उन्हें हृदय से सटाने का, उनके साथ रमण करने की थी इसलिये उन्हे गोपी शरीर देकर रमण कराया और अपनी नित्य लीला मे प्रवेश कराया। भगवान् तो वाञ्छाकल्पतरु हैं न ? वे तो सबकी समस्त इच्छाओ को पूर्ण करते हैं। जिन्हे आहार निद्रा मैथुनादि मे ही सुखानुभूति होती है, उन्हे वे ही देते हैं। कर्म के चक्र मे ही घुमाते है। भगवदर्शन होने पर कर्म बन्धन नही रहते।"

शौनक जी बोले—"हाँ, तो फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"महाराज उस राक्षसी के मृतक शरीर के धूएँ की दिव्य गन्ध को सूँघकर समस्त गोप परम विस्मित हुए। वे इस रहस्य को समझ ही न सके। नन्दजी का हृदय धक्-धक् कर रहा था। उन्हे पग-पग पर अपने प्यारे पुत्र के अनिष्ट की आशका दवा रही थी। गोकुल मे पहुँचते ही गोपो के मुख से पूतना के आगमन का, लालजी को दूध पिलाने का तथा उसके मरकर गिरने का समस्त समाचार सुना। सुनकर वे परम व्याकुल हुए। विना हाथ पैर धाये ही वे भीतर अन्त.पुर मे दौडे गये। मेरा बच्चा कुशल-पूर्वक है, इससे उन्हे मन ही मन अत्यन्त प्रसन्नता हो रही थी, इतनी बडी पूतना कैसे मारी गयी, इससे उन्हे परम

विस्मय हो रहा था। इसी प्रकार के द्वैधी भाव से भावित हुए वे घर में घुस गये। लालजी एक पलकिया पर पढे झपकियाँ ले रहे थे। मैया उन्हें झुला रही थी, उनके मनोहर मुख कमल को अपलक भाव से निहार रही थी, कि सहसा ब्रजराज ने जाकर बच्चे को पलकिया से उठा लिया। बार-बार उनके छोटे से गोल-गोल बटुआ-से गोल आरसी जैसे नन्हे-नन्हे कपोलो को चूमा। मृत्यु के मुख से बचे हुए अपने बच्चे को चूमते-चूमते वे अघाते नहीं थे। सहसा अपने प्राणनाथ को देखकर यशोदा मैया चौंक पडी। सिर नीचा करके उन्होने आंचल सम्हाला और लजाते हुए बोली—"महर! आप मथुरा से कब आये? यहाँ तो बडा अनर्थ होने वाला था। नारायण ने ही रक्षा की। नही तो आज हम कही के भी न रहते। युग-युग की साधना के अनन्तर जो हमने निधि पायी थी, वह आज छिनने वाली थी, तुम तो उदासीन ही रहते हो। यह कहकर नदरानी रो पडी और रोते-रोते ब्रजराज के चरणो के निकट गिर पडी। एक हाथ से लालजी को सम्हालते हुए ब्रजराज ने अपनी प्राणप्रिया को उठाया और अत्यन्त स्नेह से वे उनकी पीठ को थपथपाते हुए बोले—"महरि! हमारे तो सर्वस्व श्रीमन्नारायण ही हैं। वे ही सर्वत्र मगल करेंगे। हमारा क्या है, नारायण का यह बच्चा है। उन्होने ही दिया है वे ही सकटो से रक्षा करेंगे, पाल-पोसकर बडा करेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् कितने दयालु हैं, पूतना राक्षसी थी, बनावटी माता का उसने वेप मात्र बना लिया था। उसके वेप पर ही रीझकर भगवान् ने उसे उत्तम गति प्रदान की, फिर जिन्होने उन सर्वेश्वर श्रीकृष्ण को सगी माता के समान अपना समस्त स्नेह बटोरकर श्रद्धा-भक्ति से उनकी अभिलाषाही वस्तुएँ प्रदान कीं, उन गोपियों को वे कौन-सी गति देंगे। इस

विषय मे मेरी बुद्धि विमूढ-सी बन जाती है। देखिए, पूतना ने कोई सुकृत कर्म तो किया नही, छोटे-छोटे निरपराध बच्चो का वध ही तो किया था। उसने कोई भगवान् का भोग लगाकर उत्तम नैवद्य खाया हो, सो भी बात नहीं, वह राक्षसी कच्चे रुधिर का पान करती थी। भगवान् को भी वह विष पान कराने ही आयी थी। स्तन-पान का तो उसने ढोंग रचा था, किन्तु कैसे भी सही स्तन-पान तो कराया ही। इसी स्तन-पान के कारण उसे मुक्ति दी। दूध पीने के उपलक्ष मे उसे परम पद दिया। फिर जिनके स्तन का भगवान् ने पान किया, उन माताओ और गौओ के सम्बन्ध मे तो कहा ही क्या जा सकता है। क्या उनको फिर कभी अज्ञानजन्य संसार की प्राप्ति हो सकती है?'

शौनकजी बोले—'सूतजी! आपने यह पूतना मोक्ष की कथा तो बडी ही अद्भुत सुनायी। इसे सुनकर तो भगवान् की दयालुता भक्तवत्सलता शरणागत-प्रतिपालकता पर रोना आता है। अच्छा तो इस लीला श्रवण का माहात्म्य भी हमे सुना दीजिए।"

सूतजी बोले—"महाराज! जो पुरुष छोटे से मुनमुना सात दिन के बालकृष्ण की इस 'पूतना मोक्ष" नामक अद्भुत लीला का श्रद्धा भक्ति के साथ एकाग्रचित्त से श्रवण करेंगे, उनकी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणारविन्दो मे अविचल भक्ति होगी। उनके पादपद्मो मे प्रगाढ प्रेम होगा। इस विषय मे संदेह नही। मुनियो! इतनी कथा सुनकर मेरे गुरुदेव भगवान् शुक चुप हो गये। भगवान् को चुप होते देखकर श्रीकृष्ण-लीला रस के रसिक महाराज परीक्षित उनसे पुनः प्रश्न करने लगे। उन्होने जो प्रश्न किया उसे मैं आगे कहूँगा आप सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

कृष्ण करनितैं मरी पूतना सद्गति पाई।
काटि कूटि सब अङ्ग गोप मिलि आँच लगाई॥
विष पिआइवे द्वेष भाववश दुष्टा आई।
दई धाय-गति श्याम बकी निज लोक पठाई॥
बकी परमगति की कथा, पढ़ें सुनें जे नेमतैं।
इह सुख भोगें अन्तमहँ, पाहिँ परमपद प्रेमतैं॥

लालजी का करवटन और जन्मनक्षत्रोत्सव

[८६०]

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी,
समागतान् पूजयती व्रजौकसः।
नैवाश्रृणोद् वै रुदितं सुतस्य सा,
रुदन् स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥*
(श्रीभाग० १० स्क० ७ अ० ६ श्लोक)

छप्पय

कहें करीक्षित—प्रभो ! अपर हरि चरित सुनावें।
भक्तनि सुख हित श्याम अवनिपै तनु धरि आवें॥
बोले शुक सुनु भूप ! श्याम ने करवट लीन्हीं।
मैया अति मन मुदित बुलावो व्रज महँ दीन्हीं॥
आई गोपी चाव लै, सजी बजी सब आज हैं।
जन्मोत्सव करवट-बदल, एक पन्थ द्वै काज हैं॥

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जन्म नक्षत्र के तथा करवट बदलने के उत्सव मे समागत व्रजवासी गोप-गोपियों का सत्कार करने में माता यशोदा तल्लीन थीं, उसी समय श्यामसुन्दर की आँखें खुली, वे स्तनपान के लिए रोने लगे। किन्तु धूम-धड़ाके मे मैया को लालजी का रोना सुनायी नहीं दिया, तब रोते-रोते श्याम ने पैर फटफटाये।"

माताओ को अपनी सन्तान की शुभ कामना की अत्यधिक चिन्ता रहती है। मेरी सन्तान का मङ्गल हो इसके निमित्त वह जप, तप, पूजा, पाठ, देवता, पितर, भूत, प्रेत तथा सेट शीतला न जाने किन-किनका पूजन करती हैं, किन किनकी मनोती मनाती हैं ? कोई भी पहिला काम हो उसके लिए उत्सव करती है, प्रसूति गृह से बाहर होने का उत्सव प्रथम स्नान का उत्सव, प्रथम उबटन तैलमर्दन का उत्सव, घुट्टी पीने का उत्सव, करवट बदलने का उत्सव, अन्न प्रासन का उत्सव, उत्सव ही उत्सव है। बच्चे का मुख ही उत्सव है, उत्साह और मातृ स्नेह स ही तो माता के स्तनो मे दूध आता है, सन्तान के लिए माताओ को जो भी कुछ करने मे आनन्द आता है, उतना अपने शरीर के लिए करने मे आनन्द नही आता। सन्तान भीतर के हृदय का एक भाग है, वह तो बाहरी प्राण है। माता का सजीव हृदय और मूर्तिमान् उल्लास तथा साक्षात् प्रसन्नता सन्तान ही है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब पूतना की कथा और उसका फल स्तुति कहकर भगवान् व्यास-नन्दन शुकदेव मौन हो गये। तब हड बडाकर महाराज परीक्षित् ने कहा—'क्यो भगवन्! आप चुप क्यो हो गये? भगवान् की बाललीला समाप्त हो गयी क्या? प्रभो! भगवान् की सभी लीलाएँ सुखद हैं, सभी कानो के लिये रसायन रूपा हैं। क्योकि भगवान् जो भी अवतार धारण करते हैं, उस अवतार मे जो जो भी लीलाएँ करते हैं, वे सभी सुखप्रद होती हैं, क्योकि वे सच्चिदानन्द सुख स्वरूप हैं, उनकी सभी कथाएँ मन के लिए औषधि स्वरूप हैं।

श्रीशुकदेवजी ने कहा—'राजन्! भगवल्लीलाओ को आप मन के लिए औषधि कैसे कहते हैं?'

महाराज परीक्षित् ने कहा—"महाराज! आप सब जानते हैं,

जान-बूझकर आप मुझसे ऐसा प्रश्न कर रहे हैं। अनेक जन्म की वासनाओ के कारण प्राणियो के हृदय पटल पर अज्ञान का एक परदा-सा पडा रहता है जिससे मन मतङ्ग अपने विशुद्ध धाम को भूलकर विषय तृष्णा-गहन-वन मे भटकता रहता है। श्रवण-सुखद भगवल्लीलाओ के श्रवण मात्र से चित्त का मल और उसी मल के कारण उत्पन्न होने वाली विषय-तृष्णा सर्वदा के लिए छिन्न-भिन्न हो जाती है। जब मन के ऊपर से माया मोह तथा अज्ञान का आवरण हट गया तो मन, बुद्धि, चित्त और अहकार ये चारों ही मन की वृत्तियाँ विशुद्ध बन जाती हैं। अज्ञान से आवृत अशुद्ध अन्त करण ही तो ससार की पुन. पुनः प्राप्ति करता रहता है। जब अज्ञान का आवरण हट गया, तो उस विशुद्ध अन्त.करण मे भगवद् भक्ति तथा भगवदीयो मे अनुरक्ति उत्पन्न होती है। ऐसे परमात्मा के परम पवित्र विशुद्ध चरित्रो को यदि उचित समझें तो मुझे और भी सुनावें।"

श्री शुकदेवजी ने कहा—"राजन्! भगवल्लीलाओ का तो कोई अन्त नही। वे तो अनन्त है, उन्हे मैं कहाँ तक सुना सकता हूँ।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"महाराज! आप जितनी भी सुना सकें, उतनी ही सुनावें। एक दो लीला सुनकर तो मेरी तृप्ति नही हुई। यही नही जैसे अत्यन्त भूखे को अत्यन्त स्वादिष्ट वस्तु के दो चार ग्रास दे दें, तो उनसे उसकी बुभुक्षा और भी अधिक जाग्रत होती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मृत्युलोक में अवतीर्ण होकर मानवजातीय समस्त लीलाओ का अनुकरण किया। उनमें से जितनी आप सुना सकें उतनी परम अद्भुत बाललीलाएँ आप सुनावें, क्योंकि उनकी बाल लीलाएँ अत्यन्त

सरस तथा मनको मोहित करने वाली हैं ! उन्हीं का आप मेरे सम्मुख वर्णन करने की कृपा करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब महाराज उत्तरानन्दन परीक्षित् ने भगवान् शुक से इस प्रकार भगवान् की लीलाओं के सम्बन्ध में उत्सुकता के साथ प्रश्न किया, तो वे शकट-भञ्जन प्रसङ्ग कहने लगे। वे बोले—"राजन् ! यशोदा मैया सदा लाल जी को अपने नेत्रों के ही सम्मुख रखती थी। जब से पूतना प्रसङ्ग घटित हुआ, तब से वे बड़ी शंकित होने लगी। एक दिन कृतिका नक्षत्र था, माता पलना में लालजी को लिटाकर झुला रही थी और शनैः शनैः लोरिया गा रही थी। जिससे लालजी को सुख पूर्वक नींद आ जाय। उसी समय लालजी ने अपने आप करवट बदली। आज लालजी सत्ताईस दिन के हो गये थे। पहिले ही पहिल उन्होंने आज अपने आप करवट बदली थी। माता के हृष का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने वहीं बैठे ही बैठे रोहिणी जी को पुकारा "जीजी ! जीजी ! क्या कर रही हो।"

जब से पूतना वाली घटना हो गयी है, तब से रोहिणीजी का का चित्त भी सदा शंकित-सा बना रहता है। शीघ्रता में नंदरानी की वाणी सुनकर वे चौंक गयी। उन्होंने सोचा—'रांड़ पूतना की कोई दूसरी सौति तो नहीं आ गयी। 'वे दौड़कर नन्दरानी जी के समीप आयी। अत्यन्त ही उल्लास के साथ यशोदा मैया ने रोहिणीजी से कहा—"जीजी। बड़ी प्रसन्नता की बात है, आज तुम्हारे बच्चे ने अपने आप करवट बदली है।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए रोहिणी जी ने कहा—"तब तो रानी ! उत्सव करना चाहिए। यह तो बड़े आनन्द की बात है।"

यशोदा मैया तो यह चाहती ही थी, उन्होने कहा—"करो मुझसे क्या पूछना है। करने कराने वाली तो तुम्ही हो।"

अब क्या था; तुरन्त पंडितजी को बुलाया गया। पंडितजी बडो-सी पगडी बांधे अंगरखा पहिने दुपट्टा के छोर मे पोथी पत्रा बाँधे आये। नन्दराय ने पंडितजी के पैर छुए बंठने को आसन विछाया। आशीर्वाद देकर पंडितजी आसन पर बैठ गये। ५ सुवर्ण मुद्रा मैया ने पत्रा पर चढा कर कहा—'पंडित जो! अभी लल्ला ने करवट ली है, इसका उत्सव कब मनाया जायगा। पत्रा में मुहूर्त देखो।"

पंडितजी ने पचङ्ग खोला। मेष, वृष गिनकर तथा अश्वनी भरणी गिनकर बोले—"अच्छा, कल तो लाला का जन्म नक्षत्र रोहिणी भी है। जन्म नक्षत्र का भी तो उत्सव मनाना ही है। करोटन और जन्मनक्षत्र-उत्सव कल साथ ही साथ मनाया जाय।"

यह सुनकर नन्दरानी वडी प्रसन्न हुई, वे बोली—'हाय! मैं तो भूल ही गयी थी, कल लाल का जन्म-नक्षत्र भी है। उसका भी तो उत्सव मनाना ही था। दोनो साथ ही मनावेंगे।" यह कहकर उन्होने तुरन्त नाइन को बुलाया और कहा—"जा, सब व्रज मे बुलावा दे आ, कल करोटन और जन्म-नक्षत्र उत्सव दोनो साथ ही मनाये जायँगे।"

यह सुनकर नाइनि घर-घर मे जाती और द्वार पर से ही चिल्लाती—'सुवल की माई! नन्दरानी के यहाँ कल करोटन का का बुलावा है।"

तब तक दूसरी चिल्लाती—"अरी काहे का बुलावा है?"

तब नाइन फिर कहती—"अरी, लालजी न आज अपने आप करवट लिया है, इसलिए राजभवन मे सबका झरा बुलावा है।' इस प्रकार सब व्रज मे बुलावा दिया गया। प्रातः काल से ही

चोटियो को गुहकर सज बजकर सोलह श्रृगार करके गोपियाँ नन्द-भवन की ओर छम्म-छम्म करती हुईं, गीत गाती हुईं, चावकी वस्तुएँ तथा कोमरी लेकर आने लगी। समस्त नन्द-भवन गोपियो से भर गया। आकर गोपियो ने ऊधम मचाना आरम्भ किया। कोई नाचती कोई गीत गाती कोई ढोलक मजीरा बजाती। स्त्रियो को गाने बजाने नाचने और भाँति-भाँति के मङ्गल कृत्य करने मे बडा आनन्द आता है। पडितो ने आकर मन्त्र पढे। दिव्यौ-पधि महौपधियो से लालजी को स्नान कराया, विधिवत् उनका अभिषेक किया। पूजन कराकर लालजी की मङ्गल-कामना के निमित्त मैया ने उनके हाथ से स्पर्श कराकर अन्न, वस्त्र, माला तथा बहुत-सी दुधार सूधी हाल की व्यासी गौओ का दान किया। जिसने जिस वस्तु की इच्छा प्रकट की माता ने उसे वही वस्तु बडी उदारता के साथ प्रसन्न मन होकर प्रदान का।

छोटे बच्चो को स्नान करने के अनन्तर नीद आने लगती है। माता तो दान करा रही थीं, लालजी माता का स्थन पीते ही पीते उनकी गोद मे झपकियाँ लेने लगे। बच्चे को उनींदा देखकर माता ने कुछ देर उन्हे थपथपाया। जब देखा बच्चा सो गया है तो शनै-शनै उन्हे शैया पर लिटा दिया। लुगाइयो की अपार भीड थी, सब घर भरा था। घर के सम्मुख जो बहुत भारी पौरी थी उसमे एक बहुत बडा लढा खडा था। लढा को सस्कृत मे शकट कहते है। वह शकट बहुत बडा था १००।१०० मन बोझ उसमे ढोया जाता था। बडे-बडे बलो आठ बल उसे खीचते थे। कुछ दिनो से नन्दजी ने उसे पौरी मे बाँध दिया था, वह एक प्रकार से पूरा घर-सा ही था, अतः उस पर सैकडा ऊँट के चम से बने कुप्पे घृत से भरे रखे थे। दूध, दही के भी पुराने-पुराने बडे बडे मिट्टी के माँट रखे थे। माता ने लालजो के लिए उसी के नीचे पलना

आत्म-विस्मृत बनी हुई हैं। अब मै इससे अधिक घूम धडक्का करूं, तो य सब गाना बजाना तथा नाचना भूलकर मेरी ही ओर दौडी आवेंगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ऐसा विचारकर भगवान् इधर उधर देखने लगे। माना घूम धडक्का मचाने का विधान बना रहे हो।'

छप्पय

द्विजनि दीन अरु दुखिनि दान दिनभर करवायो।
बुलवाये बहु विप्र महरि अभिषेक करायो॥
पीवत पीवत दूध लालकूँ निंदिया आई।
छकरा नीचे सुघर पलकिया मातु बिछाई॥
हौलें हौलें जाइके, मातु सुवाये श्याम तहँ।
भईं लीन सत्कारमहँ, गोपी उत्सव करहिं जहँ॥

शकट-भञ्जन-प्रसङ्ग

[८६१]

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनम्,
व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥*

(श्री भग० १० स्क० ७ अ० ७ श्लोक)

छप्पय

खुली लाल की आँखि मातु तहँ नाहिं निहारी।
रोये बालक बने साम जनु ऋचा उचारी॥
ह्वै हल्लामहँ फँसी सुनि नहिं माता बानी।
धूम धड़ाको करूँ लालने मनमहँ ठानी॥
नव पल्लव सम मधुर पग, लखि छकरा सूधे फरे।
छुवत भांड रस घट शकट, अड़्ड़धम्म करिकें गिरे॥

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! शिशु श्याम शकट के नीचे पलकिया पर पौढ़े हुए थे। उनका छोटा-सा मृदुल पल्लव के सदृश सुकोमल चरण शकट में लगा, लगते ही वह शकट उलट गया। दूध, दही आदि विविध भाँति के रसों से भरे हुए कुप्पे जो उसमें रखे थे, वे उसके उलटने से फूट गये। उसके पहिये धुरा के ऊपर हो गये तथा उसका जूआ भी टूट गया।"

लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए लोग विविध भाँति के उपाय करते हैं। बहुत से भीड एकत्रित करने को लडने लगते हैं। कोई ऐसी अद्भुत आश्चर्य की बात कहकर मनुष्यों के मन का अपनी ओर आकर्षित करते हैं। कोई विस्मयोत्पादक अद्भुत घटना घटाकर सबका मन उस घटना की ओर बलात् लगाते हैं। अत्यन्त हर्षयुक्त अत्यन्त भयकर, अपूर्व तथा विस्मयोत्पादक घटना को देखकर सबका मन उस देखने को लालायित हो उठता है। सब उसका कारण जानने के लिए समुत्सुक बन जाते हैं। सभी अपने अपने कार्यों को छोडकर उस ओर दौड जाते है। बडे प्रभावशालियो के सम्मुख छोटे प्रभावशालियो का प्रभाव दब जाता है बडे दुख के आगे छोटा दुख भूल जाता है, इसी प्रकार बडी ध्वनि के सम्मुख उससे छोटी ध्वनियाँ उसी मे विलीन हो जाती है उस समय उन छोटियो का कोइ महत्व नही रह जाता। वे बडी ध्वनि मे समा जाती है। एक व्यक्ति न एक छोटी लकीर खीच कर कहा— इसे बिना मेटे या बढाये छोटी कर दो।'

वह आदमी बडी चिन्ता मे पडा, बिना मेटे यह छोटी कैसे हो सकता है। अपनी कठिनता उसने एक बुद्धिमान् से कही। बुद्धिमान् पडित ने कहा—"एक काम करो इस रेखा के ऊपर एक इससे बडी रेखा खीच दो, यह अपने आप छोटी हो जायगी।"

सूतजी कहते हैं— मुनियो! छकडाके नीचे पलंगिया पर पडे ही पडे श्यामसुन्दर न उस इतने भारी शकट के ऊपर दृष्टि डाली। उन्होने सोचा—' इस शकट को ही उलट दूँ, इससे इतना बडा शब्द होगा, कि माता ही नही सब गोपियाँ दौडी दौडी मेरे पास आवेंगी।"

यह सोचकर उन्होने अपने कुसुम से भी कोमल, वट पीपल

के नव पल्लव से भी सुचिक्कन सुन्दर रक्तवर्ण का अपना नन्हा-सा सुन्दर चरण को जिसकी पाँचो उँगलियो के नख मणि खन्डो के सदृश चमक रहे हैं, उसे शकट मे छुआ दिया। चरण के लगते ही छकडा सहसा भ्रडडड्धम्म करके उलट गया। उसके ऊपर जो दूध, दही, घी के बर्तन रखे थे, वे सब फूट गये घी बहने लगा। मक्खन के लोंदे लुढकने लगे, दही छितरा गया। दूध नालियो मे जाकर बहने लगा। उस शब्द से दशो दिशाएँ गूँज उठी। व्रज मडल मे कोलाहल मच गया। उत्सव में आयी स्त्रियाँ इधर-उधर भागने लगीं। किसी ने समझा वज्र गिरा है, किसी ने समझा बिजली गिरी है, किसी ने सोचा प्रलय होने वाला है। स्त्रियो में भगदड मच गयी, एक दूसरी को ठेल कर घर मे भागने लगी। बुढियाँ पिच गयी, सबको अपने अपने प्राणो की परी थी, किन्तु यशोदा मैया का चित्त तो अपने श्याम सुन्दर मे लगा था। इन्होने इधर-उधर किसी ओर न देखा। वे तीर की भाँति दौडकर शकट की ओर गयी। नन्दरानी को दौडते देखकर दास दासियाँ भी उधर ही चली। रोहणी मैया भी उधर ही भागी। सबको उधर भागते देखकर और भी व्रजाङ्गनाएँ उधर ही चली।

वहाँ जाकर माता ने तथा अन्य व्रजाङ्गनाओ ने जो कुछ देखा, उसे देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। सब ने देखा, दूध, दही, घृत तथा मक्खन आदि के कुप्पे और भाड फूटे पडे है। गाडा उलटा पडा है, उसके पहिये धुरे से निकल कर इधर-उधर टूटे फूटे पडे हैं। धुरा अस्त व्यस्त हो गया है, जुआ फट कर कहीं पड़ा है। लालजी पालने मे पडे हाथ पैर फटफटाते हुए ह्वाउ ह्वाउ करके रो रहे हैं। माता ने दौड़-कर तुरन्त बच्चे को उठाकर छाती से चिपटा लिया। मेरा

बच्चा कुशल-पूर्वक है, इसकी स्मृति मात्र से ही उन्हें परम सुख हुआ इतने मे हो नन्दजो बहुत से गोपो को लिये हुए दौड़े आये। गोपो को आते देखकर गोपियाँ एक ओर हट गयी। बहुओं ने घूँघट मार लिये। बूढी-बूढ़ी गोपयाँ अपने युवक पुत्रों और भतीजों से कहने लगी—'लल्ला यह क्या हुआ? इतना बडा छकड़ा उलट कैसे गया? आपसे आप तो यह उलट नही सकता।"

इस पर गोप कहते—"चाचो! हमारी बुद्धि मे भी यह बात नही बैठती" कोई नन्दराय से ही पूछती—"बाबा! तुम बड़े बूढ़े हो तुम ही बताओ बिना आँधी पानी के यह छकड़ा उलट कैसे गया?"

नन्दजी भी अत्यन्त चकित और विस्मित हुए गोपो की ओर देखते हुए कहने लगे—"इस विचित्र अद्भुत व्यापार का कारण मेरी भी बुद्धि मे नही आता। इस प्रकार सभी आश्चर्य चकित होकर सोचने लगे, किन्तु कोई भी इसके उलटने के कारण को निश्चित न कर सका।

वहाँ जो बच्चे खेल रहे थे, उनसे उनकी माताओं ने पूछा—गोपो ने भी उन्हे गोद मे लेकर प्यार से पूछा—"तुम बताओ भैया! यह छकडा कैसे उलट गया।"

इस पर सभी बालकों ने एक स्वर मे यही बात कही—"हम यहाँ खेल रहे थे, हमारे देखते देखते इस कृष्ण ने हो रोते-रोते अपने चरणो से उसे उलट दिया।"

माताएँ कहती—"अरे, हट! इतना छोटा बच्चा, इतने बड़े छकड़े को कैसे उलट सकता है?"

लड़ते कहते—"तेरो सूँ अम्मा! हमने अपनी आँखो देखा है, इसी ने पलटा है इसमे रंचक मात्र भी सदेह नही है।"

गोप गोपियो को भला इस असंभव बात पर विश्वास कैसे

हो सकता था। वे सब तो माधुर्य के उपासक हैं, श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य प्रभाव से तो वे अब तक अनभिज्ञ ही हैं। बार-बार बालकों के शपथ खाने पर भी उन्होने बालकों की बात पर विश्वास नहीं किया। यही कहकर बात टाल दी, कि ये तो बच्चे हैं। ऐसे ही बिना सोचे समझे कह देते हैं।

यशोदाजी ने कहा—"कैसे भी उलट गया हो, यही नारायण-की बडी कृपा है, कि बच्चे का बाल भी बाका नही हुआ। नही तो शकट उलटने पर क्या-क्या अनर्थ हो सकते थे।" यह कहकर उन्होने तुरन्त ब्राह्मणों को बुलाया। किसी ग्रह का उत्पात न हो, इस आशंका से ब्राह्मणों मे वेद मन्त्रो द्वारा शान्ति पाठ कराया। दान दक्षिणा दी, फिर किसी बूढ़ी गोपी ने कहा—"रानी! लाला के मुँह में आँचल तो दो यदि बच्चा दूध पीने लगे, तो समझ लो बच्चे का भय दूर हो गया।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! बच्चे को तो कोई भय था ही नही वह तो भय को भी भयभीत करने वाला बालक था। माता के स्तन देते ही चुसुर-चुसुर करके दूध पीने लगे। तब माता का चित्त ठिकाने आया।"

नंदजी ने बड़े बली-बली सैकडों गोप बुलाये, उन सबसे उठवा कर छकड़े को फिर जैसे वह रखा था, वैसे ही रख दिया। जो पात्र फूट गये थे, उन्हे तो फेंक दिया, जो साबित थे, उन्हे फिर उसी पर रख दिया। लालजी को पालने में माता ने दूध पिलाकर सुला दिया।

नन्दजी ने कहा "अरे, भैया ओ! आज हमारे लाला का पुनर्जन्म हुआ है, कुछ उत्सव मनाओ। दान पुण्य करो।" यह कहकर उन्होने ब्राह्मणों को बुलवाया। ब्राह्मणो ने आकर शांति होम किया। दधि, अक्षत तथा कुशोदक से पूजन किया।

नन्दजी लालजी को स्वय गोदी मे लेकर ब्राह्मणो के आगे बैठ गये। ब्राह्मणो ने ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मन्त्रो द्वारा सस्कृत एव पवित्र औषधिया से मिले हुए जल से लालजी का अभिषेक किया। तदन्तर एकाग्र चित्त से स्वस्तिवाचन पाठ किया। नन्दजी ने भी ब्राह्मणो को कुरकुरे भुरभुरे, लुचलुचे घृत मे बने विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यञ्जनो से भोजन कराया। यथेष्ट स्वादिष्ट भोजन करने के अनन्तर ब्राह्मणो ने पेट पर हाथ फरते हुए, लम्बी डकार छोडते हुए आशीर्वाद दिये—"नन्दराय! तुम्हारे बेटे के गुणो का गान ससार मे सदा गाया जाय। इसका नाम अजर अमर हो। यह सदा साधुओ को सुख देने वाला हो।"

नदजी ने सिर झुकाकर ब्राह्मणो के अमोघ आशीर्वाद को भक्तिभाव से ग्रहण किया और उन्हें भोजन के अनन्तर दक्षिणा मे चित्र विचित्र वस्त्र और सुवर्ण मालाओ से विभूषित बहुत-सी सर्वगुणसम्पन्न गौएं उनको दी। इस पर किसी गोप ने कहा—"बाबा! तनिक सी बात पर आपने यह इतना दान धर्म क्यो किया?

नन्दजी ने कहा—'अरे भैया! इन सुवर्ण चाँदी के ठीकरो का मूल्य ही क्या है। हमारे लाल का अभ्युदय हो, इसके लिए हम सब कुछ कर सकते हैं। ब्राह्मणो के आशीर्वाद मिलें इससे बढकर और क्या लाभ हो सकता है?"

उसी तार्किक गोप ने कहा—'ब्राह्मणो के आशीर्वाद से क्या होता है, बहुत से ब्राह्मण तो बिना पढे लिखे वैसे ही दान लेने को मारे-मारे फिरते है।"

नन्दजी ने कहा—"कैसे भी फिरे, वे हैं तो ब्राह्मण ही। दूध न भी दे तो बाँझ गौ भी गौ ही कहलाती है। किन्तु जो असूया मिथ्या भाषण, दम्भ, ईर्ष्या, हिंसा और मान से रहित

विशुद्ध ब्राह्मण हैं, उन सत्यशील ब्राह्मणो का आशीर्वाद कभी विफल नही होता। इसलिये तुम इस बात पर विश्वास करो, मैं फिर कहता हूँ वचन-पूर्वक कहता हूँ विश्वास के साथ कहता हूँ, कि जो वेद वेत्ता तथा योगयुक्त ब्राह्मण है, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नही होता, यह बात स्पष्ट है ध्रुव सत्य है।

सूतजी कहते हैं— मुनियो! इस प्रकार यह शकट-भञ्जन की लीला मैंने कही।"

शौनक जी ने पूछा—'सूतजी! भगवान् ने दूध दही तथा घृतादि के भरे शकट को व्यर्थ मे क्या उलट दिया? इसम उन्हे क्या मिला?'

सूतजी बोले—"महाराज! बालक इतने सुन्दर खिलौनो को फट्ट से फोड देते है, उन्हे इसमे क्या मिल जाता है खेल ही जो ठहरा। बात यह थी कि एक उत्कच नामक असुर था वह वायु मे उडकर अपने पूर्व-जन्म के वैर के अनुसार भगवान् को मारने के लिये उस शकट मे अव्यक्त रूप से छिप गया था। उस असुर को मारकर उसका उद्धार करना था। शटक के उलटने से वह उत्कच असुर मरकर परम पद का प्राप्त हुआ। भगवान् का खेल भी हो गया ब्राह्मणो को दक्षिणा भी मिल गयी, धूम धडाका भी हो गया, और उत्कच का उद्धार भी हो गया। एक छकडा के उलटने से कितने काम हो गये। भगवान् की लीलाओ के विषय मे कौन जान सकता है कि वे किस भाव में भावित होकर कौन सी क्रीडाकर रहे हैं? इसी प्रकार एक असुर कौआ बनकर और दूसरा ब्राह्मण बनकर भगवान् के समीप आया। इन दोनो का भी भगवान् ने उद्धार किया इन दोनो की कथा को तथा अन्य असुरो के उद्धार की कथाओ को मैं आगे कहूँगा। आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

गोपी इत उत भगीं भईं भयतैं व्याकुल अति।
एकमात्र घनश्याम नन्दरानींकी गति मति॥
दौरीं छकरा ओर अवहिं जहँ श्याम सुवाये।
उलटयो देख्यो शकट झपटिकें लाल उठाये॥
प्यायो पय द्विज आइ सब, शांति पाठ सबने करयो।
अति विस्मित सबई भये, गोपनि छकरा पुनि धरयो॥

अन्य असुरों के उद्धार की कथा

[८६२]

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ७ अ० २ श्लोक)

छप्पय

कागासुर इक दिवस काक बनि हरि ढिंग आयो ।
पकरि टेंटुआ तुरत कंस के पास पठायो ॥
पुनि द्विज श्रीधर असुर कंस को बनिके सेवक ।
आयो हरिकूं हनन परे जहँ जगके रक्षक ॥
श्रीहरि-लीला शक्तितैं, दन्त भंजि मुख खीर भरि ।
ब्रजतैं बाहर कर्यो नँद, अद्भुत कीयो कृत्य हरि ।

जब भगवान् सकार रूप से अवनि पर अवतरित होते हैं—अवतार धारण करते है—तो वे सभी प्रकार के प्राणियो का उद्धार करते हैं। तीनो ही गुण श्रीहरि के ही बनाये हुए हैं। सात्त्विक हो, राजस हो अथवा तामस प्रकृतिका हो, सभी का उद्धार भगवान् करते हैं। किसी भाव से भी कोई भगवान् के

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! एक तृणावर्त नाम का दैत्य था, वह कंस का सेवक था। कंस ने उसे व्रज मे भेजा, वह बवण्डर का रूप रखकर वहाँ आया, जहाँ बालकृष्ण बैठे थे, तुरन्त वह उन्हें उठाकर आकाश मे ले गया।"

समीप क्यो न आवे, वे सबको सद्गति देते हैं। साँभर की झील मे कुछ भी पड जाय वही नमक बन जायगा। भगवान् के नित्य पार्षद तो आनन्दानुभव करते ही है, भक्तो को तो श्रीहरि अलौकिक भक्तिरस प्रदान करते ही है। दुष्ट असुर राक्षसो को भी-जो उन्हे अपना शत्रु समझते है-श्रीहरि सद्गति प्रदान करते हैं। वे तो सर्वेश्वर हैं न? सबके ही स्वामी हैं। भावानुसार सभी को सुख देते हैं।

सूतजी कहते हैं— मुनियो! मैंने आपको शकटासुर उद्धार की परमसुखद लीला सुनायी। जिस उत्कच असुर ने लालजी को मारने के विचार स शकट मे प्रवेश किया उसे ही श्याम सुन्दर ने शकट को पलट कर परलोक पठाया।"

इस पर शौनकजी ने पूछा— सूतजी! यह उत्कच असुर कौन था और किस कारण इसका श्रीहरि ने उद्धार किया, इसके पूर्वजन्म का आप वृत्तान्त जानते हो, तो सुनावें।"

श्री सूतजी बोले— 'महाराज! यह उत्कच हिरण्याक्ष दैत्य का पुत्र था, चाक्षुस मन्वन्तर के पूर्व इसे महामुनि लोमश का शाप हुआ था। लोमश मुनि तो चिरजीवी है। वे सदा ध्यान मे मग्न रहते हैं। उनका आश्रम बडा सुन्दर सुहावना था, उसमें भाँति-भाँति के वृक्ष लगे हुए थे। एक दिन यह दैत्य उत्कच मुनिवर के आश्रम मे गया। आसुरी स्वभाव के जीवो की तो यह प्रकृति ही होती है, वे किसी की फली फूली वस्तु को देख नही सकते। ऐसे सुन्दर फले फूले आश्रम को देखकर असुर को मत्सर हुआ, वह उस आश्रम के फलवान वृक्षो को तोडने लगा वृक्ष तो ऋषियो की सन्तान के समान होते हैं, वे उन्हे बडे लाड प्यार से पानी पिलाकर पालते पोसते हैं। अपने हाथो से लगाये वृक्षो का अपनी ही आँखो के सम्मुख

नष्ट होते देखकर महामुनि लोमश को क्रोध आ गया उन्होंने उत्कच को शाप दिया—'हे दुर्बुद्धि ! तू देह से रहित हो जा।"

यह सुनकर असुर का मद उतर गया। उसने मुनि की अनुनय विनय की। मुनियों का क्रोध तो जल की रेखा के सदृश होता है, आया और तुरन्त मिट गया। उनका शाप आशीर्वाद रूप मे परिणत हो गया। मुनि बोले—वैवस्वत मन्वन्तर मे तुम्हारा ससर्ग आनन्द कन्द श्री कृष्णचन्द्र से होगा, उनके द्वारा तुम तीनो गुणो से रहित होकर परम पद को प्राप्त होगे।' वही उत्कच असुर शकट मे प्रविष्ट होकर भगवान् के हाथ से मारा जाकर मुक्त हुआ। कागासुर के मुख से इसने श्रीकृष्ण की अद्भुत सामर्थ्य की प्रससा सुनी थी, वह भी कस की प्रेरणा स श्री कृष्ण को मारने गया था।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! यह काक असुर कौन था, इसे भगवान् ने कैसे मारा ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! काग असुर को भगवान् ने मारा नही। यह भगवान् को मारने की इच्छा से गया था। भगवान् को एकान्त मे पलकिया पर पडे देखकर इसने अपने लोहे की बनी चोच से उन पर प्रहार किया। वह समझता था, यह तो बालक है, क्या करेगा, किन्तु यह बालक असुर कुल घालक है, वहाँ कोई देखने वाला तो था नहीं, भगवान् ने अपने नन्हे कर कमल से उसे उठाकर ऐसा फका, कि वह मूर्छित हो कर कस के सभा मडप मे उसक सामने ही जा पडा। उसी ने बाल कृष्ण के अद्भुत पराक्रम का वर्णन किया। इसे ही सुनकर वायु मे विचरने वाला उत्कच आया और वह भी भगवान् के हाथो मारा गया। इसी प्रकार एक श्रीधर ब्राह्मणाधम को भी भगवान् ने दड दिया।'

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! श्रीधर कौन था और भगवान् ने उसे क्या दड दिया? इस कथा को भी कृपा करके हमे सुनाइए।"

सूतजी बोले—'भगवन् मथुरा मे एक श्रीधर नामका बूढा ब्राह्मण था। जन्म तो उसका ब्राह्मण घर मे हुआ था, किन्तु था वह पूर्व जन्म का असुर। बडी-बडी सफेद दाढी थी, वह कुछ ज्योतिष भी जानता था। एक दिन कस ने पूछा—"पडित जी! यह बताइये, योगमाया ने कहा है मेरा शत्रु व्रज मे ही कही उत्पन्न हुआ है, वहाँ किनके यहाँ उत्पन्न हुआ है?"

श्रीधन ने कहा—' मे भली प्रकार जानता हूँ, वह नन्द के घर उत्पन्न हुआ है।"

कस ने कहा—"यदि आप उसे मार सकें, या मरवा सकें तो, मैं तुम्हे अपना आधा राज्य दे दूँगा।"

यह सुनकर श्रीधर बडा प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"महाराज! आप चिन्ता न करें, मैं उस बच्चे को अभी मारकर आता हूँ।"

इस बात से कस को बडी प्रसन्नता हुई। उसने समझा मेरा शत्रु मारा ही गया। श्रीधर की बहुत प्रशसा की और अत्यधिक सम्मान करके उसे गोकुल के लिये जाने को कहा। श्रीधर भी कस से सम्मानित होकर गोकुल मे आया। ब्राह्मणो और साधुओ की तो भीतर बाहर कही रोक टोक है ही नही। श्रीधर भीतर चला गया। यशोदा मैया ने उसका बडा आदर सत्कार किया। माता ने वृद्ध ब्राह्मण समझकर उससे भोजन करने को प्रार्थना की। बहुत अनुनय विनय करने पर उसने भोजन बनाना स्वीकार कर लिया। चूल्हे पर दूध चढा दिया उसमे चावल डाल दिये। फिर श्रीधर घडा लेकर स्वय जमुनाजल

भरने चला। यशोदा मैया ने उसे रोककर कहा—"महाराज! इतने दास दासी हैं आप जल भरने क्यों जा रहे हैं, मैं चाहे जितना जल मँगा दूँगी।"

श्रीधर के मन में तो पाप था, वह बोला—"मैया! मैं दास दासियों के हाथों का लाया यमुना जल नहीं पीता।"

यशोदा मैया बोली—"मैं स्वयं भर के लाऊँ, तब तो तुम पी सकते हो?"

श्रीधर बोला—"हाँ तुम्हारा लाया तो पी लूँगा।" यह सुनकर अत्यन्त ही प्रसन्नता प्रकट करती हुई मैया बोलीं—"तब मैं ही जाती हूँ, आप मेरे बच्चे को देखना।"

श्रीधर बोला—"अच्छी बात है, मैं बच्चे को देखता हूँ। तुम अच्छी तरह माँजकर गगरी को भर लाना।"

माता अत्यन्त ही प्रसन्न होकर सुवर्ण की गगरी लिये हुए चलीं। रोहिणीजी ने भी एक गगरी उठा ली। दासी दास हँसने लगे। माँ का कुछ शरीर स्थूल था वे कनक कलश लिये बड़ी ही भली लगती थी, लालजी अकेले रह गये और उनके समीप रह गया असुर प्रकृति का श्रीधर। भगवान् एकांत में ही तो उद्धार करते हैं। अब श्रीधर ने सोचा—"इस बालक का गला घोंट दूँ। यह सोचकर वह भगवान की ओर बढ़ा। भगवान् पलकिया में पड़े सो रहे थे, ऊपर से नेत्र बन्दकर रखे थे, भीतर से सब जानते थे उनसे क्या छिपा है। श्रीधर ज्यों ही आगे बढ़ा, कि आपने अपनी माया शक्ति से हाथ को बढ़ा दिया; एक धक्का मारा श्रीधर चारों कोने चित्त गिर पड़ा। उसके रहे सहे सब दाँत टूट गये। मुख साँप के बिल के समान हो गया। अब कृष्ण चुपके से उठे। चूल्हे पर जो खीर बन रही थी। गरमागरम उसके मुख में उड़ेल दी। उसकी दाढ़ी मोंछ खीर में सन गयी।

मुँह गरम-गरम खीर से जलने लगा। वह भागने का प्रयत्न करता था, किन्तु पैर पृथ्वी मे चिपक गये। गर्म खीर से मुख जल रहा था, इधर-उधर छटपटा रहा था, सिर हिला रहा था, पोपले मुँह को चला रहा था, उसकी आँखे निकली हुई थी। वाणी रुक गयी थी, मनमोहन हँस रहे थे श्रीधर रो रहा था। इतने मे ही यशोदा मैया यमुना जल लेकर आ गयी। श्रीधर की ऐसी दशा देखकर वे डर गयी। सोचा—"ब्राह्मण भूखा होगा। गर्मागर्म खीर खा गया होगा।" अतः वे बार बार पूछती—"कहो महाराज क्या हुआ। इतनी शीघ्रता खाने मे क्यो की ?"

ब्राह्मणो के तो प्राणो पर बीत रही थी, अतः वह कुछ भी न बोल सका। वाणी योगमाया के प्रभाव से रुद्ध हो रही थी। मैया को भय हुआ कि कही किसी असुर का तो इस पर आवेश नही आ गया उन्होने तुरन्त नन्दबाबा को बुलाया। वे भी कुछ निर्णय न कर सके, कि बात क्या है। अन्त मे उन्होने यही निर्णय किया, कुछ भी हो इसे व्रज की सीमा के बाहर कर आना चाहिए। ब्राह्मण रूप मे न जाने कोई असुर ही हो, अपनी आसुरी लीला दिखा रहा हो। यही सोचकर उन्होन गोपो को आज्ञा दी गोप उसे व्रज के बाहर छोड़ आये। जब वह यमुना के किनारे पहुँचा तब सोचने लगा—'कस ने मुझे आधा राज देने को कहा था, राज मिलना तो दूर रहा, अपने दांतो को भी गँवा आया। यह सोच ही रहा था, कि उसे प्यास लगी। वह यमुना जी मे जल पीने को उतरा वहाँ क्या देखता है, सुवर्ण के कछुए पड़े हैं। उसने सोचा—"वहाँ कुछ नही मिला, तो इन कछुओ को ही ले चलूँ यह सोचकर उसन ज्यो ही दो कछुओ को उठाया त्यो ही दोनों कछुए उसके दोनों हाथों को काटकर ले गये। अब वह दोनों हाथो से विहीन

होकर कंस के समीप गया, वाणी तो उसकी पहिले ही बन्द हो गयी थी, वह कुछ कह ही नहीं सका। कंस ने समझा यह पागल हो गया है। पीछे भगवान् के दर्शन से उसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। उसने भगवान् के सुमधुर नामों को उच्चारण करने की ज्यों ही इच्छा की त्यों ही उसकी वाणी खुल गयी। भगवान् की सेवा पूजा करने की ज्यों ही इच्छा हुई त्यों ही उसके नये हाथ निकल आये। तब से वह निरन्तर वाणी से भगवान् के नामों का उच्चारण और हाथ से भगवद् विग्रह की सेवा अर्चा ही करता रहता था उसका उद्धार हो गया, वह भक्त बन गया। इसी प्रकार भगवान् ने तृणावर्त का भी उद्धार किया।

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! तृणावर्त कौन था, उसे किस ने भेजा था और वह किस रूप में श्रीकृष्ण के समीप आया था?"

सूतजी बोले—"महाराज! तृणावर्त भी कंस का ही सेवक था। वह इच्छानुसार सूक्ष्म स्थूल जैसा चाहता शरीर बना लेता। एक दिन कंस ने उससे कहा—'तृणावर्त! मैंने ऐसा सुना है, कि नन्द के व्रज में मेरा शत्रु उत्पन्न हो गया है। मैंने श्रीधर को उसे मारने भेजा था, वह न जाने क्यों, पागल हो गया, उसकी वाणी ही रुक गयी, वह कुछ बता ही नहीं सका। यथार्थ मेरा शत्रु कौन है, इसलिए तुम व्रज में जाओ, मेरे शत्रु का पता लगाओ, यदि सम्भव हो, तो उसे उड़ाकर यहाँ ले आओ, या वहीं उसे मार आओ?"

तृणावर्त ने कहा—"महाराज! आप कोई चिन्ता न करें। आपका शत्रु यदि नन्द के व्रज में है, वह यशोदा के गर्भ से पैदा हुआ है, तब तो मैं उसे अवश्य ले आऊँगा। यह कहकर वह

मथुरा से चल दिया और ववन्डर का रूप बनाकर व्रज की ओर चला। श्रीकृष्ण अकेले बैठे थे, वह उन्हें आकाश मे उड़ा ले गया।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! भगवान् को दैत्य कैसे उड़ा ले गया ?"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज भगवान् को क्या उड़ा ले जा सकता है। भगवान् की ही इच्छा हुई कि, मैं सब गोपियो का घर देखूँ। पैदल तो अभी चल ही नही सकते थे, उसी असुर का उड़नखटोला बनाकर उसके ऊपर चढकर आकाश मे उड़ गये और वही से सभी गोपियो के घर देखे।"

शौनकजी ने कहा—"तब फिर क्या हुआ, उस असुर ने कुछ अनिष्ट तो नही किया ?"

हँसकर सतजी वोले—"महाराज ! जो प्राणी मात्र का इष्ट है, उसका अनिष्ट हो ही कैसे सकता है, मैं तृणावर्त उद्धार की कथा आगे कहूँगा, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

पलनामहँ पौढ़ाइ लालकूँ मातु झुलावैं।
थपथपाइ कछू कहैं हलावैं अति सुख पावैं॥
लीन्हों करवट श्याम लगे रोवन जग वन्दन।
दीयो आँचल मातु पियोपय पुनि नँदनन्दन॥
पय पियाइ मुख चूमिकें, गोदीमहँ बैठाइकें।
मातु खिलावति मगन मन, इत उत वस्तु दिखाइकें॥

तृणावर्त की तिकड़म और उद्धार

[८६३]

अहो वतात्यद्भुतमेष रक्षसा,
बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात् पुनः ।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ॥*
(श्री भाग० १० स्क० ७ अ० ३१ श्लोक)

छप्पय

तृणावर्त हरि लख्यो देखिके मन मुसकाये ।
अति भारे बनि गये मातु के अङ्ग पिराये ॥
भूमि बिठाये श्याम मातु मनमहँ घबरावे ।
क्यों सुत भारो भयो भेद माता नहिं पावे ॥
लगी मातु गृह काजमहँ, असुर बवण्डर बनि गयो ।
लै हरिकूँ नभमहँ उड्यौ, अन्धकार व्रजमहँ भयो ॥

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोप गोपी परस्पर मे कहने लगे—'अहो ! यह कैसी अद्भुत बात हुई । बालक इस तृणावर्त असुर के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होकर भी फिर बचकर लौट आया तथा वह हिंसक दुष्ट असुर भी अपने आप ही मारा गया । बडे लोगो का यह कथन सत्य ही है कि हिंसक दुष्ट अपने पाप से स्वय ही मर जाता है और साधु लोग समत्व के कारण स्वय ही भय से बच जाते हैं ।'

जो घटना होने वाली होती है, उसकी भूमिका पहिले से ही बंध जाती है। लक्षणों को देखकर बुद्धिमान् पुरुष अनुमान कर लेते हैं, कि अब यह घटना घटित होने वाली है। वर्तमान को देख कर भविष्य का अनुमान करते हैं, किन्तु जो सर्वज्ञ है, उसके लिए तो भूत, भविष्य का कोई अर्थ ही नहीं। वह तो ऊँचे चढ़ा हुआ है, अतः भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों को देखता है। तीनों ही उनके लिए एक-से हैं। हम अपनी अल्प बुद्धि से कहते हैं, ऐसा साहसा क्यों हो गया? सहसा तो कुछ होता ही नहीं। सभी निश्चित रूप से होता है।

श्री सूतजी कहते हैं—"मुनियो! एक दिन की बात है, माता यशोदा अपने प्राणों से भी प्यारे लाल को प्रेम पूर्वक पालने में झुला रही थी। झोटा देती हुई मल्हार गा रही थी, प्यार से पुचकार रही थी और गुन-गुन करके अव्यक्त भाषा में अपने नन्हें से छौना से कुछ कह रही थी कि उसी समय लालजी ने करवट बदली। उनकी नींद खुल गयी। नींद खुलते ही भूख भी लग गयी। रोने लगे। माता ने तुरन्त लालजी को उठाया। उनके स्तनों में दूध भर रहा था। बच्चे को सुस्थिर होकर दूध पिलाया। दूध पिलाकर मैया लालजी को खिलाने लगी। वे पेड़ को दिखाती और कहती—' लल्ला! देखो, कैसा पेड़ है। भगवान् उस ओर देखते।' फिर माँ कहती—"कौआ आयो कौआ आयो। रोटी पंखो माखन खायो। वजमारे के पङ्ख उखारूँ, लाला ढिंग आव तो मारूँ।" माता इस प्रकार खेल कर रही थी, कि उसी समय गुप्त रूप से तृणावर्त असुर वहाँ आ पहुँचा। श्रीहरि तो सर्वदृक् हैं, वे तो सब कुछ देख सकते हैं। उन्होंने उस असुर को देख लिया, वे यह भी जान गये, कि यह मुझे आकाश में उड़ा ले जाना चाहता है। वह क्या चाहता है, इन्होंने ही मानो उसे प्रेरित करके भाव-

मयी गोपियो के घरो को देखने को बुलाया हो। आगे अब इन्हें चोरी करना है। चोरी करने के पूर्व यह देख लेना जान लेना आवश्यक है, कि कौन-सी वस्तु कहाँ रहती है। इसीलिए व ऊपर उडकर सब कुछ देखना चाहते थे, किन्तु दुष्ट आया असमय मे, माता तो मुझे गोद मे लिये बैठी है। मुझे इसका उद्धार करना है। यदि यह मुझे माता सहित उडा गया, तो मेरी माता बडी भोली सरल हृदय की है, आकाश मे उडते ही डर जायगी। फिर मैंने यदि अधिक बोझ बढा दिया, या मेरी मोटी मया को यह असुर न सम्हाल सका, तो मेरी मैया तो चकनाचूर हो जायगी फिर मुझे दूध पिलाकर बडा कौन करेगा। एक यह भी बात है, कि मुझे इसे मारना है, मैया के सामने इसका गला घोटा तो वह डर जायगी। सोचेगी यह मेरा छोरा नही इसके शरीर मे कोई भूत, पिशाच या राक्षस है, तब वह पूतना की मृत्यु का भी रहस्य समझ जायगी। फिर इतना वात्सल्य स्नेह कहाँ मिलेगा। ऐश्वर्य का जहाँ व्यवधान पडा, कि फिर विशुद्ध वात्सल्य रहता नही। माँ तो गोदी मे से उतारना ही नही चाहती, मैं उससे कह नही सकता। महीने भर का बालक बातें करने लगे तो सब उससे डर जायँगे। बिना गोद मे से उतरे लीला बनेगी नही यही सब सोच समझ कर भगवान् सकट मे पड गये। उस समय सिद्धियो ने उनकी सहायता की। सिद्धियो ने अपना अहो भाग्य समझा कि इस परम सरस माधुर्य की लीला में भी लालजी को हमारी आवश्यकता प्रतीत हुई। हम भी उनको लीला मे कुछ काम आ सकेंगी। यह सोचकर गरिमा सिद्धि ने अपना प्रभाव दिखाया। लालजी का वही श्रीअङ्ग अकस्मात् माता को पवत शिखर के समान भारी प्रतीत होने लगा। वे उन्हे अब अधिक देर तक गोदी मे लेने मे असमर्थ हो गयीं। उनके अग दुखने लगे तुरन्त

उन्होंने लालजी को गोदी मे से उतारकर पृथ्वी पर कर दिया। उनके उदर मे असख्यो ब्रह्माण्ड वास करते हैं, उनके भार को माता उन्हीं की इच्छा स उठा सकती है, जब उनकी इच्छा न हो, तो जगत् के भार को उठाने मे भोली भाली माँ समर्थ कैसे हो सकती हैं। श्रीकृष्ण को तो आज अद्भुत क्रीडा करनी थी, अतः माता उनके भार को वहन करने मे समथ न हो सकी। उन्हें अत्यन्त ही विस्मय हुआ और लज्जा भी आयी, कि पुत्र बोझ से जिस माता का अंक दुखने लगे उस माता को धिक्कार है। इस प्रकार की बातें सोचती-सोचती माँ घर के भीतर चली गयी और घरके किसी दूसरे कार्य मे लग गयी।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! हमे तो माता के वात्सल्य प्रेम मे कुछ न्यूनता-सी प्रतीत होती है, जब उनके सब प्रकार से लाल्य श्रीकृष्ण ही थे, तो वे और ससारी कामो मे क्यो लग जाती थी। शकट भजन के प्रसङ्ग मे भी वे लालजी को छकडे के नीचे सुलाकर नाचने गाने और अन्य लौकिक कामो मे लग गयी, अब भी लालजी को पृथ्वी पर बिठाकर गृहस्थी के दूसरे कामो मे जुट गयी तो फिर अनन्यता कहाँ रही। विशुद्ध वात्सल्य रस कहाँ रहा?"

इस पर सूतजी ने कहा—"महाराज! इस विषय पर आप गम्भीरता से विचार करें। शकट-भजन के प्रसङ्ग को ही लिजिए। लालजी को उनकी गोदी मे नीद आ गयी, अब उन्हे सुलाना, सुख देना यह तो माँ का प्रथम कतव्य था। गोदी मे लिये-लिये न तो लालजी को भली भांति नीद ही आती, न उस हुल्लड़ मे सुख ही मिलता। इसलिए एकान्त मे उसके सुख के लिए उन्हें सुला दिया सुलाकर उनके ही पास बैठी रहती, तो सहस्रो गोपिकाएँ जो लालजी को आशीर्वाद देने उनकी मङ्गल कामना

करने उनके जन्म नक्षत्रोत्सव मे सम्मिलित होने आयी हैं, उनके पास न जाती, तो वे सब सोचती—"हम तो कितने उल्लास और उत्साह म आयी हैं, नंदरानी हमसे बात तक नही करती। लाला को ही लिए बैठी हैं, मानो इन्हीं के ही नया अनोखा लाला हुआ है। इसी प्रकार अनादर का अनुभव करके वे बच्चे को आशीर्वाद न देंगी, मेरे बच्चे का अनिष्ट न हो इसी के लिए वे शरीर से आकर गोपियो के बीच रङ्ग मे सम्मिलित हुई, वे ग्राम्यगीत नही थे, सांसारिक विषयभोग के लिए राग रङ्ग नही था, श्रीकृष्ण को ही निमित मानकर उनके ही अभ्युदय के निमित्त उत्सव था। इसमे तो वात्सल्य और निखरता है, इससे अनन्यता नष्ट नही होती, किन्तु और अधिक बढी हुई प्रतीत होती है। जब भी माता लालजी को बिठाकर कर्मान्तर मे लगी, वे कर्म किसी अन्य के निमित नही थे, दूध गर्म करके नारायण का भोग लगेगा, उसका प्रसाद लालजी को दूंगी, मै भी प्रसाद पाऊंगी, मेरे स्तन मे दूध बढेगा, लालजी का पेट भरेगी। सब उन्ही के निमित्त तो व्यापार थे।"

शौनकजी ने कहा—"हां, सूतजी ! आप सत्य कहत हैं। माता जी के तो कायिक वाचिक तथा मानसिक सभी कर्म श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ ही होते थे। हां, तो उस तृणावर्त का क्या हुआ, उस प्रसङ्ग को सुनाइए।"

सूतजी बोले—'हां तो महाराज! वह कंस का सेवक तृणावर्त घात मे बैठा था, उसने ववण्डर का रूप रख लिया। गर्मियो मे जो दिन में आंधी की भांति भभूडा आता है, जिसे बच्चे भूत कहते हैं, वैसा वह बन गया। श्रीकृष्णचन्द्र बैठे थे उन्हे उड़ाकर आकाश मे ले गया और ऐसी आंधी चलायी, कि व्रज के बहुत से वृक्ष टूट कर गिर गये, छप्पर उड गये, सम्पूर्ण व्रजमण्डल धूलि से

आच्छादित हो गया। घरों मे धूलि भर गयी। सभी ने अपने-अपने नेत्र बन्द कर लिये, मुख मे, कानो में, बालों मे तथा सम्पूर्ण वस्त्र और शरीरो मे धूलि भर गयी। आँधी का सॉय-सॉय शब्द दशो दिशाओ मे भर गया। गोप, गोपी तथा गौएँ इस भयकर आँधी, तूफान और ववण्डर से भयभीत हो गयी। एक मुहूर्त पर्यन्त सम्पूर्ण व्रज मे सर्वत्र धूलि छायी रही और घोर अन्धकार व्याप्त रहा, किन्तु माता को चैन कहाँ ? इस आँधी तूफान मे भी वे दौडकर बाहर आयी। देखा वहाँ लालजी नहीं हैं वे बड़ी घबडायी। फिर घर मे गयी फिर बाहर आयी। इधर जायँ उधर जायँ वे कुछ निर्णय ही न कर सकी। दासियाँ तथा अन्य गोपियाँ तो आँखें बन्द किये खडी थी। उस ववण्डर बने तृणावर्त की उडायी धूलि बालू से गोपी गोप ऐसे उद्विग्न हो रहे थे, कि उन्हे अपने और पराये का कुछ भी ध्यान नही था। वे उन त क्षण वायु और भयकर धूलि वर्षा के कारण आत्म विस्मृत बने खडे थे।

माता का हृदय धक्-धक् कर रहा था, वे अनिष्ट की आशका से अत्यन्त हो भयभीत हो रही थी, पगली की भाँति सिर खोले इधर से उधर दौड रही थी। कोई उन्हे देख नही रहा था किन्तु वे अपने बच्चे को हाथों मे टटोल रही थी। बार बार कह रही थीं। मैं अभी तो इसे यहाँ बिठाकर गयी थी, कहीं चला गया, कही उड तो नही गया, उडने को याद आते ही उनका शोक से हृदय भर आया आँखें अपने आप बहने लगी, पुत्र का पता न पाने से वे अत्यन्त ही विह्वल हुईं। शोक मे लाल की मनमोहनी मूर्ति की याद करके वे ढाह मारकर रुदन करने लगीं। जैसे किसी हाल की ब्याई गौ का बछड़ा उनमें पृथक् हो जाय और वह जिस प्रकार व्याकुल होकर तडफडाती है, उससे भी अधिक मैया यशोदा तडफड़ाने लगीं, वे रोते-रोते अचेत होकर पृथ्वी पर गिर गयी,

किसी ने उनका करुणक्रन्दन सुना तक नहीं।

जब कुछ काल के अनन्तर बवण्डर शान्त हुआ, धूलि कुछ कुछ कम हुई, तब अन्य गोपियों ने नंदरानी के करुणक्रन्दन की मर्मान्तिक ध्वनि सुनी। उसे सुनकर तुरंत वहाँ बहुत-सी गोपियाँ आ गयी। यशोदाजी के अंक में तथा इधर-उधर लालजी को न देखकर वे सब मन ही मन अत्यन्त दु:ख सन्ताप करती हुईं मैया के स्वर में स्वर मिलाकर आँखों में अश्रुओं की धारा बहाकर उच्च स्वर से रुदन करने लगीं। गोपियों के रुदन को श्रवण करके चौपालों से गोप भी दौड़े आये। वे सब भी श्रीकृष्ण को न देखकर अत्यन्त दुखी हुए।

इधर तृणावर्त श्रीकृष्ण को उठा ले गया। पहिले तो भगवान् उसके साथ में घूमे। छान छप्पर तो सब गिर ही गये थे, सब देख आये, कौन गोपी कहाँ दधि रखती है, कहाँ मक्खन रखा जाता है कहाँ किसके यहाँ कितने छीके लटक रहे हैं। लालजी को आकाश में उड़ने में बड़ा आनन्द आ रहा था, भोले बालक ही जो ठहरे। बच्चों को चड्डी खाने में बड़ा सुख मिलता है, भगवान् की तो इच्छा थी और चक्कर लगावें किन्तु माता के करुणक्रन्दन को सुनकर उनका नवनीत के सदृश हृदय पिघलने लगा। यह भी क्या आनन्द जिससे दूसरों को कष्ट हो। मेरे लिए व्रजवासी अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। यही सब सोचकर लालजी ने ऊपर ही अपना भार बढ़ाया। अब तो असुर उन्हें ढोने में असमर्थ हो गया। उड़नखटोले की नसें ढीली पड़ गयीं। अब श्रीकृष्ण को मारना तो दूर रहा, स्वयं अपने प्राण बचाने भारी हो गये। उसने सोचा—'भाड़ में जायँ, कंस और चूल्हे में जाय उसकी मृत्यु, अपने प्राण बच जायँ, यही बहुत है। प्राण बचे लाखों पाये, बुद्धू बाबू सकुशल घर आये।" वह श्रीकृष्ण

को छोड़ना चाहता था, किन्तु कृष्ण उसे कैसे छोड़ते। ये तो पकडकर छोडना जानते ही नहो। भूल से भी जो इन्हें पकड़ लेता है। उसके ये गले में लिपट जाते हैं, कसकर पकड़ लेते हैं। जाड़े के दिनों में गङ्गाजी में जोवित रीछ बहा जाता था, किसी साधु ने भ्रमवश कम्बल समझकर दौड़कर उसे पकड़ लिया। उसने भी साधु को अपने पंजो मे पकड़ लिया। अब साधु बाबा कम्बल को तो भूल गये, प्राण बचाने का प्रयत्न करने लगे। किसी ने कहा—"कम्बल को छोड दो।" वे बोले—'मैं तो बहुत छोडना चाहता हूँ, कम्बल ही मुझे नहो छोड़ता।" यही दशा तृणावत की हुई। वह श्याम को छोड़ना चाहता था, श्याम उसके कण्ठ को कसकर पकड़े हुए थे। वह बड़े असमजस में पड़ा, कि यह विचित्र बालक है। उसने पूरी शक्ति लगायी, किन्तु शक्तिमान् के सम्मुख उसकी शक्ति क्या काम कर सकती थी। उसका गला घुटने लगा। हुच्च-हुच्च करके हिचकियाँ लेने लगा। आँखें निकल आयी और स्वाँस बन्द होने से वह निश्चेष्ट हो गया। उसकी वाणी बन्द हो गयी। प्राणहोन होने से वह विचित्र बालक को लिये हुए, धडाम से एक बडी भारो शिला पर गिर गया। गिरते ही उसका चकनाचूर हो गया। लालजी उसे लिये हुए वहीं गिरे जहाँ गोपियाँ विलाप कर रही थी, रोते-रोते मैया को सान्त्वना दे रही थी। जैसे आकाश मे उड़ता हुआ कोई पहाड़ गिरा हो, अथवा शिवजी के बाणो से विद्ध होकर त्रिपुर का काई पुर गिरा हो, अथवा कोई बडा विमान आहार चुक जाने से गिर गया हो अथवा इन्द्र का वज्र भूल से गिर पड़ा हो, उसी प्रकार वह असुर लालजी को लिये हुए पत्थर की पटिया पर गिरा। उस पर गिरते ही उसके समस्त अङ्ग खण्ड-खण्ड हो गये। गोपियों ने अत्यन्त विस्मय के साथ देखा लालजी उसके

ऊपर पडे हँस रहे हैं और अपने दोनो हथो को पटक रहे हैं।

लालजी को देखते ही गोपियाँ दौड, पडी वे न राक्षस से डरी और न उन्होने उसके विकराल मुख की ओर ध्यान दिया वे एक साथ झपटकर श्रीकृष्ण को उठा लायी और लाकर माता की गोद मे उन्हे लिटा दिया। अपने प्यारे पुत्र का सुखद स्पर्श पाकर माता को चेत हुआ। पुत्र के हँसते हुए मुख को देखकर माता के रोम-रोम खिल उठे। गोपी तथा गोपो के हर्ष का ठिकाना नही रहा। वे आपस मे कहने लगे—'देखो, कैसे आश्चर्य की बात है, बच्चे के तनिक भी चोट नही आयी। प्रतीत होता है, यह असुर ही लाला को उठा ले गया था।'

इस पर दूसरे ने कहा—"यही दुष्ट ले गया था। ले गया तो उसका फल भी इतने पा लिया। बडे लोग कहते हैं जो दूसरो के लिए खाई खोदता है, उसके लिए पहिले से ही कुआँ तैयार रहता है। एक पुरानी कहावत है कि पापी अपने पाप से स्वय मर जाता है, साधु अपनी समता के कारण स्वत भय से छूट जाता है।"

कोई कहता—'ये इतने राक्षस अब ब्रज मे आ कहाँ से गये। और किसी बालक पर प्रहार तो करत नही, लाला के ही ऊपर सब चोट करते हैं, बात क्या है।"

इस पर दूसरा कहता—"ये सब मरने वाले हैं, ऐसा लगता है, हमारे लाला के हाथ मे कोई छूमन्तर है, जिस राक्षस को यह छू देता है वही मरकर अपने आप गिर पडता है।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! लालजी को सकुशल देखकर आँखो मे आँसू भर कर नन्दजी कहने लगे—"हमने पूर्व-जन्म मे ऐसा कौन-सा तप किया है, अथवा विष्णु भगवान् का विधि पूर्वक पूजन किया है, वा इष्टपूर्तादि कर्म, दान, दया या दूसरे सत्कर्म किये हैं, जिनके फल स्वरूप सौभाग्यवश अपने स्वजनो को आनदित

करने के लिए मृत्यु के मुख मे गया हुआ हमारा लाला सकुशल लौट आया है।" इस प्रकार अनेक प्रकार से अपने भाग्य की प्रशसा करते हुए वे वसुदेवजी की बात का बारबार समर्थन करने लगे और उन्हे योगी, सिद्ध अथवा ऋषि बताने लगे। इसके अनन्तर जो माता को अपना अद्भुत ऐश्वय लालजी ने दिखाया, उसकी कथा मैं आगे कहूँगा। आप सावधान हो जायँ।"

छप्पय

सैर सपट्टो करत असुर सग नभमहँ डोलत।
इत गोपी अरु गोप विरहमहँ सब मिल रोवत॥
हरि सब देखे दुखी असुर को गरो दबायो।
पटियापै लै गिरे ताहि परलोक पठायो॥
निरखि लालकूँ कुशल सब, मुदित मातु गोदी धरे।
बालकृष्ण अद्भुत चरित, यो व्रजमह बहुतक करे॥

माता को विश्वरूप दर्शन

[८३४]

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता॥
पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम्।
मुखं लालयती राजञ्जृम्भतो ददृशे इदम्॥❀

(श्री भा० १० स्क० ७ अ० ३४, ३५ श्लो०)

छप्पय

एक दिवस लै अङ्क लालकूँ मातु खिलावै।
मातृ-नेहमहँ झरत मधुर पय मुदित पिश्रावै॥
निरखि मंद मुसकान मातु मनमाँहिँ सिहाई।
जमुहाई हरि लई मातु तब चुटकि बजाई॥
मुखमहँ माता ने लखे, रवि, शशि, सागर, द्वीप, वन।
अनिल, अनल, जल, नभ, अवनि सरिता, पर्वत, जीव-गन॥

❀ श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन! एक दिन की बात है मैया यशोदा ने लालजी को गोद मे लिया। मातृ-स्नेह के कारण उनके स्तनो से दूध झर रहा था। उसे प्रयत्न स्नेह पूर्वक माता ने पान कराया। उनके दूध पीने पर माता उनके मन्द मुस्कान युक्त मनोहर मुख का चुम्बन कर रही थीं उसी समय शिशु श्याम को जमुहाई आयी, माता ने उनके मुख म इस सम्पूर्ण विश्व को देखा।"

शास्त्रकारो ने इस वात पर वार-वार वल दिया है, कि परम पुरुष प्रभु भक्त के वश में हैं। भक्त उन्हे जैसा नाच नचाते हैं, वैसा ही नाच वे नाचते हैं। भक्त यदि उन्हे पुत्र वनाकर दुग्ध पिलाना चाहते हैं, मुख चूमना चाहते हैं, तो वे नन्हें-से शिशु बनकर अपने आप दोनो हाथो से वोवो को पकडकर चुसुर-चुसुर करके दूध पीने लगते हैं। मुख चूमने को अपने आप अपने मुख को उनके मुख पर रख देते हैं। भक्त उन्हे मित्र सखा बनाना चाहते, हैं तो वे उनके गलों में अपने वहियाँ डालकर प्रेम से खेलते हैं उनके घोड़े वनते है। भक्त उन्हे पति बनाना चाहते हैं, तो वे मूर्तिमान रस वनकर उनके मुखावरण को हटाते है और सरसता में उन्हे न्हिला देते है। भक्त यदि दास बनकर उनकी सेवा में सलग्न रहना चाहते है, तो उन्हे सेवा का सुअवसर देकर उनकी सेवाओं को स्वीकार करते हैं। भगवान् भक्त के अधीन है, भक्तो के हाथ वे विक जाते है। यह उनकी भक्त-वत्सलता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! एक दिन मैया यशोदा लालजी को गोदी मे लिये हुए खिला रही थीं, माता के हर्ष का ठिकाना नही था उनका वात्सल्य स्नेह पूर्णिमा के सागर के समान उमड़ रहा था। उनके बड़े बड़े स्तनो से अपने आप दुग्ध झर रहा था। पुत्र के मुख की मद-मद मुसकान तथा मन मोहिनी माधुरी का पान करते-करते माता अघाती ही नही थी, कभी उनके काले-काले घुँघराले वालों मे अपनी कोमल-कोमल उंगलियाँ डालकर उन्हे सुलझाती, कभी गुलगुली करके उन्हे हँसाती, कभी ऊपर उछालती, कभी किच किचाय के छाती से चिपटा लेती। कभी वार-वार मुख चूम-चूमकर उनके छोटे-छोटे नन्हे नन्हे गालों को लाल वना देती। कभी दोनो हाथो मे लेकर

हिलने लगती। भगवान् भी बड़े मग्न हो रहे थे। आज उन्हें याद आयी, कि अखिल ब्रह्माड मेरे पेट मे है, माता मुझे नन्हा सा शिशु ही समझती है, इसे कुछ चमत्कार भी तो दिखाना चाहिए। उसी समय वालकृष्ण को जमुहाई आ गयी। जमुहाई आ क्या गई उन्होने उसे बुला लिया। माता ने देखा मेरे बच्चे को जमुहाई आ गई। यह जमुहाई राड एक राक्षसी है, जब यह आवे तब चुटकी बजा देनी चाहिये। चुटकी की धुनि सुनकर यह तुरन्त भाग जाती है, जो जमुहाई आने पर चुटकी नही बजाते उनके ऊपर यह राक्षसी चढ जाती है। अतः अपने स्वजनो को बन्धु बान्धवो को, गुरुओ तथा राजा को जमुहाई आवे तब उनके हितैषियो को चुटकी बजा देनी चाहिये। बच्चो को जमुहाई आवे तो माताओ को अवश्य चुटकी बजानी चाहिये। इसलिये यशोदा मैया ने लालजी को देखकर चुटकी बजायी। अब तो श्याम स रहा नही गया, क्रीडा प्रिय ही जो ठहरे, उन्होने सोचा—'माता को दिखाऊँ तो सही, मेरे पेट मे यह सम्पूर्ण विश्व भरा है, सब की रक्षा तो मेरे द्वारा होती है मेरा अनिष्ट कौन कर सकता है।" उनका कुछ अभिप्राय माता को ऐश्वर्य दिखाना नही था, एक विनोद सूझा कि परम वात्सल्यमयी माता पर इस विश्व रूप दर्शन का क्या प्रभाव पडता है, इसके वात्सल्य मे कुछ न्यूनता तो नही आती। इसलिये वे मुख फाडे ही रहे। माता ने भगवान् के खुले हुए मुख मे देखा, उसमे अनन्त आकाश है, अन्तरिक्ष है, असख्यो ज्योमण्डल है, दिशाएँ हैं अगणित सूय, चन्द्र द्वीप, पर्वत, नद, नदी, वन, अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा असख्यो स्थावर जगम प्राणी सुखपूर्वक निवास कर रहे है। अकस्मात् अपने पुत्र के मुख मे ऐसी अलाइ वलाइ देखकर माता डर गयी, उसे भूत प्रेत का भय हुआ।

नेरे लाला के मुख मे यह क्या बाजीगर का-सा तमाशा दीख रहा है। कोमलाङ्गी माता भय के कारण थर-थर कांपने लगी, मृगी के समान उनके भोले-भाले नेत्र भय के कारण स्वत. ही

वन्द हो गये। भक्तवत्सल भगवान् अपनी माता को इस प्रकार भयभीत देखकर हस पड़े। इन्होने मुख बन्द किया। पुनः जमुहाई ली। माता ने चुटकी बजायी, भक्तवत्सल भगवान् छाती से लिपट गये और पुन. दूध पोने को रोने लगे। माता न

दूध पिलाया, वह उस बात को भूल गयो और फिर अपने लाल का मुख चूमकर प्यार करने लगी। भगवान् को भक्तवत्सल हैं अपने भक्तो के-आश्रितो के लिये व सब कुछ कर सकते हैं। भक्तो का मन रखने के लिए ही वे क्रीडा करते हैं। भीष्म पितामह् को रथ का पहिया लेकर मारने दौड़े। अर्जुन तो उनकी कृतज्ञता के भार से दब गया, कि भगवान् मेरे लिये अपनी अस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा को भङ्ग कर रहे हैं किन्तु वास्तविक बात यह थी, वे भीष्म को प्रतिज्ञा को पूरी करने;को यह नाट्य दिखा रहे थे। भगवान् की भक्त वत्सलता पर और जमुहाई के ऊपर चुटकी बजाने पर मुझे एक दृष्टान्त याद आ गया, मुनियों! आपकी आज्ञा हो तो उसे सुना दूँ, कि भगवान् अपने भक्तो को उनकी इच्छानुसार सेवा का सुयोग किस प्रकार प्रदान करते हैं।"

शौनक जी ने कहा—"हाँ; सूतजी! दृष्टान्त अवश्य सुनाइये। दृष्टान्त मे विषय स्पष्ट हो जाता है और दृष्टान्त छोटे बडे स्त्री पुरुष सभी को याद हो जाता है विषय भली-भाँति समझ मे आ जाता है।"

सूतजो बोले—"अच्छा सुनिए महाराज! यह त्रेतायुग की कथा है, जब अवध कुलमण्डल मथिली जीवनधन भक्तवत्सल भगवान् रावण को मारकर अवधपुरी मे राज्य कर रहे थे। राज्याभिषेक होने के अनन्तर सुग्रीव विभीषण अंगद नील नल तथा अन्यान्य रीछ वानर आदि को भगवान् ने विदा कर दिया था। केवल हनुमान् जी सेवा के लिये रह गये थे। अब न तो पृथ्वी पर कोई शत्रु ही शेष रहा था, न राक्षसो का ही उपद्रव था। पहिले तो हनुमान् जी मार धाड मे लग रहत थे, अब तो उन पर एकमात्र भगवान् की सेवा ही शेष रह गयी थी,

उनका अमित पराक्रम था। अद्भुत सामर्थ्य थी, भगवान के सकेत को समझकर मन से भी अधिक वेग से जाते, काम कर लाते और निरन्तर सेवा में जुटे रहते। भरतजी, लक्ष्मणजी, शत्रुघ्न जी यहाँ तक कि महारानी जानकी जी के लिये भी कोई सेवा शेष न रहती, फिर अन्य सेवकों की तो बात ही क्या।

सेवकों की सम्पूर्ण सेवा पर कोई अधिकार कर लेता है, तो उन्हे उस सेवक क प्रति डाह होने लगता है, स्वामी का भी पक्षपात हो ही जाता है ऐसे सेवक के प्रति। इस बात से रामानुजों को श्रीजानकीजी को बडी चिंता हुई। इन सबने मिलकर एकान्त मे गोष्ठी की।

लक्ष्मणजी ने कहा—"देखो, वन मे सब सेवा मैं ही करता था, अब इस बन्दर ने सब सेवा पर स्वय ही अधिकार कर लिया है। इसे किसी तरह सेवा से हटाना चाहिए।"

भरतजी तो बड़े सरल ठहरे, वे तो कभी भगवान् की ओर आँख उठाकर भी नही देखते थे, वे किसी का विरोध करना जानते ही नही थे। उन्होने कहा—"देखो, भाई किसी के सिद्धान्त का प्रत्यक्ष खंडन न करना चाहिए। अपने पक्ष का मडन करना उस पर विश्वास के सहित आचरण करना-यहीं पर पक्ष का खडन है। तुम हनुमान्जी को सेवा से पृथक् मत करो। स्वय सब सेवा सम्हार लो, भगवान् से स्वीकृति ले लो। जब तुम सेवा करने लगोगे, तब हनुमान्जी अपने आप सेवा से रहित हो जाएँगे।"

इस सम्मति को सबने स्वीकार कर लिया। अरुणोदय से अरुणोदय पर्यन्त जितनी भी छोटी से छोटी सेवा थी, सबने बाँट ली। प्रातः उठकर कौन खड़ाऊ रखेगा, कौन जल देगा, कौन उठावेगा। कौन शौच को जल देगा, कौन मिट्टी लावेगा,

कौन पात्र को मलेगा, कौन दतधावन लावेगा, कौन उबटन अगराग लावेगा, कौन स्नान करावेगा स्नान कराना, आसन बिछाना भोजन कराना सवारी लाना, पान, इलायची छत्र, चंवर आदि आदि जितनी सेवाएं थी, सबने बाँटली। बहुत सोच सोचकर छोटी से छोटी सेवा लिखली, हनुमानजी के लिए एक भी नही छोडी। लिखकर लक्ष्मणजी ने कहा— इस पर भगवान् की स्वीकृति और मिल जानी चाहिए।"

भरतजी ने कहा – "भगवान् के सम्मुख इसे उपस्थित कौन करे, मेरा तो साहस होता नही। मैं तो कभी उनके सम्मुख बोलता भी नही। मैंने ऐसी सेवाएं ली हैं, जिनमे उनके सम्मुख न होना पडे।"

इस पर लक्ष्मणजी ने कहा—' भगवान् के सम्मुख तो मैं भी इसे नही ले जा सकता।"

भगवती जनकनन्दिनी ने कहा—"तुम सब चिन्ता क्यो करते हो, भगवान् के सम्मुख मै उपस्ति करूंगी। उपस्थित ही नही करूंगी इसे स्वीकार भी करालूंगी।' सब ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"बहुत अच्छी बात है माताजी! आप का ही तो हम सबको सहारा है। आपकी बात को तो भगवान् टाल नही सकते।"

सभा समाप्त हुई। जब राजसभा लगी, तब माताजी ने चिट्ठा भगवान् के सम्मुख रखा। भगवान् ने हँसते हुए पूछा— 'यह क्या है?"

माताजी ने कहा— हम लोगो को सेवा का समय ही नही मिलता, इसलिए सबने अपनी अपनी सेवा बांट ली है केवल आपकी स्वीकृति की देरी है।"

भगवान् ने सबकी सेवा पढी। वे तो घट-घट को जानने वाले हैं।

समझ गये, कि ये सब लोग हनुमान्जी को सेवा से वञ्चित करना चाहते हैं। सीधे न कहकर घुमा फिराकर कह रहे हैं प्राविण प्राणायाम कर रहे है। किन्तु मना भी कैंप करते ये भी तो सब भक्त है, आश्रित है। आश्रिता के मन को दुखाना तो दयालु दीनबन्धु जानते ही नही। बिना कुछ आपत्ति किये भगवान् न अपना राजमुहर लगादा, हस्ताक्षर कर दिये, स्वीकृति दे दो। सबको बडी प्रसन्नता हुई।

निश्चय यह हुआ, कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा नव सवत्सरसे यह सदा के लिए लगेगी, चतुर्दशा और अमावस्या को सब अपनी अपनी सेवाएँ समझ लें। त्रयोदशी को स्वीकृति हुई। चतुदशी को हनुमान्जी का जन्म दिवस था, वे बडे उत्साह से भगवान् की सेवा को आये। उन्होन खडाऊँ उठाये। सीताजी ने कह दिया—"देखो, हनुमान् खडाउओ मे हाथ मत लगाना। यह तो मेरी सेवा है।" हनुमान्जी माताजी की आज्ञा को कसे टालते चुप हो गये, छत्र उठान लगे, भरतजा ने कहा— यह मेरा सवा है।" चँवर उठाने लगे लक्ष्मणजी बोले—"यह मेरी सवा है।" हनुमान्जी आज चकित रह गये, कि सब सवाएँ इन्होने ही बाँट ला। वे वोले—' भाई, मेरी कौनसी सेवा है।"

हँसत हुए लक्ष्मणजी वोले—"हम लोगो से जो वच जाय, वह तुम्हारी सेवा है।"

हनुमान्जी ने कहा—"दिखाओ, मुझे सब सेवाओ की सूची।"

तुरन्त लक्ष्मणजी ने सूची दिखायी। हनुमान्जी ने कई बार उसे आदि से अन्त तक पढा, उसम कोई सेवा शेष ही नहीं थी। वे वोले—"इसमे मेरी तो कोई सेवा है ही नही।"

सीताजी ने हँसकर कहा—"भैया, तू उस समय उपस्थित

ही नही था। अब तो सबकी सेवाएँ स्वीकृत भी हो गयी, महाराज की मुहर भी लग गयी। अब तुझे कोई सेवा दिखाई दे तू भी लेले।"

हनुमान्जी तो ज्ञानियो मे अग्रगण्य हैं। सोचकर बोले—"अच्छा, भगवान् को जब जमुहाई आवेगी, तब चुटकी बजाने की सेवा किसकी है।"

यह सुनकर सब लोग हँस पडे। भगवान् से भी न रहा गया। वे भी हँस गये। हँसते-हँसते सोताजी ने कहा—"भैया चुटकी बजाने की सेवा तेरी। जा आज से तू चुटकी वाला हुआ।" हनुमान्जी ने गम्भीर होकर कहा—' मैं ऐसे थोडे ही मानूंगा। जब आप सर्व लोगो ने पक्की लिखा-पढ़ी करालो है, तो मेरी भी लिखा पढो हो जाय। महाराज की मुहर लग जाय।"

भरतजी ने लिखी, भगवान् को तो सबकी सेवा स्वोकार करनी है, उन्होंने मुहर लगा दो हस्ताक्षर कर दिये। हनुमानजी तुरन्त हाथ जोडकर भगवान् के मुख के सम्मुख खडे हो गये। भरतजी ने कहा—' हनुमान्जी तनिक पोछे हटकर खड़े हो, हम लोग सेवा कैसे करेंगे।"

हनुमान्जी ने दृढता के स्वर मे कहा— 'अब महाराज! सब लोग अपनी-अपनी सेवा करो। मेरी तो मुख की सेवा है। जमुहाई तो मुख मे ही आवेगी। भगवान् के स्नान भोजन घूमने आदि का तो समय नियत है। जमुहाई का तो कोई समय नहीं। न जाने कब जमुहाई आजाय, इसलिए मुझे तो मुख को ही देखते रहना रहना है।"

यह सुनकर सब लोग चकित रह गये यह इसने अच्छी सेवा लेली। हमे सेवा करने ही न देगा। भगवान् जब सभा से उठकर चले तो हनुमान्जी उनके मुख की ओर देखते हुए उलटे-

लटे चले । सब हँसने लगे, किन्तु सेवक तो सेवा के सम्मुख
सी की हँसी की ओर ध्यान नहीं देते । भगवान् जब रथ पर
राजे तो सारथी के पीछे उलटा मुख किये हनुमान्जी भी बैठ
ये । भगवान् जब गेंद आदि खेलते, तो उनके मुख को निहारते
ए आगे-आगे दौड़ने लगते । सबने कहा—"यह तो बड़ी आपत्ति
ा गयी ।" अस्तु जैसे-तैसे सायंकाल हुआ । भगवान् महल
गये, ब्यालू पाने लगे तो माता कौशल्या के सम्मुख ही बैठ
ये ।

कौशल्याजी ने प्यार से कहा—"बेटा ! हनुमान् तू भी प्रसाद
ले ।"

हनुमान्जी बोले—"माँ ! अब मैं जैसे पहिले भगवान् के पीछे
ता था, वैसे तो पा नहीं सकता । यहीं मेरे हाथ में दो चार फल
दे खाता रहूँगा, और भगवान् के मुख को देखता रहूँगा, ऐसा
हो मेरी सेवा में भूल-चूक हो जाय । माता हँस पड़ी, वहीं
न्हें भोजन दे दिया । भगवान् के मुख को देखते-देखते वहीं
फा लगाने लगे । भगवान् कुल्ला करने चले तो वे भी आगे-
गे चले । सीताजी ने कहा—"तू सामने से हटता क्यों नहीं ।"
धिकार के स्वर में हनुमानजी ने कहा—"हटूँ कैसे ? मुझे
पनी सेवा में सावधान रहना है । आप अपनी सेवा करो, मैं
पनी करता हूँ ।"

जानकीजी हँस पड़ी क्या कहती । जब भगवान् ब्यालू
रके ऊपर चित्रसारी पर चढ़ने लगे, तो आगे-आगे उलटे
नुमान्जी भी उनके मुख की ओर निहारते हुए चले । चित्रसारी
भी उलटे-उलटे आगे घुस गये । भगवान् जब शैया पर
राजमान् हो गये, तो सीताजी ने कहा—"तू अब तो पिंड
ड़ेगा भैया ! जा बाहर जा ।"

हनुमान्‌जी ने अधिकार के स्वर में बल-पूर्वक कहा—"बाहर कैसे जाऊँ भगवान् को जमुहाई आयी, तो चुटकी कौन बजावेगा ? मैं तो यहीं बैठा बैठा भगवान् के मुख को निहारता रहूँगा।"

जानकीजी ने मुख में कपडा ठूँसते हुए हँसते-हँसते कहा—तू बडा जंगली है रे ! देख भैया, माता-पिता जहाँ एकान्त में रहे, वहाँ पुत्र को रहना न चाहिये।"

हनुमान्‌जी ने—"यह तो मै जानता हूँ, इसे मुझे बताने की आवश्यकता नही, किन्तु रात में जमुहाई आने पर चुटकी कौन बजावेगा ?"

जानकी जी ने कहा—"जा भाग जा। चुटकी तेरे बदले में मैं बजादूँगी।"

हनुमान्‌जी ने दृढ़ता के साथ कहा—"आप कैसे बजा देंगी ? जब सेवा का बँटवारा हो गया, तो जिसकी सेवा वही कर सकता है। आपकी सेवा को मै नही लेता। फिर आप मेरी सेवा को क्यो छीनती हैं ?"

जानकीजी के तो हनुमान्‌जी बडे लाडले लडके थे, उनका इनके ऊपर अत्यत वात्सल्य था, उन्होने डाँटते हुए हँसते-हँसते कहा—"चल भग, बाहर करना अपनी सेवा।" यह कहकर उन्होने हाथ पकडकर हनुमान्‌जी को बाहर निकाला और भीतर से किवाड़े बन्द करली।"

हनुमान्‌जी ने मन में सोचा—"अच्छी बात है हमे क्या ? भीतर रहते तो भगवान् को जब जमुहाई आती तभी चुटकी बजाते, अब तो पता नही भीतर कब जमुहाई आजाय, इसलिये रात भर बैठे-बैठे चुटकी बजाते रहेंगे।" यह सोच करके। चित्र-

सारी के ऊपर चढ गये और दोनों हाथों से लगे चुटने बजाने। उनकी अखड चुटकी चलने लगी।

भगवान् तो भक्तवत्सल ही ठहरे। उन्होने देखा जब मेरा भक्त जमुहाई के लिये चुटकी बजा रहा है, तो मुझे भी जमुहाई लेनी चाहिये। मेरी तो प्रतिज्ञा है, जो मुझे जिस भाव से भजता है उसे मैं भी उसी भाव से भजता हूँ। अब क्या है भगवान् को आने लगी जमुहाई पर जमुहाई। जैसे उधर उनकी अखड चुटकी चल रही थी, वैसे ही भगवान् को यहाँ अखड जमुहाई चलने लगी। मुँह बंद ही नही होता था। जानकीजी बडी घबडायी क्या हो गया महाराज को। वे बार-बार उनके श्रीअङ्ग को झकझोरती और कहती—"प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! क्या है, क्या बात है ?"

किन्तु प्राणनाथ के प्राण तो अपने भक्त मे लगे थे, वे हीं-हीं करते। बोलते तो मुँह बन्द होता। मुख उन्हे बन्द करना नही था। अखड जमुहाई लेनी थी। अतः बार-बार पूछने पर भी हीं-हीं कर देते।

जानकीजी तो अत्यंत सुकुमारी ठहरी, वे तो वानर की मूर्ति चित्र मे भी देख लेती तो डर जाती। भगवान् की ऐसी दशा देखकर वे थर-थर काँपने लगी। डरी हुई लडखडाती गति से नीचे कौशल्या मया के पास आयी और बोली—"अम्माजी ! अम्माजी ! न जाने आपके बड़े लालजी को क्या हो गया है, वे मुँह ही नही बन्द करते।" यह सुनकर माता जैसी पडी थी वैसी ही दौड़ी गयी। राघव की ऐसी दशा देखकर वे अत्यंत भयभीत हुई। वे कहने लगी—"हाय ! कोई भूत प्रेत लल्ला के के ऊपर आ गया। लंका मे बहुत-से राक्षस मारे थे, किसी मरे राक्षस ने ही घर दबाया। उन्होने तुरन्त भरतजी लक्ष्मण जी

तथा शत्रुघ्नजी को बुलाया। माँ रोने लगी। भूतनाशक ओष-धियो की पुटलियाँ लाकर श्रीराघव के कठ मे हाथो मे बाँधी। मोरपख जलायी। कई वस्तुओ की धूनी दी। मिरचाओ को लेकर अग्नि मे जलाया। तवे पर नमक राई को जलाया। किसी से कोई लाभ नही। तब वे लक्ष्मणजी से बोली—"भैया, किसी भूत उतारने वाले, स्याने ओझा या तान्त्रिक का बुलाओ। अवश्य ही कोई भूत बाधा है। माता को पता नहीं यह भक्त वत्सलता रूपी भूतिना की भयकर बाधा है।

लक्ष्मणजी कहा—"अम्मा! भूत तो अशुचि लोगो के शरीर मे आते है, श्रीराघव तो नित्य शुचि हैं।"

माता ने डाँटकर कहा—'अरे, तुम सब ऐसे ही कहते हो। ऐसे ही कहकर तुमने मरे बच्चे को राक्षसो से भिडा दिया। जा तू किसी तत्र मत्र जानने वाले को बुला ला।"

लक्ष्मणजी ने कहा—"मै गुरुजा को बुलाये लाता हूँ, वे जैसा कहेगे वैसा होगा।"

माता ने शीघ्रता के साथ कहा—'हाँ, हाँ, जा। यह तैंने अच्छी बतायी। वे गायत्री मत्र पढ कर जल को कुशा से छिडक देंगे, सब भूत प्रेत बाधा शात हो जायगी।'

लक्ष्मणजी तुरन्त गये, गुरुजी को बुला लाये। गुरुजी ने देखा भगवान् मुख बद ही नही करते। उन्होने उनके सिर पर हाथ फेरा और स्नेह से बोले—"रामभद्र! क्या बात है? यह क्या लीला कर रहे हो।"

पडे ही पडे भगवान् ने गुरुजी के पैर छुए और—हो हो कर-ने लगे। वशिष्ठजी बडे हँसे यह आज क्या लीला हो रही है।"

माता रोने लगी और गुरुजी के पैरो पडकर कहने लगी—"महाराज! बच्चा है, जगल मे बहुत से भूत प्रेत रहते हैं, राक्ष-

सोको भी इसने मारा है कोई भूत, प्रेत या राक्षस ही इसके शरीर में घुस गया है। आप गायत्री मंत्र पढ़ दें। कुशाका जल छिड़क दें। कुछ भभूत लगा दे। किसी की मानता मनानी हो, तो मानता मना दे, दान पुण्य करा दें। मेरे बच्चे को अच्छा कर दे।"

वशिष्ठजी ने हँसते हँसते कहा—"महारानीजी! भूत-बाधा-को तो मैं भली भाँति जानता हूँ भूत बाधा तो है नही।"

माता ने अत्यन्त ही उत्सुकता के साथ पूछा—"तो क्या बात है महाराज!"

वशिष्ठजी ने कहा—"किसी भक्त का अपराध हो गया है।" फिर भरत शत्रुघ्न तथा लक्ष्मणजी से पूछा—"तुम लोगो ने आज कोई नयी बात तो नही की है?"

लक्ष्मणजी ने कहा—"नही महाराज! नयी तो कोई बात नही हुई।"

गुरुजी ने पूछा—"तुम लोगो ने हनुमान्जी से तो कुछ नही कह दिया।"

बीच मे ही जानकीजी बोल उठी—"हाँ, महाराज! हनुमान-जी के साथ इन लोगो ने बडा अन्याय किया है, उनकी सब सेवा छीन ली हैं।"

मन ही मन तीनो भाइयो ने सोचा—"देखो, इन्होने ही तो सब स्वीकृत कराया और सब अपराध हमारे सिर मढ दिया। छोटो को बडी विपत्ति है। छोटा बनना ही पाप है। बोलें तो डाँट खायें न बोल तो डाँट खायें। बडे लोग जो करें वह सब ठीक, छोटे जो करें वह सब अपराध, किन्तु उनके सम्मुख कोई कहता क्या, सब चुप रहे।

गुरुजी ने कहा—"तो उनकी सेवा नही रही।"

जानकीजी ने कहा—"उन्होने अपने आप जमुहाई आने पर चुटकी बजाने की सेवा ली थी और उसे भगवान् ने स्वीकार भी कर लिया था।"

हँसकर गुरुजी बोले—"जब भगवान् ने स्वीकार ही कर लिया, तो वे जब चुटकी बजावेंगे तभी ये जमुहाई लेंगे। प्रतीत होता है, वे कही चुटकी बजा रहे होगे। खोजो उन्हे कहाँ है।"

अब हनुमान्‌जी की खोज हुई। भरतजी ने देखा चित्रसारी के ऊपर से अखड चुट्ट-चुट्ट की ध्वनि सुनायी देती है। तुरन्त वे ऊपर चढ गये। देखा नेत्र बन्द किये हनुमान्‌जी दोनो हाथो से चुटकी बजा रहे हैं।

भरतजी ने कहा—"हनुमान्‌जी! हनुमान्‌जी! क्या कर रहे हो? चलो गुरुजी बुला रहे हैं।"

नेत्र बन्द किये ही किये मारुतिनन्दन बोले—"मुझसे बात मत करो, मैं अपनी सेवा मे सलग्न हूँ।"

यह सुनकर भरतजी लौट गये, लक्ष्मणजी आये, शत्रुघ्नजी आये, किन्तु उन्होने किसी की सुनी ही नही, तब गुरुजी स्वय आये और बोले—"अरे, भाई हनुमान्! क्या तुमने यह खेल बना रखा है?"

गुरुजी को देखकर उन्होने नेत्र खोले और चुटकी बजाते-बजाते ही उनके पैर छुए। गुरुजी ने कहा—"अरे, भाई! चुटकी बन्द करो, जब तक चुटकी बन्द न करोगे, महाराज जमुहाई ही लेते रहेंगे।"

हनुमान्‌जी ने कहा—"महाराज! जब तक भगवान् जमुहाई लेंगे, तब तक मैं चुटकी बन्द न करूंगा, मेरी तो सेवा ही है।"

तब तक सीताजी भी आ गयी और बोली—"अरे भैया, हमारे अपराध को क्षमा कर दें। सब सेवा तेरी ही रहो। अब

तू जो भी करेगा, उसमे हम कोई हस्तक्षेप न करेंग।" यह कह कर वे पकडकर भगवान् के सम्मुख ले गयो। गुरुजी ने हनुमान्जो के हाथ पकड लिये तव भगवान् ने मुख वन्द किया। सवको घिरा देखकर भगवान् ने पूछा—'आप सव यहाँ क्यो एकत्रित हुए हैं।"

हँसते हुए गुरुजो ने कहा—"आपकी भक्तवत्सलता की लीला को देखने हम आये हैं। धन्य है प्रभो! आपकी भक्त-वत्सलता। हनुमानजी ही आपके सच्चे सेवक हैं और आपही उनके सच्चे स्वामी हैं।"

इस पर भगवान् ने कहा—"हनुमान्जी की सेवा से हम अत्यन्त सन्तुष्ट हैं आज से आपका नाम भक्ताग्रगण्य हुआ। आपके आपक जन्म दिन के दूसरे दिन दीपावली को जो आपकी घी की मूर्ति वनाकर चूरमा (मलीदा) से जो आपका पूजन करेंगे, उनसे हम सदा सन्तुष्ट रहेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उसी दिन से दिवाली के दिन सब लोग घृत का लांगुरा बनाकर पूडियो को मीडकर उसमे खील वतासे, खोर और चोनी मिलाकर–चूरमा वनाकर–प्रत्येक घर मे लाँगुरा को पूजा होती है। वे लाँगुरा और कोई नही हनुमान्जो ही है। लगूर से लाँगुरा वन गया। आजपर्यन्त घर-घर मे दिवाली के दिन उनकी पूजा होती है। सो, ऋषियो! भगवान् वडे ही भक्तवत्सल हैं, उनका जो जिस प्रकार भजन करता है, वे भी उसे उसी प्रकार फलदेते हैं। जैस को तसे बन जाते हैं। भक्तो की प्रतिज्ञा पूरी करने को वे सब कुछ कर सकते है। अखिल ब्रह्माण्डो के अधिनायक यशोदा मैया की गोदी म वालक बने पडे रहते हैं। मक्खो मच्छर श्रीअङ्ग पर वैठ जाते हैं, तो उन्हे भी नही उडा सकते हैं। रोते है और रो रोकर माताजी

से प्रार्थना करते हैं, मेरी मक्खी को उडा दे जो चराचर विश्व को अहार प्रदान करते हैं व माता के स्तन के दूध के लिये रोत हैं, और गोद मे जाने को व्याकुल हो जात हैं। ऐसे भक्तवत्सल भगवान् को छोडकर जो जीव अन्य किमी की शरण मे जाते हैं, वे कामधेनु के सुन्दर स्वादिष्ट दूध को छोडकर मदार क दूध को पीने की इच्छा करते हैं। कल्पवृक्ष की छाया छोडकर एरड के नीचे दौडते हैं। गगाजल को छोडकर मोरी का जल पीना चाहते हैं। यह मैंने अत्यत सक्षेप म भगवान् की माता को विश्वरूप दिखाने की लीला कही। अब आप और क्या सुनना चाहत है?"

शौनकजी ने कहा— 'सूतजी! आपने भगवान् के नाम करण की लीला तो कहा ही नही। भगवान् एक वर्ष के भी हो गये। नाम तो दशव दिन रखा जाता है।

विस्मय स्वर मे सूतजो कहा—"अजी, महाराज! लीला के आवेश मे मैं भूल ही गया मै ही नही भूला मेरे गुरुजी—भगवान् शुक-भी भूल गये थे। कोई वात नही मिश्री क कूंजे मे जिधर से भी मुख मारो, उधर ही मीठा लगेगा। लाइय अब मैं भगवान् के नाम करण का लीला वो सुनाता हूँ। आप दत्त चित्त होकर श्रवण करें।'

छप्पय

सहसा सत मुखमाँहि निरखि सब सहमी जननी।
थर-थर कापहिँ मनहुँ, जाल लखि डरपति हरनी॥
निहि हित तरसत विज्ञ मातु-सो विपदा चीन्हीं।
निरछल निरख्यो नेह सवरण लीला कीन्हीं॥
सूत कहैं-बल श्याम की नाम-करण लीला कहू।
भूल्यो हौं आवेशमहँ, कृष्ण भाव भावित रहू॥

— ※ —

कीर्तनीयो सदा हरिः

सचित्र

भागवत चरित

(सप्ताह)

रचयिता—श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

श्रीमद्भागवत के १२ स्कन्धों को भाग
सप्ताह के क्रम से ७ भागों में बाँट कर पूरी कथा छ
छन्दों में वर्णन की है। श्रीमद्भागवत की भाँति इ
भी साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पारायण होते है
सैकड़ों भागवतचरित व्यास बाजे तबले पर इसकी क
कहते हैं। लगभग हजार पृष्ठ की सचित्र कपड़े की सु
जिल्द की पुस्तक की न्योछावर ६)५० मात्र है। थोड़े
समय में इसके २३००० के ५ संस्करण छप चुके हैं
दो खंडों में हिन्दी टीका सहित भी छप रही है
प्रथमखंड प्रकाशित हो चुका है। उसकी न्योछावर ८
हैं। दूसरा खंड प्रेस में है।